

स्वाध्याय

स्वमन्थन

स्वावलम्बन



उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

MAED-06 (N)

शिक्षा में समसामयिक मुद्दे

- प्रथम खण्ड : विचारणीय मुद्दे
द्वितीय खण्ड : शैक्षिक प्रवृत्तियाँ
तृतीय खण्ड : सामयिक शैक्षिक प्रत्यय -I
चतुर्थ खण्ड : सामयिक शैक्षिक प्रत्यय -II

विश्वविद्यालय परिसर

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद - 211013



उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

MAED-06 (N)

शिक्षा में समसामयिक
मुद्दे

खण्ड

1

विचारणीय मुद्दे

इकाई -1	5
प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण	
इकाई -2	27
पाठ्यक्रम विकास	
इकाई -3	61
सूचना एवं संचार-तकनीकी का उपयोग	
इकाई -4	74
गुणवत्ता उन्नयन	

MAED-09 शिक्षा में समसामयिक मुद्दे

खण्ड-1 विचारणीय मुद्दे

- इकाई-1 प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण
- इकाई-2 पाठ्यक्रम विकास
- इकाई-3 सूचना एवं संचार तकनीकी का उपयोग
- इकाई-4 गुणवत्ता उन्नयन

खण्ड-2 शैक्षिक प्रवृत्तियाँ

- इकाई-5 गैर सरकारी संगठनों की भूमिका
- इकाई-6 मानवाधिकार
- इकाई-7 वैश्वीकरण
- इकाई-8 निजीकरण

खण्ड-3 सामयिक शैक्षिक प्रत्यय - I

- इकाई-9 व्यवसायिक शिक्षा
- इकाई-10 अध्यापक शिक्षा
- इकाई-11 विशिष्ट शिक्षा
- इकाई-12 मूल्य शिक्षा

खण्ड-4 सामयिक शैक्षिक प्रत्यय - II

- इकाई-13 स्वास्थ्य शिक्षा
- इकाई-14 जनसंख्या शिक्षा
- इकाई-15 पर्यावरण शिक्षा
- इकाई-16 शांति शिक्षा

खण्ड परिचय-2 : विचारणीय मुद्दे

मानव का सम्पूर्ण विकास करने में शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रस्तुत खण्ड में शिक्षा के विचारणीय मुद्दे पर चर्चा की गई है।

इकाई-1 शिक्षा के सार्वजनीकरण से सम्बन्धित है। शिक्षा का सार्वभौमिकण का अभिप्राय है - जन से जन को शिक्षित करना। सर्व शिक्षा अभियान प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की महत्वपूर्ण परियोजना है। इस दिशा में विभिन्न स्वयं सेवी संस्थानों जैसे -अजीम प्रेमजी फाउण्डेशन, वन श्री ट्रस्ट, पोथमकंदम स्कूल, आकांक्षा आदि ने सराहनीय प्रयास किये हैं।

इकाई - 2 में पाठ्यक्रम विकास पर विस्तृत चर्चा की गई है। शिक्षा तथा शिक्षण का स्वरूप पाठ्यक्रम के प्रारूप द्वारा निर्धारित होता है। पाठ्यक्रम अनेक प्रकार के होते हैं जैसे विषय केन्द्रित, अनुभव केन्द्रित, बाल केन्द्रित आदि। पाठ्यक्रम संगठन के दो प्रमुख प्रतिमान हैं जैसे अंशों में विभाजित प्रकरण तथा एकीकृत प्रकरण।

इकाई-3 में सूचना एवं संचार तकनीकी का उपयोग पर चर्चा की गई है। तकनीक की सहायता से सूचना का आदान प्रदान किया जाता है जैसे इण्टरनेट, टी.वी., कम्प्यूटर आदि। सूचना एवं तकनीकी का प्रयोग शिक्षकों, विद्यार्थियों, नीति निहारिकों, प्रशासकों सभी के लिए उपयोगी है।

इकाई -4 में गुणवत्ता वृद्धि से सम्बन्धित है। गुणवत्ता सुनिश्चयन आज की शिक्षा की प्रमुख आवश्यकता है। गुणवत्ता प्रबन्धन का कार्यान्वयन करने और परिणाम प्राप्त करने में समय लगता है। गुणवत्ता के सूचक क्या हैं इस पर मतैक्य नहीं है।

इकाई 1 : प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण

संरचना

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 सबके लिये शिक्षा
- 1.4 भारत में वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य (प्राथमिक स्तर)
- 1.5 शिक्षा का सार्वभौमीकरण
 - 1.5.1 स्वतन्त्रता से पूर्व किये गये प्रयास
 - 1.5.2 स्वतन्त्रता के पश्चात् किये गये प्रयास
- 1.6 शिक्षा गारंटी योजना
- 1.7 जिला प्राथमिक शिक्षा योजना
- 1.8 उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परियोजना
- 1.9 शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु किये गये प्रयासों का प्रतिफल
- 1.10 शिक्षा के सार्वजनिकरण में बाधक तत्व
- 1.11 सारांश
- 1.12 अभ्यास प्रश्न
- 1.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के विविध आयामों से परिचित होंगे। मानव का संपूर्ण विकास करने में शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा चेतना के विकास और समान के पुनर्गठन का बुनियादी साधन भी है। शिक्षा के माध्यम से ही समाज में मानव मूल्यों, मानव संसाधनों की गुणवत्ता और सांस्कृतिक विविधता के प्रति सम्मान संभव है। "सबके लिए शिक्षा" (शिक्षा का सार्वभौमीकरण) अभियान का मूल उद्देश्य एक ऐसी उत्कृष्ट परम्परा का विकास करना है जो पारंपरिक संस्कृतियों के सर्वश्रेष्ठ मूल्यों को बनाए रखती हो, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के लाभदायक पक्ष का उपयोग करती हो और मानव तथा राष्ट्रों में मानवता, जाति और मित्रता की भावना को बढ़ावा देती हो।

शिक्षा मानव जीवन के लिए अति महत्वपूर्ण है। "सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात् शिक्षा अज्ञान और दमन से मुक्ति से प्रदान करती है। आधुनिक युग में शिक्षा का मानवीय जीवन में केन्द्रीय स्थान हो गया है। 'महात्मा गाँधी' के शब्दों में 'शिक्षा चेतना के विकास और समाज के पुनर्गठन का बुनियादी साधन है।' शिक्षा बिना जीवन निरर्थक है। शिक्षा से ही मनुष्य में मानवीय गुणों का विकास होता है। शिक्षा व्यक्ति की उन्नति और राष्ट्र के उत्थान की पहली शर्त है।

15 फरवरी, 1994 को नई दिल्ली में आयोजित मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री पी.वी.नरसिंहराव ने सबके लिए शिक्षा पर बल देते हुए कहा था, "शिक्षा समाज के सभी के वर्गों के जीवन स्तर को सुधारने के लिए एक बहु-आयामी साधन है। शिक्षा को सामाजिक गतिशीलता और विकास में एक प्रेरक शक्ति के रूप में समझा जाना चाहिए।" इसी सम्मेलन में पूर्व केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री श्री अर्जुन सिंह ने कहा था कि, "साक्षरता से महिलाओं और कमजोर वर्गों को समर्थ बनाया जा सकता है।"

शिक्षा का सार्वजनीकरण या सार्वभौमीकरण करके हम आने वाली पीढ़ी को मौलिक अधिकार के रूप में शिक्षा प्रदान कर सकते हैं ताकि उनके कौशल एवं योग्यता को तराशा जा सके और दलितों व सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए व्यक्तियों को आगे बढ़ने से रोकने वाले अवरोधों को दूर किया जा सके। यदि हमें सच्चे मन से गरीबी और गरीबी से पैदा होने वाली गंभीर समस्याओं पर काबू पाना है, प्रदूषण, अंधविश्वास, असमानता और जनसंख्या की बेलगाम रफ्तार को काबू करना है, यदि विश्व समुदायों में पारस्परिक समझ और सौहार्द को विकसित करना है तो सामान्य से सामान्य व्यक्ति को शिक्षित बनाना होगा।

आज के समाज को शिक्षित किये जाने पर जोर दिये जाने की जरूरत है क्योंकि हम आज के तथाकथित समाज की अव्यावहारिकता से प्रतिदिन परिचित होते हैं। हमारे दैनिक व्यवहारों में जो त्रुटियाँ अनुभव होती हैं वे शिक्षा की ओर ध्यान देने को प्रेरित करती हैं।

शिक्षा सबके लिए अनिवार्य हो क्योंकि शिक्षा लोगों में जागरूकता पैदा करने का एक सशक्त माध्यम है, इसमें उन्हें अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का बोध होता है। उनमें स्वावलम्बन व निर्णय शक्ति का विकास होता है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप परिचित हो जायेंगे—

- प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की अवधारणा से
- प्राथमिक शिक्षा के वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य से
- शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु किये गये प्रयासों एवं बाहक तत्वों से

1.3 सबके लिए शिक्षा

“सबके लिए शिक्षा” की आवश्यकता इसलिए है कि शिक्षा का मानवीय संसाधनों के विकास में प्रमुख स्थान होता है। शिक्षा एक साधन के साथ-साथ स्वयं में भी एक साध्य होती है। शिक्षा के माध्यम से ही समाज में मानव मूल्य, मानव संसाधनों की गुणवत्ता और सांस्कृतिक विविधता के प्रति सम्मान संभव है। स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा दिया जाना या प्रत्येक व्यक्ति का शिक्षित होना अत्यावश्यक है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अवसर दिलाना अत्यावश्यक है। फलतः शिक्षा का सार्वजनीकरण या सार्वभौमीकरण आज की महती आवश्यकता है।

सन् 1950 में भारत ने स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा के महत्व को ध्यान में रखकर प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु संविधान में अनु0 45 का प्रावधान करके इसे 1960 तक अर्थात् दस वर्षों के भीतर प्राप्त करने का लक्ष्य रखकर संवैधानिक उपबन्ध बनाया जिसके अनुसार 6-14 वर्ष के सभी बच्चे अगले दस वर्षों में प्राथमिक शिक्षा से आच्छादित होंगे। शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समय-समय पर विभिन्न प्रयास किये गये और अनवरत यह प्रयास जारी भी है।

शिक्षा का सार्वभौमीकरण ऐसी परिस्थिति पैदा करता है जिसमें 14 वर्ष तक के सभी बच्चों की अपनी योग्यता, कौशल, तर्कशक्ति, सामाजिक चतुराई, समानता, साहस, आत्मविश्वास, जिज्ञासा, स्वतंत्रता, स्वावलंबन, धैर्य और समझ का विकास हो सके। इसके लिए व्यक्ति को अनवरत रूप से शिक्षा से जुड़े रहने की भी आवश्यकता है।

भारत में शिक्षा का सार्वभौमीकरण एक संवैधानिक लक्ष्य रहा है जिसे 1960 तक प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया था। यद्यपि इस हेतु व्यापक प्रयास किये गये किन्तु फिर भी आज तक या तो बच्चों की एक अच्छी खासी संख्या स्कूलों से बाहर है या वह अपनी पूरी शिक्षा भी नहीं पूर्ण कर पाती है।

भारत में शिक्षा के सार्वभौमीकरण में मुख्य चुनौती इस क्षेत्र में निवेश की रही है। यद्यपि पिछले दशकों में इस पर ध्यान दिये जाने के फलस्वरूप काफी हद तक लक्ष्य प्राप्ति में सहायता मिली है किन्तु फिर भी प्राथमिक और उच्च

प्राथमिक विद्यालयों में आज भी कमशः 33 प्रतिशत और 37 प्रतिशत अपव्यय है। शिक्षा के सार्वभौमीकरण की बात करने से पूर्व भारत में वर्तमान शैक्षिक दशा (प्राथमिक स्तर) पर प्रकाश डालना आवश्यक होगा।

बोध प्रश्न

प्र0 1 संविधान के किस अनुच्छेद में शिक्षा के सार्वभौमिकरण का प्रावधान रखा गया है।

.....
.....
.....

प्र0 2 किस वय वर्ग के बच्चों हेतु प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था है।

.....
.....
.....

1.4 भारत में वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य (प्राथमिक स्तर) :-

जनसंख्या की दृष्टि से भारत दुनिया का दूसरा बड़ा देश है। 2001 में इसकी जनसंख्या लगभग 1 अरब हो गयी है। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की साक्षरता दर मात्र 65.38 प्रतिशत है। इसमें भी महिला साक्षरता की दर और भी दयनीय है।

आजादी के बाद साक्षरता दर में तीन गुना वृद्धि हुई है, परन्तु आबादी में ढाई गुना वृद्धि हुई है। यही कारण है कि सीमित संसाधन, गरीबी, भुखमरी के कारण देश के भावी कर्णधार शिक्षा से न जुड़कर स्वयं को शोषण व अत्याचार के प्रति समर्पित कर देते हैं। लाखों कारखानों, घरों, खेती व दुकानों में मजदूरी करने को विवश हैं। करोड़ों बालक ऐसे हैं जो स्कूलों से नहीं जुड़ सके हैं। ये विद्यालय जाने योग्य बालक-बालिकायें जब प्राथमिक शिक्षा से वंचित रहते हैं तो आगे चलकर प्रौढ़ शिक्षा इतनी साधन सम्पन्न नहीं है कि सबको साक्षरता प्रदान कर सके। प्राथमिक शिक्षा पूरी करते समय अधिसंख्य छात्र विद्यालय बीच में ही छोड़ देते हैं। अतः इनको औपचारिक अथवा अनौपचारिक रूप से शिक्षा से जोड़कर ही साक्षरता में प्रत्याशित सुधार ला सकते हैं।

देश की गुलामी की जंजीरे जैसे ही टूटीं वैसे ही राष्ट्रनायकों एवं शिक्षा शास्त्रियों ने राष्ट्रीय प्रगति और आजादी की अक्षुण्णता के लिए प्राथमिक शिक्षा के

महत्व का प्रथमतः प्रतिपादन किया। संविधान निर्माताओं ने राष्ट्र की इस इच्छा को अनुच्छेद 45 में इस प्रकार व्यक्त किया — "संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों का अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयास राज्य करेगा।"

इस भावना का आदर करते हुए राज्य सरकारों ने प्रयास किये। सन् 1946-47 में देश में प्रारम्भिक विद्यालयों की संख्या लगभग डेढ़ लाख थी, जिसमें 12 करोड़ बालक पढ़ते थे, जिन पर 19.27 करोड़ रुपये व्यय किये गये थे। तब कुल जनसंख्या में साक्षरता का प्रतिशत 12.2 % था। प्रथम पंचवर्षीय योजना के लागू होने के बाद से केन्द्र व राज्य सरकारें इस ओर निरन्तर प्रयत्नशील रहीं। केन्द्र सरकार ने बालकों की एक राष्ट्रीय योजना बनायी जिसमें अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा, कठिन शारीरिक श्रम निषेध जैसे बाल कल्याण के 15 कार्यक्रमों की व्यवस्था की। देखते ही देखते सातवीं पंचवर्षीय योजना में कक्षा 1 से कक्षा 5 तक के प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 5,3,7,399 तथा कक्षा 6 से 8 तक के विद्यालयों की संख्या 1,37,196 पहुँच गयी। लेकिन अपव्यय, अवरोधन और जनसंख्या के विस्फोट ने इन आँकड़ों के ग्राफ को बेअसर बना दिया।

लेकिन सामाजिक न्याय और प्रजातंत्र की सफलता के लिए प्रत्येक नागरिक को प्राथमिक शिक्षा सुलभ कराना आवश्यक है। लोकतंत्र के आधार शिक्षा और शिक्षित नागरिक होते हैं। जो चुनाव करते हैं और जिन्हें चुना जाता है उन्हें शिक्षित होना अनिवार्य है। तभी नागरिक अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूकता होगी। प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता इसलिए भी अधिक है क्योंकि देश की आधी जनसंख्या आज भी निरक्षर बनी हुई है।

भारत में प्राथमिक शिक्षा के दो स्वरूप कमशः प्राथमिक शिक्षा और बुनियादी शिक्षा के रूप में दिखायी देते हैं। पहले स्वरूप में केवल बौद्धिक कुशलता के लक्ष्य को पूरा करने वाली शिक्षा का विधान है। इसके उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए जान रास्किन ने कहा था कि — "शिक्षा का अभिप्राय व्यक्तियों को उन बातों की शिक्षा देना नहीं है जिन्हें वे नहीं जानते, शिक्षा का अभिप्राय है उनको इस प्रकार का व्यवहार करने की शिक्षा देना जैसा कि वे नहीं करते हैं।"

कोठारी कमीशन ने सामान्य प्राथमिक शिक्षा में व्याप्त विभिन्नताओं को दूर करने, एकरूपता लाने तथा उसे व्यापक बनाने के लिए कुछ सुझाव दिये थे। जैसे सन् 1986 तक 12 वर्ष की शिक्षा हर बालक के लिए हो। कक्षा 1 से कक्षा 7 तक बहुत कम अपव्यय हो, जो बच्चे 14 वर्ष की आयु से पूर्व ही 7 की कक्षा में पहुँच जायें और वे आगे पढ़ना नहीं चाहते तो उन्हें उसी कक्षा में रखा जाये,

प्राइमरीन स्कूल हर बच्चे को एक मील के अन्दर ही मिलना चाहिए। प्रगति की गति 80 % से 100 % तक हो तथा नेशनल कमेटी ऑफ एजुकेशन की सिफारिशों का पालन किया जाये।

बुनियादी शिक्षा का जन्म 1921 में हुआ था। महात्मा गाँधी ने तत्कालीन शिक्षा का विश्लेषण करते हुए वर्तमान शिक्षा के तीन दोष बताये थे। यह विदेशी संस्कृति पर आधारित है और इसका भारतीय संस्कृति से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह हृदय तथा हाथ की संस्कृति की उपेक्षा करके सिर की संस्कृति तक सीमित रहती है। विदेशी भाषा के माध्यम से वास्तविक शिक्षा असम्भव है।

उन्होंने 1937 में वर्धा शिक्षा सम्मेलन में शिक्षा के प्रति मौलिक विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि – "शिक्षा से मेरा अभिप्राय व्यक्ति तथा बालक के सर्वांगीण विकास से है – अर्थात् मस्तिष्क, शरीर एवं आत्मा के विकास से। साक्षरता स्वयं में शिक्षा नहीं है। इसलिए मैं बालक की शिक्षा का आरम्भ हस्तकला से करना चाहता हूँ, एवं उसे शिक्षा के आरम्भ से ही उत्पादन के योग्य बनाना चाहता हूँ। इस प्रकार प्रत्येक विद्यालय आत्मनिर्भर हो जायेगा।"

1.5 शिक्षा का सार्वभौमीकरण

शिक्षा के सार्वजनीकरण का अभिप्राय है— जन—जन को शिक्षित करना। लोकतांत्रिक जीवन की सफल अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में तो जन—जन की शिक्षा का महत्व और भी बढ़ जाता है। भारतीय संविधान की धारा 45 में प्रत्येक राज्य को उत्तरदायित्व सौंपते हुए आकांक्षा व्यक्त की गयी थी कि वे जन—जन को शिक्षित बनाने के लिए प्रारम्भिक शिक्षा की अनिवार्य व्यवस्था करेंगे। उक्त संवैधानिक निर्देश के अनुपालन हेतु 2 अक्टूबर, 1951 से ही शिक्षा के सार्वजनीकरण की दिशा में निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं किन्तु आज भी हम लक्ष्य को प्राप्त कर पाने में असमर्थ रहे हैं। देश के लगभग 35 प्रतिशत लोग आज भी अशिक्षित (निरक्षर) हैं। इतनी बड़ी संख्या में लोगों का आज भी अशिक्षित होना शिक्षा के सार्वभौमीकरण की आवश्यकता को अपरिहार्य बनाता है, जिस हेतु महती प्रयास की आवश्यकता है।

प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु किये गये :

प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु किये गये प्रयास को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है :-

1. स्वतंत्रता से पूर्व किये गये प्रयास।
2. स्वतंत्रता के पश्चात किये गये प्रयास।

1.5.1 स्वतंत्रता से पूर्व किये गये प्रयास :-

भारत में स्वतंत्रता से पूर्व अर्थात् ब्रिटिश शासनकाल में प्राथमिक शिक्षा के लिये अत्यल्प प्रयास किये गये थे। प्रारम्भिक प्रयास के रूप में मिशनरियों ने अपनी बस्ती के बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध किया था। इस शिक्षा से ईसाई धर्म का प्रचार करना ही उसका मकसद था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने 1854 के घोषणा-पत्र में सबसे पहले सर्वसाधारण को शिक्षा का प्रबन्ध करने के दायित्व को स्वीकार किया तथा सहायता अनुदान प्रणाली की सिफारिश की। 1859 में स्टेनले के घोषणा-पत्र की सिफारिशों के फलस्वरूप प्राथमिक शिक्षा 'कर' लगाकर उसके विकास की चेष्टा की। 1882 में भारतीय शिक्षा आयोग की सिफारिशों के तहत प्राथमिक शिक्षा का दायित्व स्थानीय संस्थाओं के मत्थे मढ़ दिया गया। इस तरह इस काल खण्ड में प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा करके भारत की नयी पौध के साथ खिलवाड़ किया गया।

इन दशाओं से क्षुब्ध होकर बड़ौदा नरेश ने अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए 1892 में कदम उठाया। सन् 1906 में उनके राज्य के सभी बालकों के लिए प्राथमिक शिक्षा पूर्ण रूप से लागू कर दी गयी। सन् 1911 में गोपाल कृष्ण गोखले ने केन्द्रीय धारा सभा में एक विधेयक पेश किया, जिससे प्रेरित होकर बम्बई और फिर अन्य प्रान्तों में ऐसे विधेयक पास किये गये। सन् 1921 में प्रान्तों में स्वशासन व्यवस्था लागू होने के साथ ही प्राथमिक शिक्षा की दिशा में कार्य शुरू हुआ। 1937 में काँग्रेस सरकार ने इस क्षेत्र में भारी प्रयास किया। फलतः स्वतंत्रता मिलने तक देश के 229 नगरों और 1017 ग्रामों में 1,404 केन्द्र अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रबन्ध बेड़े में शामिल हो चुके थे। सन् 1947 तक 6 - 11 आयु वर्ग के स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या का 31.3 भाग प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर रहा था।

1.5.2 स्वतंत्रता के पश्चात किये गये प्रयास :-

स्वतंत्रता के बाद से केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने शिक्षा के सार्वजनीकरण / सार्वभौमीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किये हैं। शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समय-समय पर केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने अनेक योजनाएँ क्रियान्वित की हैं। वर्तमान में बच्चों को स्कूलों तक खींच कर लाने के लिए पाठ्य-पुस्तकों तक का निःशुल्क वितरण किया जा रहा है। कागज पर लगाने वाले अधिभार कर को भी केन्द्र सरकार ने माफ कर दिया है जिससे राज्य सरकारों को कागज सस्ती दर पर उपलब्ध हो सके। शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु राज्य/सरकारों द्वारा चलायी गयीं कुछ महत्वपूर्ण योजनायें निम्नलिखित हैं :-

ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड :- यह योजना सन् 1987 में क्रियान्वित की गयी, जिसका आधार नयी शिक्षा नीति 1986 थी। यह योजना प्राथमिक विद्यालय को भवन, अध्यापन व पढ़ाई की सहायता सामग्री उपलब्ध करवाने की दृष्टि से प्रारम्भ की गयी थी। इस प्रकार इस योजना का लक्ष्य विद्यालयों के शैक्षिक वातावरण में सुधार करना और बच्चों के ठहराव को सुनिश्चित करना था। इस योजना का उद्देश्य विद्यालयों को न्यूनतम शैक्षिक सुविधा उपलब्ध करवाना था, जिस वातावरण में बच्चे अच्छी प्रकार से सीख सकें। इस योजना के फलस्वरूप स्कूलों की गुणवत्ता में मात्रात्मक एवं गुणात्मक रूप से उल्लेखनीय सुधार हुआ। इस योजना द्वारा लगभग 5,23,000 प्राथमिक विद्यालयों को आच्छादित किया गया।

शिक्षा का विकेन्द्रीकरण :- प्राथमिक शिक्षा की योजनाओं और व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का प्रमुख लक्ष्य है। प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था में यह नीति ग्राम शिक्षा समिति का प्रावधान करती है। शिक्षा के विकेन्द्रीकरण का लक्ष्य प्रत्येक बच्चे को न्यूनतम आठ वर्ष की शिक्षा सुनिश्चित करवाना है।

भारतीय संविधान के 73वें 74वें संशोधन द्वारा शिक्षा के विकेन्द्रीकरण हेतु शिक्षा में पंचायती राज संस्थाओं को सम्मिलित किया गया है। इसमें शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु राज्य के हस्तक्षेप की अपेक्षा की गयी है। यह संरचना दलितों, अल्पसंख्यकों एवं महिलाओं की प्राथमिक शिक्षा में भागीदारी सुनिश्चित करती है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के विकेन्द्रीकरण हेतु प्रयास किया गया है। डी.पी.ई.पी. प्रोग्राम ने शिक्षा को राज्य स्तर से जिला स्तर पर पहुँचाया जबकि लोक जुम्बिश प्रोग्राम ने शिक्षा को जिला स्तर से ब्लाक स्तर तक पहुँचाया जब ग्राम शिक्षा समिति ने इसे ग्राम स्तर पर क्रियान्वित किया। शिक्षा के विकेन्द्रीकरण हेतु 1992-93 से 1995-96 तक रू० 8,163 मिलियन खर्च हुआ जबकि 1996-97 में यह रू० 2,910 मिलियन रहा।

प्रौढ़ शिक्षा :- निरक्षर प्रौढ़ों को साक्षर करने के उद्देश्य से 1978 में 2.7 लाख शिक्षा केन्द्र चालू किए गये परन्तु यह कार्यक्रम अपना लक्ष्य अर्जित करने में नाकाम रहा और इसकी असफलताओं को आँकते हुए 1988 में राष्ट्रीय शिक्षा मिशन की स्थापना हुई जिसने अपने लोकप्रिय कार्यक्रम '**संपूर्ण साक्षरता**' से जन-जन को जोड़ने का प्रयास किया।

जन शिक्षा निलयम् :- संपूर्ण साक्षरता आन्दोलन की उपलब्धियों को स्थायी बनाने तथा निरक्षरता को बढ़ने से रोकने के लिए 73 जिलों में निरन्तर शिक्षा

कार्यक्रम साक्षरता आन्दोलन जिलों में जन शिक्षा निलयम की स्थापना की गयी है। ये निलयम कृषि तथा इसमें संबद्ध क्षेत्रों में कौशल बढ़ाने के लिए छोटी अवधि के कार्यक्रम चलाकर स्थानीय व्यक्तियों को विकास कार्यक्रमों के बारे में जानकारी देते हैं।

जनशाला :- यह कार्यक्रम भारत सरकार और संयुक्त राष्ट्र संघ की पाँच एजेंसियों (यू.एन.डी.पी., यूनीसेफ, यूनेस्को, आइ. एल. ओ. तथा यू.एन.एफ.पी.ए.) मिलकर चला रही हैं। यह विश्व का ऐसा पहला कार्यक्रम है जिसमें संयुक्त राष्ट्र की पाँच एजेंसियाँ मिलकर काम कर रही हैं। यह कार्यक्रम सबको शिक्षा सुलभ कराने के प्रयासों को समर्थन देने के लिए चलाया जा रहा है। इसका उद्देश्य समाज के वंचित और पिछड़े वर्गों, विशेष रूप से लड़कियों, अनुसूचित जाति/जनजाति, अल्पसंख्यकों, श्रमजीवी बच्चों और विशेष देखभाल की आवश्यकता वाले बच्चों को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना है।

जनशाला कार्यक्रम की विशेषता यह है कि इसमें समाज में भाग लेने और विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया जाता है। इस प्रकार यह खंड आधारित कार्यक्रम है। खंडों का चुनाव विभिन्न संकेतकों के आधार पर किया जाता है। जैसे - महिलाओं की साक्षरता दर में कमी, बाल श्रम का पाया जाना, अनुसूचित जाति/जनजाति की संख्या अधिक होना, आदि। इस कार्यक्रम के संचालन में यूनेस्को और आइ.एल.ओ. तकनीति सलाह देंगे, शेष तीनों एजेंसियाँ वित्तीय सहायता देंगी जो इस समय दो करोड़ डालर निश्चित हुई है।

अब तक इस कार्यक्रम के अन्तर्गत लगभग 1500 वैकल्पिक विद्यालय खोले जा चुके हैं और 58,000 शिक्षकों को शिक्षा शास्त्र सम्बन्धी विभिन्न पहलुओं पर एक दौर का प्रशिक्षण दिया जा चुका है। यह कार्यक्रम 1998 से शुरू हुआ और प्रारम्भ में इसकी अवधि पाँच वर्ष रखी गयी थी।

बोध प्रश्न

प्र0 3 जनशाला कार्यक्रम क्या है ?

.....

प्र0 4 प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के उद्देश्य क्या हैं ?

.....

1.6 शिक्षा गारंटी योजना

वर्ष 1979-80 में 6 से 14 वर्ष की आयु के ऐसे बच्चों के लिए अनौपचारिक शिक्षा शुरू की गयी जो विभिन्न कारणों से औपचारिक शिक्षा प्रणाली में नहीं आ सके। शुरू में इस कार्यक्रम में शैक्षिक रूप से पिछड़े 10 राज्यों में अधिक ध्यान केन्द्रित किया गया। इसके अन्तर्गत राज्यों, केन्द्र शासित प्रदेशों और गैर-सरकारी संगठनों को शिक्षा केन्द्र (जिनमें सह-शिक्षा का प्रावधान हो) चलाने के लिए 60:40 के अनुपात में, केवल बालिका शिक्षा केन्द्र चलाने के लिए 90:10 के अनुपात में तथा स्वयंसेवी संगठनों को शत-प्रतिशत सहायता दी जाती है।

अब इस योजना को औपचारिक शिक्षा का व्यावहारिक विकल्प बनाने के लिए "शिक्षा गारंटी योजना" तथा "वैकल्पिक एवं अभिनव शिक्षा" के रूप में चलाया जा रहा है। यह योजना उन क्षेत्रों में चलायी जा रही है जहाँ एक किलोमीटर के दायरे में कोई शिक्षा केन्द्र नहीं है। यह प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के लिए "सर्व शिक्षा अभियान" के राष्ट्रीय कार्यक्रम का हिस्सा है। केन्द्र और राज्य सरकारें इस संशोधित योजना के लिए 75:25 के अनुपात में खर्च वहन करेंगी। संशोधित योजना 1 अप्रैल, 2001 से लागू है।

शिक्षाकर्मी योजना :- शिक्षाकर्मी परियोजना स्वीडन की इंटरनेशनल डेवलपमेंट एजेन्सी के सहयोग से 1987 से चलाई जा रही है। इसका उद्देश्य राजस्थान के दूर-दराज के क्षेत्रों और या सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से पिछड़े गाँवों में प्राथमिक शिक्षा सबको सुलभ कराना तथा उसका गुणात्मक सुधार करना है। इस परियोजना का व्यय स्वीडन की एजेन्सी और राजस्थान सरकार ने 90:10 के अनुपात में वहन किया। जुलाई 1994 से जून 1998 तक के दूसरे चरण में व्यय का अनुपात 50:50 हो गया। परियोजना का तीसरा चरण जुलाई 1998 में शुरू होना था, पर पोखरण परमाणु विस्फोट के बाद अन्तर्राष्ट्रीय असहयोग के कारण स्वीडन ने परियोजना के लिए पैसा देने से इंकार कर दिया। बाद में ब्रिटेन के अन्तर-राष्ट्रीय विकास विभाग ने जुलाई 1999 से जून 2003 तक के लिए 50:50 के अनुपात में सहयोग देकर परियोजना को आगे बढ़ाया।

इस परियोजना में राजस्थान के 150 ब्लकों में 3,692 गाँवों में दिवस विद्यालय, प्रहर पाठशाला आदि के माध्यम से 2.17 लाख बच्चों को प्राथमिक शिक्षा प्रदान की जा रही है।

लोक जुम्बिश :- राजस्थान में स्वीडन की इंटरनेशनल डेवलपमेंट एजेन्सी के सहयोग से सभी के लिए शिक्षा सुलभ बनाने की दृष्टि से उक्त परियोजना शुरू

की गयी पहला चरण जून 1992 से जून 1994 तक लागू किया जिस पर 18 करोड़ रू० की लागत आयी। इस व्यय का वहन स्वीडन की एजेंसी, भारत सरकार और राजस्थान की सरकार ने 3:2:1 के अनुपात में किया। इस योजना का तीसरा चरण जून 2004 में पूरा हुआ है। इसके लिए ब्रिटेन के अन्तर्राष्ट्रीय विकास विभाग से वित्तीय सहायता मिली है।

इस परियोजना के अंतर्गत अध्यापक प्रशिक्षण का न्यूनतम स्तर, नए विद्यालयों की स्थापना, अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र आदि प्राथमिक शिक्षा से जुड़े क्षेत्र शामिल किये गये। इनके अतिरिक्त, प्राथमिक विद्यालयों को उन्नत करने, पर्यावरण की रक्षा करने आदि की गतिविधियाँ भी शामिल की गयीं।

मध्याह्न भोजन (मिड-डे-मील) कार्यक्रम :- प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए, उसके सार्वभौमीकरण हेतु 15 अगस्त, 1995 से उपर्युक्त कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। इस योजना की प्रेरणा तमिलनाडु से मिली जहाँ विद्यालय में उपस्थिति बढ़ाने के लिए मद्रास कारपोरेशन ने 1925-26 में ऐसी योजना शुरू की थी। बाद में जनता की माँग पर इस योजना को जुलाई 1956 से पूरे राज्य में "जनता के दान से", और 157 में सरकारी अनुदेशों के आधार पर अपनाया गया। वर्ष 1961 से इस योजना के लिए अमेरिका की सहायता भी मिली। अब इस योजना को राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में देश के विभिन्न भागों में चलाया जा रहा है।

इस कार्यक्रम का उद्देश्य विद्यालयों में बच्चों के प्रवेश और दैनिक उपस्थिति को सुधारना है। साथ ही स्कूल आने वाले बच्चों को पौष्टिक आहार प्रदान करना है। जिन स्कूलों में यह कार्यक्रम चल रहा है उनमें सरकार की ओर से प्रति बच्चा प्रति स्कूल-दिवस के हिसाब से 100 ग्राम अनाज, या फिर 10 महीनों के लिए तीन किलोग्राम अनाज दिया जाता है।

नवीं पंचवर्षीय योजना के आरंभ में इस कार्यक्रम में उन्हीं बच्चों को लिया गया था जो किसी औपचारिक स्कूल में प्राथमिक स्तर पर पढ़ रहे हैं। अब दसवीं योजना में उन बच्चों को भी यह सुविधा देने का निश्चय किया गया है जो शिक्षा गारंटी योजना तथा ऐसे ही दूसरे केन्द्रों में पढ़ रहे हैं। इस समय यह कार्यक्रम आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, केरल, राजस्थान, सिक्किम, तमिलनाडु आदि 12 राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों में चल रहा है। इसके अतिरिक्त कुछ राज्य ऐसे भी हैं जहाँ यह कार्यक्रम आंशिक रूप से चल रहा है। जैसे - मध्य प्रदेश(जनजातीय क्षेत्र), उड़ीसा(जनजातीय क्षेत्र), पंजाब(17 ब्लॉक), दिल्ली(दिल्ली नगर निगम स्कूल) आदि।

1.7 जिला प्राथमिक शिक्षा योजना

जिला प्राथमिक शिक्षा योजना (डी.पी.ई.पी.) नवम्बर 1994 में प्रारम्भ की गयी थी। योजना का उद्देश्य सार्वभौमिक शिक्षा की संप्राप्ति हेतु जिला स्तर पर योजना का क्रियान्वयन करना था। जिला प्राथमिक शिक्षा योजना (डी.पी.ई.पी.) के निम्नलिखित उद्देश्य थे :-

- प्रत्येक बच्चे को औपचारिक अथवा अनौपचारिक माध्यम से प्राथमिक शिक्षा से आच्छादित करना।
- लैंगिक आधार पर नामांकन, अपव्यय एवं शैक्षिक संप्राप्ति को 5 % तक घटाना।
- प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय को 10 % तक कम करना।
- औसत सम्प्राप्ति स्तर को 25 % तक ऊपर उठाना तथा सम्प्राप्ति स्तर को न्यूनतम 40 % तक सुनिश्चित करना।

जिला प्राथमिक शिक्षा योजना में केन्द्र सरकार 85 वित्तीय सहयोग देती है शेष 15 % वित्तीय प्रतिभाग राज्य सरकार का होता है। डी.पी.ई.पी. योजना दो चरणों में लागू की गयी थी।

योजना का प्रथम चरण असम, हरियाणा, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और मध्य प्रदेश के 42 जिलों में लागू हुआ। योजना का द्वितीय चरण उड़ीसा, हिमाचल प्रदेश, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश और गुजरात तथा प्रथम चरण के राज्यों के 80 जिलों में लागू हुआ।

डी. पी. ई. पी. योजना का प्रथम चरण मूल्यांकन प्रक्रिया में है। अध्ययन का शुरुआती चरण सकारात्मक है। डी. पी. ई. पी. योजना का नामांकन वृद्धि, अपव्यय में कमी तथा स्कूली कक्षा-कक्ष प्रक्रिया में सकारात्मक योगदान रहा है। डी. पी. ई. पी. योजना का संकेन्द्रण प्रायः ऐसे जिले रहे हैं जहाँ महिला साक्षरता दर राष्ट्रीय औसत से कम रहा है।

बिहार शिक्षा परियोजना :- बिहार शिक्षा परियोजना (बी.ई.पी.) सन् 1991 में प्रारम्भ की गयी थी। इसका उद्देश्य बिहार में प्राथमिक शिक्षा में मात्रात्मक एवं गुणात्मक सुधार लाना था। योजना का मुख्य जोर समाज के उपेक्षित एवं कमजोर वर्गों अर्थात् अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं महिलाओं पर था।

1.8 उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परियोजना

व्यवसायिक शिक्षा

जून, 1993 में विश्व बैंक ने उत्तर-प्रदेश सरकार द्वारा तैयार की गयी "सबके लिए शिक्षा" परियोजना को स्वीकृति प्रदान की थी। परियोजना को शुरूआती दौर में 12 जिलों में लागू किया गया था। सात वर्षों में इस परियोजना पर लगभग रू0 7,288 मिलियन खर्च हुआ। विश्व बैंक की शाखा अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेंसी (आई.डी.ए.) ने इस परियोजना पर लगभग 163.1 मिलियन डॉलर खर्च किया जबकि राज्य सरकार ने इस परियोजना पर लगभग 13 प्रतिशत खर्च किया।

उपर्युक्त परियोजना की प्रगति सन्तोषजनक रही है। तय कार्यक्रम के अनुसार विद्यालयों एवं ब्लाक संसाधन केन्द्र (बी.आर.सी.) का निर्माण कार्य पूर्ण हो चुका है। जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों पर अध्यापक प्रशिक्षण हेतु प्रशिक्षण सामग्री तैयार हो चुकी है। सेवाकालीन अध्यापक प्रशिक्षण का प्रथम चरण अक्टूबर 1995 में पूर्ण कर लिया गया। लगभग 40,000 अध्यापकों का प्रशिक्षण दिया जा चुका है।

सर्व शिक्षा अभियान :- सर्व शिक्षा अभियान प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण अथवा सार्वभौमीकरण हेतु शुरू की गयी एक महत्वपूर्ण परियोजना है। अक्टूबर 1998 में आयोजित राज्यों के शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन की सिफारिशों के आधार पर "सर्व शिक्षा अभियान" योजना विकसित की गयी। नवम्बर, 2000 में इसे राष्ट्रीय मिशन के रूप में स्वीकार किया गया। इसके अध्यक्ष बनाये गये प्रधानमंत्री और उपाध्यक्ष बनाये गये मानव संसाधन विकास मंत्री। इसके लक्ष्य हैं :-

1. 6 - 14 आयु वर्ग के सभी बच्चे सन् 2005 तक स्कूल/शिक्षा गारंटी योजना केन्द्र/ब्रिज कोर्स में आ जायें।
2. सभी बच्चों की पाँच वर्ष की प्राथमिक शिक्षा पूरी हो जाये।
3. सन् 2010 तक आठ वर्ष की स्कूली शिक्षा पूरी हो जाये।
4. सन् 2010 तक बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों की संख्या शून्य हो जाये।
5. सभी लड़के-लड़कियों और सामाजिक वर्ग के अंतरों को प्राथमिक स्तर पर सन् 2007 तक, और उच्च प्राथमिक स्तर पर सन् 2010 तक समाप्त कर दिया जाये।
6. जीवन के लिए शिक्षा पर बल देते हुए सभी का सन्तोषजनक गुणवत्ता की प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध करवा दी जाये।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सहायता को केन्द्र सरकार और राज्य सरकार के बीच नवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 85:15, दसवीं योजना में 45:25 और उसके बाद 50:50 के अनुपात में बाँटा जायेगा।

जिन स्थानों पर स्कूली सुविधायें नहीं हैं, वहाँ क्लास रूम, टॉसलेट, पीने के पानी, रख-रखाव अनुदान और स्कूल सुधार अनुदान के जरिए बुनियादी ढाँचे को मजबूत किया जायेगा। अपर्याप्त संख्या में शिक्षकों वाले स्कूलों को अतिरिक्त शिक्षक उपलब्ध कराये जायेंगे। कमजोर वर्गों की बालिकाओं और बच्चों पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। ग्रामीण क्षेत्रों में कम्प्यूटर शिक्षा देने का भी प्रबन्ध किया जायेगा। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन-जातियों तथा कठिन परिस्थितियों में रहने वाले बच्चों की शैक्षणिक आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा।

स्वयं सेवी संस्थाओं का योगदान :- प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण में स्वयं सेवी संस्थाओं ने भी बखूबी योगदान दिया है। जिनका विवरण निम्नलिखित है :-

अजीम प्रेम जी फाउन्डेशन- बेंगलूर-लर्निंग गारंटी योजना :- यह योजना 23 नवम्बर को विप्रो के अध्यक्ष अजीम प्रेम जी द्वारा गुलबर्गा (कर्नाटक) में प्रारम्भ की गयी थी। इस योजना में उत्तर-पूर्वी कर्नाटक के 7 जिलों के 9500 स्कूलों को चुना गया था।

वन श्री ट्रस्ट :- यह परियोजना लोंबानी, गोंड तथा कुटुम्बी जनजातियों को प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने के लिए कर्नाटक के सागर तालुका के बचोदी गाँव में प्रारम्भ की गयी।

वन श्री ट्रस्ट द्वारा पोषित स्कूल कक्षा एक से कक्षा सात तक की शिक्षा प्रदान करते हैं। सभी स्कूल आवासीय हैं। इनमें कन्नड़ भाषा में औपचारिक शिक्षा प्रदान की जाती है।

सुविधा :- यह एक गणितीय किट है जिसे सुविधा द्वारा डिजाइन किया गया है। प्रारम्भिक गणित को सीखने में आने वाली समस्याओं को इस किट के माध्यम से दूर करने का प्रयास किया गया है।

पोथमकंदम स्कूल :- यह स्कूल 1955 में प्रारम्भ किया गया था जिसे 1984 में उच्च प्राथमिक स्कूल में उच्चीकृत कर दिया गया। यह राज्य सरकार एवं संरक्षकों के सहयोग से चल रहे हैं। इसमें अध्यापकों का भी योगदान होता है। इसमें सम्मिलित ज्यादातर माता-पिता प्राथमिक स्तर तक की ही शिक्षा प्राप्त किये हुए हैं।

अमर राजा :- यह अपने नियोक्ताओं को ऐसी सुविधा प्रदान करता है जिससे उनके बच्चे अच्छी शिक्षा प्राप्त कर सकें। यह पुस्तिकालयों की सुविधा भी प्रदान करता है।

बी.जी. इण्डिया, मुम्बई :- बी.जी.इण्डिया, मुम्बई ने चार निम्न समुदायों को शैक्षिक मामलों में सहयोग देना प्रारम्भ किया है। यह प्रथम नामक स्वयं सेवी संस्था के साथ मिलकर कार्य कर रही है।

फोर्ब्स मार्शल और आकांक्षा :- इसमें बच्चों में आत्म-विश्वास और अच्छे मूल्य के विकास हेतु अंग्रेजी का अध्ययन कराया जा रहा है। ये प्रोग्राम मनोरंजक अंदाज में पेश किये जाते हैं।

अद्यतन शिक्षा के सार्वभौमीकरण/सार्वजनीकरण हेतु "शिक्षा का अधिकार विधेयक बिल" पेश किया गया है जो पारित हो गया है तथा समस्त भारत में 1 अप्रैल, 2010 से लागू भी हो गया है।

बोध प्रश्न

प्र0 5 अजीज प्रेम जी ने किस प्रदेश में लर्निंग गारन्टी योजना प्रारम्भ की ?

.....

प्र0 6 शिक्षा का अधिकार बिल कब लागू किया गया।

.....

1.9 शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु किये गये प्रयासों का प्रतिफल

शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु किये गये प्रयास का सार्थक प्रतिफल रहा है।

इनका विवरण निम्नवत् है :-

- 2002-03 में विद्यालय से बाहर रहने वाले बच्चों की संख्या 320 लाख थी जो 2006 में घटकर 70.5 लाख रह गयी।
- प्राथमिक स्तर पर 2002-03 में लैंगिक अन्तर 5.5 प्रतिशत से घटकर 2005-06 में 4.2 प्रतिशत पर आ गया। उच्च प्राथमिक स्तर पर इस दौरान लैंगिक अन्तर 10.7 प्रतिशत से घटकर 8.8 प्रतिशत पर आ गया।
- प्राथमिक स्तर पर अपव्यय 2001-02 में 39.3 प्रतिशत था जो 2004-05 में घटकर 28.49 प्रतिशत रह गया।

सामयिक शैक्षिक प्रत्यय-।

- 1999-2000 में देश में प्राथमिक विद्यालयों की कुल संख्या 6.42 लाख थी जो 2004-05 में 7.67 लाख हो गयी। उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या इस दौरान 1.98 लाख से बढ़कर 2.75 लाख हो गयी। इस दौरान अध्यापकों एवं नामांकित छात्रों की संख्या में भी वृद्धि हो गयी।
- 1999 से प्राथमिक शिक्षा में निम्नलिखित प्रगति हुई :-

<u>संकेतक</u>	<u>1999-2000</u>	<u>2004-2005</u>
प्राथमिक विद्यालय	642000	767520
उच्च प्राथमिक विद्यालय	198000	274731
प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापक सं०	1919000	2310800
उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापक सं०	1298000	1439146
प्राथमिक विद्यालय में नामांकन	113.61 मिलियन	131.69 मिलियन
उच्च प्राथमिक विद्यालय में नामांकन	42.00 मिलियन	51.67 मिलियन
शिक्षा पर खर्च (% जी.डी.पी.)	3.77 %	3.74 %

- 1999 से शैक्षिक संस्थानों में वृद्धि :-

<u>वर्ष</u>	<u>प्राथमिक</u>	<u>उच्च प्राथमिक</u>	<u>प्राथमिक Vs उच्च प्राथमिक</u>
1999-2000	641695	198004	3.2
2000-2001	638738	206269	3.1
2001-2002	644041	219626	3.0
2002-2003	651382	245274	2.7
2003-2004	710471	262649	2.7
2004-2005	767520	274731	2.8

- 1999-2000 से 2004-2005 के दौरान प्राथमिक विद्यालयों में छात्रों की नामांकन संख्या में उच्च प्राथमिक विद्यालयों की अपेक्षा ज्यादा वृद्धि हुई किन्तु नामांकन दर में उच्च प्राथमिक विद्यालयों में ज्यादा वृद्धि हुई। प्राथमिक स्तर पर नामांकन दर 3.2 % थी जबकि उच्च प्राथमिक स्तर पर नामांकन दर 3.9 % थी। प्राथमिक और उच्च प्राथमिक दोनों स्तरों पर लड़के और लड़कियों के नामांकन दर में अन्तर था। लड़कियों का नामांकन दर लड़कों की अपेक्षा ज्यादा था। प्राथमिक स्तर पर जहाँ लड़कों का नामांकन दर 1.7 % था वहीं लड़कियों का 5.2 % था जबकि

उच्च प्राथमिक स्तर पर लड़कों का नामांकन दर जहाँ 2.2 % था वहीं लड़कियों का नामांकन दर 6.5 % था।

■ 1999-2000 से 2003-2004 के दौरान नामांकन (मिलियन में) :

वर्ष	प्राथमिक स्तर			उच्च प्राथमिक स्तर		
	लड़के	लड़किया	कुल	लड़के	लड़किया	कुल
1999-2000	64.1	49.5	113.6	25.1	17.0	42.1
2000-2001	64.0	49.8	113.8	25.3	17.5	42.8
2001-2002	63.6	50.3	113.9	26.1	18.7	44.8
2002-2003	65.1	57.3	122.4	26.3	20.6	46.9
2003-2004	68.4	59.9	128.3	27.3	21.4	48.7
2004-2005	70.12	61.56	131.69	28.71	22.96	51.67

यद्यपि शिक्षा के सार्वभौमीकरण/सार्वजनीकरण हेतु अनवरत अनेक प्रयास किये गये किन्तु फिर भी अपेक्षित लक्ष्य अप्राप्य ही है। इस मार्ग में अनेक बाधक तत्व हैं जो इस उद्देश्य की संप्राप्ति में बाधक हैं।

1.10 शिक्षा के सार्वजनीकरण में बाधक तत्व

शिक्षा के सार्वभौमीकरण में अनेक तत्व बाधक हैं। इनका विवरण निम्नवत् है :-

महिला शिक्षा का अभाव :- यूनेस्को के आंकलन के अनुसार महिलाओं की स्कूली शिक्षा में प्रत्येक अतिरिक्त वर्ष की बढ़ोत्तरी से शिशु मृत्यु दरमें छह प्रति हजार की कमी लायी जा सकती है। इस प्रकार अकेले महिला भी साक्षरता से स्वस्थ परिवार बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। भारत के केरल राज्य की महिला साक्षरता की दर सबसे ऊँची 95 प्रतिशत है और वहाँ प्रजनन दर 2.2 प्रतिशत व शिशु मृत्यु दर 22 प्रति हजार है, जो देश में सबसे कम है। महिला साक्षरता पर जोर देकर अच्छे परिणाम हासिल किये जा सकते हैं व समाज को नयी दिशा मिल सकती है।

आर्थिक विषमतायें :- सुदूर ग्रामीण अंचलों में रहने वाले परिवार मुख्यतः खेती और मजदूरी पर निर्भर होते हैं। विशेष रूप से अपवंचित वर्ग के परिवारों का भरण-पोषण मजदूरी पर ही होता है। परिवार का प्रत्येक सदस्य मजदूरी पर ही होता है। ऐसी स्थिति में इन परिवारों के बच्चों के लिए यह आशा करना कि वे औपचारिक विद्यालयों में प्रवेश लेकर नियमित शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे, दुराशामात्र

है। शहर तथा कस्बों में रहने वाले सुविधावंचित परिचित परिवारों की भी लगभग यही दशा है। अपने माता-पिता के साथ-साथ बच्चे भी, जो नौकरी करने योग्य होते हैं, किसी फैक्ट्री, दुकान अथवा होटल आदि में मजदूरी करना प्रारम्भ कर देते हैं। इन परिवारों में लड़कियों की स्थिति और भी दयनीय होकर रह जाती है। माता-पिता जब घर से बाहर मजदूरी करने चले जाते हैं उस स्थिति में अपने छोटे भाई-बहनों की देखभाल तथा घर के दूसरे काम-काज इन्हीं को करने पड़ते हैं। अपनी इन पारिवारिक परिस्थितियों के कारण माँ-बाप अपने बच्चों को विद्यालय में प्रवेश दिलाकर नियमित रूप से शिक्षा ग्रहण करने के लिए विद्यालय भेजने की बात पर जोर नहीं देते। निरीक्षण अधिकारी को चाहिए कि वह अपने निरीक्षण के समय समस्त अभिभावकों से सम्पर्क स्थापित करे और उन्हें शिक्षा की आवश्यकताओं एवं महत्व से अवगत कराये। साथ ही यह भी उनके दृव्यंगम करे कि बालिका शिक्षा से उनके परिवार को अनेक लाभ हो सकते हैं। शिक्षित बालिका घर का कार्य, भाई-बहनों की देखभाल, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता आदि की समस्त देखभाल उचित रूप में कर सकती हैं। अतः उनका पढ़ाना, परिवार और समाज के लिए एक अनिवार्यता है। इस प्रकार निरीक्षक वर्ग के प्रयत्नों से छात्र-छात्राओं का हास अवरोध किसी सीमा तक कम किया जा सकेगा।

शिक्षा की निरर्थकता :- शिक्षा के सार्वजनीकरण के मार्ग में दूसरी मुख्य बाधा शिक्षा की निरर्थकता है। अब नवीन शिक्षा नीति में यह कमी बहुत हद तक दूर कर दी गयी है। शिक्षा का उद्देश्य जहाँ बालक का सर्वांगीण विकास करना है वहीं उसे इस योग्य बनाना भी है कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो सके, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो सके। आज देश में लगभग एक करोड़ पचास लाख लोग शिक्षित बेरोजगार युवक-युवतियाँ हैं जो ऊँची-ऊँची डिग्रियाँ प्राप्त कर लेने के बाद भी नौकरी की तलाश में मारे-मारे घूम रहे हैं। शिक्षा के व्यावसायिक पक्ष पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। अभिभावक देखता है कि शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद भी उसके बच्चों को कोई रोजगार मिलना सम्भव नहीं है तो वह उन्हें मजदूरी में लगाये रखना ही अधिक श्रेयस्कर मानता है। शिक्षा की नवीन संकल्पनाओं के अनुसार समाजोपयोगी उत्पादक पैतृक व्यवसायों का स्थानीय विशेषज्ञों द्वारा प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था का कार्य करना है।

अनाकर्षक विद्यालय :-वर्तमान विद्यालयों की स्थिति भी इतनी आकर्षक नहीं है कि वे अभिभावकों तथा छात्रों को अपनी ओर आकर्षित कर सकें। ऐसे विद्यालयों में प्रवेश ले लेने के बाद भी बालक बीच में ही विद्यालय छोड़कर बाहर आ जाता है। उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार केवल 26 प्रतिशत छात्र ही कक्षा 8

तक पहुँच पाते हैं शेष लगभग 75 प्रतिशत हासग्रस्त होकर रह जाते हैं। बड़ी चिन्तनीय ओर दुःखद स्थिति है यह। शिक्षक को यह ध्यान देना होगा कि विद्यालय में भौतिक सुविधायें जैसे — फर्नीचर, दरी, पानी, शौचालय एवं खेल के मैदान कैसे हैं। परिसर में पेड़-पौधे हों एवं कक्षा सुसज्जित हो। किताबों की सुविधा हो। अध्यापकों के अध्यापन का ढंग रोचक हो। उन्हें सभी विषयों का ज्ञान हो। वे नवीन संकल्पनाओं से अवगत हों। हमें यह भी देखना होगा कि उनका अभिनवीकरण हो चुका है या नहीं। अगर नहीं तो कराने की कोशिश करें।

सामाजिक रूढ़ियाँ :- शिक्षा के सार्वजनीकरण के कार्य को कठिन बनाने में कुछ सामाजिक रूढ़ियों का भी विशेष हाथ है, विशेष रूप से महिलाओं की शिक्षा के सन्दर्भ में। समाज के अधिकांश वर्गों में आज भी यह वहम व्याप्त है कि लड़कियों का एकमात्र कार्यक्षेत्र घर की चारदीवारी के अन्दर तक ही सीमित है। छोटे भाई-बहनों की देखभाल करना, चौके-चूल्हे के कामों में माँ का हाथ बँटाना तथा घर गृहस्थी के दूसरे कार्यों में लगे रहकर सारा जीवन बिता देना बस इतना ही इनके लिए पर्याप्त है। शिक्षक को चाहिए कि वह अभिभावक एवं समुदाय के समक्ष गृहस्थी के आधुनिक दायित्वों की जानकारी भी दे और बताये कि बालिकाएँ देश की आधी जनसंख्या हैं, इन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता। शिक्षित बालिका जब अपना घर परिवार संभालती है तो वह अपने बच्चों को यथासम्भव सभी आवश्यक सुविधायें देने का प्रयत्न करती है और शिक्षा पर विशेष ध्यान देती है। उसके लिए लड़का और लड़की में अन्तर नहीं होता। अतः यह कहा जा सकता है कि बालक की अपेक्षा एक बालिका का साक्षर एवं शिक्षित होना अधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि यदि वह शिक्षित होगी तो अपने पूरे परिवार को शिक्षित बनाने में सहयोग दे सकेगी। निरीक्षक वर्ग बतायेगा कि देश के इस आधे अंग को किसी भी दशा में अनदेखा नहीं किया जा सकता। प्रतिवर्ष देश की जनसंख्या में एक करोड़ 30 लाख की वृद्धि हो जाती है। परन्तु विद्यालयों में वृद्धि इस गति से नहीं होती जिसके कारण शिक्षा की विभिन्न सुविधाओं में कमी प्रतीत होती है। आनुपातिक वृद्धि नहीं होती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही शासन शिक्षा के प्रचार-प्रसार में निरन्तर सजग एवं सचेष्ट रहा है। किन्तु उससे ये सारे प्रयत्न बढ़ती जनसंख्या के कारण अपर्याप्त प्रतीत होते हैं। जनसंख्या की योजनाबद्ध वृद्धि जहाँ एक ओर उनके जीवन की गुणवत्ता बढ़ायेगी वहीं दूसरी ओर अन्य साधनों एवं प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को भी नियमित करेगी। शिक्षक अपने बच्चों की वास्तविक संख्या और नामांकित संख्या का अन्तर देखें और अभिभावकों को उनके दाखिले की प्रेरणा दें कि नामांकन वास्तविक हो फर्जी नहीं।

भारत की उन्नति के लिए जनता का शिक्षित होना अनिवार्य है और जनता की शिक्षा के लिए आवश्यक है — शिक्षा का सार्वजनीकरण या सार्वभौमीकरण । लगभग 35 प्रतिशत भारतीय अभी भी निरक्षर हैं । इन सबको शिक्षित करना हमारा परम कर्तव्य है । अनिवार्य शिक्षा की समस्याएँ अत्यन्त जटिल एवं दुरूह हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं; पर हमें स्मरण रखना चाहिए कि आज के प्रत्येक उन्नत देश को अनिवार्य शिक्षा का प्रसार करने के लिए अनेकानेक बाधाओं का सामना करना पड़ा है । 40 वर्ष के लम्बे अरसे में अमेरिका ने फिलीपीन्स द्वीप की साक्षरता 2 से 55 प्रतिशत तक बढ़ायी । 25 वर्ष की अवधि में पूर्णवर्ती सोवियत रूस की साक्षरता 8 प्रतिशत से 88 प्रतिशत पहुँची । इसी प्रकार चीन और टर्की ने भी अनेक समस्याओं से जूझते हुए अपने यहाँ शिक्षा का प्रसार किया है ।

हमारे यहाँ व्यापक निरक्षरता का कारण यह भी है कि हम शिक्षा पर बहुत कम खर्च कर रहे हैं और प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में तो और भी कम व्यय किया जा रहा है । विश्व के अधिकांश देश शिक्षा पर जितना व्यय करते हैं, उसका लगभग 50 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा पर व्यय करते हैं जबकि भारत में यह प्रतिशत बहुत कम रहा है । वर्ष 1966-69 में तो यह 24 प्रतिशत ही था । सातवीं योजना में 37, आठवीं योजना में 48, नवीं योजना में 65 प्रतिशत रहा । दसवीं योजना में भी इसे 65 प्रतिशत रखा गया है । सन् 1951 में भारत अपनी राष्ट्रीय आय का 1.2 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करता था । पचपन वर्ष पश्चात् आज भारत अपनी राष्ट्रीय आय का लगभग तीन प्रतिशत शिक्षा पर खर्च कर रहा है । अन्य विकसित देशों की तुलना में यह प्रतिशत बहुत ही कम है । रूस अपनी राष्ट्रीय आय का लगभग आठ प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करता है, जापान छह प्रतिशत, इंग्लैण्ड 5.3 प्रतिशत और अमेरिका 6.2 प्रतिशत । हमें भी शिक्षा पर व्यय किये जाने वाले इस प्रतिशत को बढ़ाना होगा, शिक्षा को राष्ट्र निर्माण का साधन बनाना होगा, तभी देश की वास्तविक प्रगति सम्भव है । शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु व्यापक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है । कुछ बिन्दु निम्नवत् हैं :—

1. वर्तमान विद्यालयों की धारण क्षमता बढ़ाना ।
2. आवश्यकतानुसार नये विद्यालयों की व्यापक स्तर पर व्यवस्था ।
3. निर्धन एवं सुविधा वंचित वर्ग के लिए पर्याप्त आर्थिक सहायता ।
4. शिक्षा को सार्थक एवं उद्देश्यपूर्ण बनाना ।
5. आवश्यकतानुसार अंशकालिक शिक्षा की व्यवस्था करना ।
6. जनसंख्या शिक्षा द्वारा जनसंख्या वृद्धि को संयमित करना ।

7. बालिकाओं तथा महिलाओं की शिक्षा को अधिक प्रोत्साहन देना।

अन्त में निष्कर्ष रूप में यह कहना युक्तिसंगत होगा कि प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण कार्यक्रम की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कदम अपनी समस्त शक्तियों को एकजुट करना और प्रस्तावित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एकत्र होकर प्रयास करना है। इसके लिए आवश्यक है कि कार्यक्रम से संबद्ध सभी व्यक्ति निष्ठा और लगन के साथ कार्य करें। अभिभावकों को शिक्षा की उपयोगिता एवं जीवन में उसकी आवश्यकता के प्रति आश्वस्त करायें। शिक्षा आरम्भ करने योग्य सभी बच्चों को विद्यालयों—अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों तक लाने और उन्हें विद्यालय स्तर की सम्पूर्ण शिक्षा तक अध्ययनरत रखने के लिए शिक्षकों को प्रयास करने के लिए प्रेरित करें। हमें चाहिए कि हम समुदाय का अंग बनें, छात्र-छात्राओं के शुभचिन्तक बनें, देश के प्रति दृढ़ निष्ठा रखें, स्वार्थ की भावना से दूर रहें और राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत हों। शिक्षा का सार्वजनीकरण तभी संभव होगा जब हर व्यक्ति चाहे वह किसी जाति, धर्म, वर्ग, लिंग और समुदाय से सम्बन्धित हो, निः स्वार्थ भाव से इस दिशा में हर सम्भव प्रयास करेगा।

1.11 सारांश

अब तक आप जान चुके हैं कि शिक्षा का सार्वभौमिकरण एक संवैधानिक लक्ष्य है भारत में सार्वजनिकरण का अभिप्राय है— जन-जन को शिक्षित करना। प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु किये गये प्रयासों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

- स्वतन्त्रता से पूर्व किये गये प्रयास
- स्वतन्त्रता के पश्चात किये गये प्रयास

1994 से जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना (डी०पी०ई०पी०) प्रारम्भ की गयी थी। सर्व शिक्षा अभियान प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनिकरण की महत्वपूर्ण परियोजना है। इस दिशा में विभिन्न स्वयं सेवी संस्थानों जैसे अजीज जी फाउन्डेशन, वन श्री ट्रस्ट, पोथमकदम स्कूल आकांक्षा आदि ने सराहनीय प्रयास किया।

महिला शिक्षा का अभाव, शिक्षा की निरर्थकता, अनाकर्षक विद्यालय, सामाजिक रूढ़ियाँ शिक्षा के सार्वजनीकरण के बाधक तत्व हैं।

1.12 सारांश

- प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण से आप क्या समझते हैं ?

- शिक्षा के सार्वभौमीकरण में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका स्पष्ट कीजिये।

1.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

उ० 1 अनुच्छेद 45 में

उ० 2 6 – 14 वय वर्ग के बच्चों

उ० 3 यह कार्यक्रम भारत और संयुक्त राष्ट्रसंघ मिलकर चला रहे हैं।

उ० 4 निरक्षर प्रौढ़ों को साक्षर बनाने का उद्देश्य

उ० 5 कर्नाटक प्रदेश में

उ० 6 अप्रैल 2010 से

इकाई-2 पाठ्यक्रम विकास

संरचना

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 पाठ्यक्रम का अर्थ
- 2.4 पाठ्यक्रम विकास
- 2.5 पाठ्यक्रम के उद्देश्य
- 2.6 पाठ्यक्रम की आवश्यकता
- 2.7 पाठ्यक्रम के प्रकार
- 2.8 आदर्शवाद और पाठ्यक्रम
- 2.9 प्रयोजवाद तथा पाठ्यक्रम
- 2.10 यथार्थवाद और पाठ्यक्रम
- 2.11 पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त
- 2.12 पाठ्यक्रम संगठन के प्रतिमान
- 2.13 सारांश
- 2.14 अभ्यास प्रश्न
- 2.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.1 प्रस्तावना

शिक्षा एक विकास की प्रक्रिया मानी जाती है, जिससे बालक के बहुमुखी तथा सर्वांगीण विकास का प्रयास किया जाता है। शिक्षा के अन्तर्गत शिक्षण, अनुदेशन तथा प्रशिक्षण की क्रियाओं को प्रयुक्त करते हैं, जिनसे छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन किया जाता है। शिक्षण की क्रियाओं को प्रयुक्त करते हैं, जिनसे छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन किया जाता है। शिक्षण की क्रियाओं का सम्पादन का आधार पाठ्यवस्तु अथवा विषयवस्तु होती है। पाठ्यवस्तु विकास के लिये एक प्रमुख साधन है परन्तु अतीत में इसे साध्य भी माना जाता रहा है। शिक्षक अपनी शिक्षण क्रियाओं द्वारा ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है जिसमें छात्रों को नये अनुभव होते हैं तथा उन्हें कुछ करकना भी पड़ता है। परिणाम यह होता है उनमें अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन होता है अथवा वे सीखते हैं। सीखने/में व्यवहार परिवर्तन आवश्यक होता है। इस प्रकार शिक्षण क्रियाओं का आधार पाठ्यवस्तु या विषयवस्तु होती है। विषयवस्तु के प्रारूप को साधारणतयः पाठ्यक्रम

(Curriculum) कहते हैं। शिक्षा तथा शिक्षण का स्वरूप पाठ्यक्रम के प्रारूप द्वारा निर्धारित होता है। शिक्षा की प्रक्रिया की धुरी पाठ्यक्रम है। पाठ्यक्रम का सम्बन्ध शिक्षा के औपचारिक माध्यम से होता है। शिक्षा के इतिहास का अवलोकन करने पर विदित होता है कि पाठ्यक्रम का अर्थ एवं इसका प्रारूप बदलता रहा है। यहाँ पाठ्यक्रम सम्बन्धी तीन मौलिक प्रश्नों—क्या, क्यों तथा कैसे? का उत्तर देने का प्रयास किया गया है। जिससे पाठ्यक्रम प्रत्यय के अर्थ, प्रारूप एवं उसकी उपादेयता का बोधगम्य किया जा सके।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप हो जायेंगे—

- पाठ्यक्रम की अवधारणा तथा पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया से
- पाठ्यक्रम की आवश्यकता एवं प्रकारों से
- पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त तथा प्रतिमानों से

2.3 पाठ्यक्रम का अर्थ

अंग्रेजी भाषा में पाठ्यक्रम के लिये 'करीक्यूलम' (Curriculum) शब्द का प्रयोग किया जाता है। परन्तु 'करीक्यूलम' लैटिन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है—दौड़ का मैदान (Race Course)। शिक्षा के अन्तर्गत इसका अर्थ होता है, 'छात्रों का कार्य क्षेत्र' अथवा 'छात्रों के दौड़ का मैदान'। यहाँ पर दो शब्द—दौड़ तथा मैदान प्रयुक्त किये गये हैं। 'मैदान' का अर्थ पाठ्यक्रम से है और 'दौड़' का अर्थ छात्रों द्वारा अनुभव एवं उनकी क्रियाओं से है। शिक्षक पाठ्यक्रम की सहायता से अपनी शिक्षण क्रियाओं का सम्पादन करता है जिसमें छात्र अनुभव तथा क्रियायें करके अपना विकास करता है और अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँच जाता है। इस प्रकार छात्र मैदान में दौड़ करके अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सफलता प्राप्त करता है। शिक्षक की दृष्टि से पाठ्यक्रम एक दिशा एवं साधन है जिसका अनुसरण करके शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है। पाठ्यवस्तु के व्यवस्थित रूप को पाठ्यक्रम की संज्ञा देते हैं। जो छात्रों की आवश्यकता की पूर्ति के लिये तैयार किया जाता है।

पाठ्यक्रम के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास दार्शनिकों, समाजशास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों ने भी किया है। समाजशास्त्री पाठ्यक्रम का अर्थ अधिक व्यापक लगाते हैं। उनके अनुसार 'पाठ्यक्रम' शब्द का अर्थ—उन सभी क्रियाओं एवं परिस्थितियों से होता है जिनका नियोजन एवं सम्पादन विद्यालय द्वारा बालकों के विकास के लिये किया जाता है। शिक्षा के उद्देश्य बदलते रहे हैं इसलिये पाठ्यक्रम का अर्थ भी बदलता रहा है। अतीत में पाठ्यक्रम का अर्थ संकुचित था कुछ विषयों में शिक्षा के प्रारूप को ही पाठ्यक्रम कहते थे परन्तु आज के सन्दर्भ में अधिक व्यापक अर्थ है। बालक को भावी जीवन के लिये तैयार कर सकें ऐसा पाठ्यक्रम होना चाहिये केवल ज्ञान देने तक सीमित नहीं।

पाठ्यक्रम विकास सदैव भविष्य के लिए किया जाता है।

पाठ्यक्रम की परिभाषा (Definition of Curriculum)—शिक्षाशास्त्रियों ने पाठ्यक्रम को अनेक प्रकार से परिभाषित किया है। कुछ प्रमुख परिभाषायें इस प्रकार से हैं—
कर्निघम—“कलाकार (शिक्षक) के हाथ में यह (पाठ्यक्रम) एक साधन है जिससे वह पदार्थ (शिक्षार्थी) को अपने आदर्श उद्देश्य के अनुसार अपने स्टूडियो (स्कूल) में ढाल सके।”

"It (curriculum) is a tool in the hands of the artist (teacher) to mould his material (pupil) according to his ideal (objective) in his studio (school)."

-Cunningham

फ्राबेल—“पाठ्यक्रम को मानव जाति के सम्पूर्ण ज्ञान तथा अनुभवों का सार समझना चाहिये।”

"Curriculum should be conceived as an epitome of the rounded whole of the knowledge and experience of the human race."

-Frobel

मुनरो—“पाठ्यक्रम में वे सब क्रियायें सम्मिलित हैं जिनका हम शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के हेतु विद्यालय में उपयोग करते हैं।”

"Curriculum includes all those activities which are utilised by the school to attain the aims of education."

-Munroe

हार्न—“पाठ्यक्रम वह है जो बालकों को पढ़ाया जाता है। यह शान्ति पूर्ण पढ़ने या सीखने से अधिक है। इसमें उद्योग, व्यवसाय, ज्ञानोपार्जन, अभ्यास और क्रियायें सम्मिलित हैं।”

"Curriculum is that which is taught to the students. It is more than reading and writing. It includes practice, activities, industry, vocation and acquiring knowledge."

-H.H.Horne

कैसबैल—“पाठ्यक्रम में वे सभी वस्तुयें आती हैं जो बालको के, उनके माता-पिता एवं शिक्षकों के जीवन से होकर गुजरती है। पाठ्यक्रम उन सभी चीजों से बनता है जो सीखने वालों को कम करने के घण्टों में घेरे रहती हैं। वास्तव में पाठ्यक्रम को गतिमान वातावरण कहा जाता है।”

"The curriculum is all that goes in the lives of children, their parents and teachers. The curriculum is made up everything that surrounds the learner in all his working hours. In fact the curriculum has been described as the environment in motion,"

-Casewell

माध्यमिक शिक्षा आयोग—“पाठ्यक्रम का अर्थ रूढ़िवादी ढंग से पढ़ाये जाने वाले बौद्धिक विषयों से नहीं है परन्तु उसके अन्तर वे सभी क्रिया-कलाप आ जाते हैं, जो बालकों को कक्षा के बाहर तथा भीतर प्राप्त होते हैं।”

"Curriculum does not mean the academic subject taught in the school but it includes total experiences that a child receives at a school."

-Secondary Education Commission

जॉन एफ० कीर के अनुसार—“विद्यालय द्वारा सभी प्रकार अधिगम तथा निर्देशन का नियोजन किया जाता है चाहे वह व्यक्तिगत रूप से या सामूहिक रूप में, विद्यालय के अन्दर अथवा बाहर व्यवस्थित की जायें वे सभी पाठ्यक्रम प्रारूप होती है।”

"All the learning which is planned or guided by the school, whether it is carried on in groups or individually, inside or outside the school, is known as curriculum."

-John F. Keer

फिलिप एच० टेलर के अनुसार—“पाठ्यक्रम के अन्तर्गत, पाठ्यवस्तु, शिक्षण, शिक्षण विधियाँ तथा उद्देश्यों को सम्मिलित किया जाता है तथा इन क्रियाओं को कैसे आरम्भ किया जाये। इन तीनों पक्षों की अन्तःप्रक्रिया को पाठ्यक्रम कहते हैं।”

"The curriculum consists of content, teaching methods and purpose may be in its rough and ready may be a sufficient definition with which to start. These three dimensions interacting are operational curriculum." -Philip H. Taylor

पाल हिस्ट के अनुसार—“उन सभी क्रियाओं का प्रारूप जिनके द्वारा छात्र शैक्षिक लक्ष्यों अथवा उद्देश्यों को प्राप्त कर लेंगे पाठ्यक्रम की संज्ञा दी जाती है।”

"A programme of activities designed so that pupils will attain, as far as possible, certain education ends or objectives is known as the curriculum." -Paul Hirst

इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि पाठ्यक्रम केवल विद्यालय शिक्षण विषयों तक ही सीमित नहीं होता है अपितु विद्यालय में नियोजित एवं सम्पादित सभी क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जो बालक के विकास में सहायक होती है। पाठ्यक्रम में सम्पूर्ण क्रियाओं एवं अनुभवों को सम्मिलित किया जाता है जो बालक में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन में सहायक होता है।

पाठ्यक्रम एवं पाठ्यवस्तु में अन्तर (Difference Between Curriculum and Syllabus)—पाठ्यक्रम एवं पाठ्यवस्तु दो शब्दों को साधारणत एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है परन्तु शिक्षाशास्त्र के अन्तर्गत दोनों में अन्तर है, जो इस प्रकार है—

क्र० सं०	पाठ्यक्रम (Curriculum)	पाठ्यवस्तु (Syllabus)
1.	पाठ्यक्रम का स्वरूप अधिक व्यापक होता है।	पाठ्यवस्तु का स्वरूप संकुचित एवं सुनिश्चित होता है।
2.	पाठ्यक्रम के अन्तर्गत पाठ्यवस्तु को सम्मिलित किया जाता है।	पाठ्यवस्तु पाठ्यक्रम का एक अंग है।
3.	इसका सम्बन्ध बालक के सर्वांगीण विकास अर्थात् ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक, शारीरिक एवं सामाजिक विकास से होता है।	इसके अन्तर्गत ज्ञानात्मक विकास को सम्मिलित किया जाता है अर्थात् इसका सम्बन्ध ज्ञानात्मक विकास से होता है।

4.	पाठ्यक्रम के अन्तर्गत वे सभी अनुभव आ जाते हैं जिन्हें छात्र विद्यालयी जीवन में प्राप्त करता है तथा जिनमें कक्षा के अन्दर एवं बाहर आयोजित की जाने वाली पाठ्य एवं पाठ्येत्तर क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं।	जबकि पाठ्य-वस्तु में पाठ्य-विषयों से सम्बन्धित क्रियाओं का ही समावेश होता है।
----	--	---

2.4 पाठ्यक्रम विकास

इस प्रत्यय में 'पाठ्यक्रम विकास' का प्रयोग साधारण तथा अधिक किया जाता है। 'पाठ्यक्रम विकास' का अर्थ निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया जो कभी समाप्त नहीं होती है। कहाँ से आरम्भ हुई इसका भी बोध नहीं है। शिक्षण की आवश्यकता की जानकारी छात्रों की उपलब्धियों से हो जाती है जिनको शिक्षक प्राप्त करने का प्रयास करता है। परीक्षण के द्वारा यह भी जानकारी हो जाती है कि किस सीमा तक उद्देश्य प्राप्त हुए हैं।

इसको दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि अधिगम-अवसरों के नियोजन द्वारा छात्रों के व्यवहारों में विशिष्ट परिवर्तन लाना तथा परीक्षण द्वारा यह जानना कि किस सीमा तक अपेक्षित परिवर्तन हुआ है। इस प्रत्यय को पाठ्यक्रम-विकास की संज्ञा दी जाती है। पाठ्यक्रम का मुख्य लक्ष्य छात्रों का विकास कराना है इसलिये पाठ्यक्रम का प्रारूप ऐसा हो जिससे छात्रों के व्यवहारों में अपेक्षित परिवर्तन किया जा सके। यह प्रक्रिया चक्रीय तथा निरन्तर चलने वाली मानी जाती है। इसके प्रमुख तत्व चार माने जाते हैं-

1. शिक्षण उद्देश्य-सभी साधनों का प्रयोग उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये किया जाता है पाठ्यवस्तु एक साधन है उद्देश्यों को प्राप्त करने की दृष्टि।
2. शिक्षण विधि तथा पाठ्यवस्तु-छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन के लिये अधिगम-परिस्थितियाँ तथा अवसर शिक्षण विधियों एवं पाठ्यवस्तु की सहायता से उत्पन्न किये जाते हैं जिससे उद्देश्य प्राप्त किया जा सकें।
3. परीक्षण प्रक्रिया-इसके द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है कि शिक्षण विधियों तथा पाठ्यवस्तु से किसी सीमा तक उद्देश्यों को प्राप्त किया गया है।
4. पृष्ठपोषण-परीक्षण का अर्थापन शिक्षकों तथा छात्रों को पृष्ठपोषण प्रदान करना है तथा पाठ्यक्रम के प्रारूप को सुधार के लिये दिशा मिलती है। पृष्ठपोषण मूल्यांकन का प्रभाव होता है।

बोध प्रश्न

प्र0 1 पाठ्यक्रम का मुख्य लक्ष्य क्या है ?

.....

प्र0 2 पृष्ठपोषण से आप क्या समझते हैं ?

.....

2.5 पाठ्यक्रम के उद्देश्य

शिक्षा की प्रक्रिया के तीन प्रमुख घटक होते हैं—

1. शिक्षक
2. शिक्षार्थी तथा
3. पाठ्यक्रम

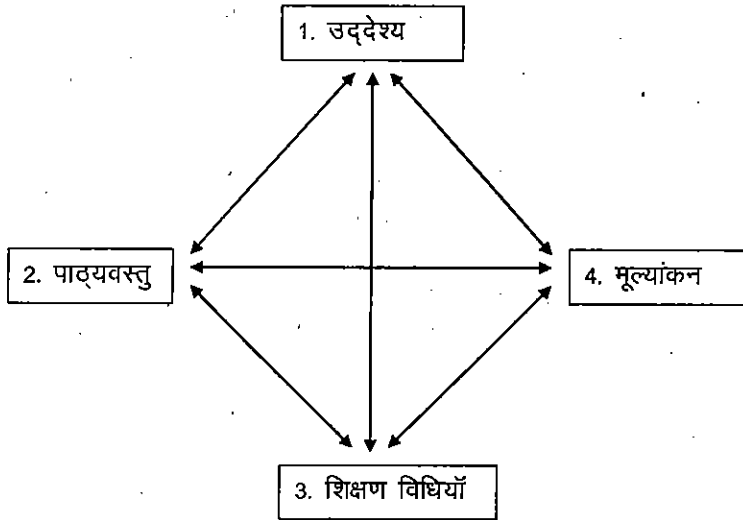
शिक्षण में शिक्षक तथा छात्र के मध्य अन्तःक्रिया पाठ्यक्रम के माध्यम से होती है। इस प्रकार पाठ्यक्रम शिक्षण की क्रियाओं को दिशा प्रदान करते हैं। इन तीनों घटकों के पारस्परिक अन्तःक्रिया द्वारा बालक का विकास किया जाता है। शिक्षण में तीन घटकों का विशेष महत्व होता है। इस प्रकार पाठ्यक्रम के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं—

1. पाठ्यक्रम बालक के सम्पूर्ण विकास हेतु साधन प्रदान करता है, जिसकी सहायता से शिक्षण की क्रिया को सम्पादित किया जाता है।
2. पाठ्यक्रम को मानव जाति के अनुभवों को सम्मिलित रूप से स्पष्ट करके संस्कृति तथा सभ्यता का हस्तांतरण एवं विकास करना।
3. पाठ्यक्रम को बालक में मित्रता, ईमानदारी, निष्कपटता, सहयोग, सहनशीलता, सहानुभूति एवं अनुशासन आदि गुणों को विकसित करके नैतिक चरित्र का निर्माण करना।
4. पाठ्यक्रम को बालक की चिन्तन, मनन, तर्क तथा विवेक एवं निर्णय आदि सभी मानसिक शक्तियों का विकास करना।
5. पाठ्यक्रम को बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं से सम्बन्धित सभी आवश्यकताओं, मनोवृत्तियों तथा क्षमताओं एवं योग्यताओं के अनुसार नाना प्रकार की सर्जनात्मक तथा रचनात्मक शक्तियों का विकास करना।
6. पाठ्यक्रम को सामाजिक तथा प्राकृतिक विज्ञानों एवं कलाओं तथा धर्मों के आवश्यक ज्ञान द्वारा ऐसे गतिशील तथा लचीले मस्तिष्क का निर्माण करना चाहिये जो प्रत्येक परिस्थिति में साधनपूर्ण तथा साहसपूर्ण बनकर नवीन मूल्यों का निर्माण करना।
7. पाठ्यक्रम को ज्ञान तथा खोज की सीमाओं को बढ़ाने के लिये अन्वेषकों का सृजन करना।
8. पाठ्यक्रम को विषयों तथा क्रियाओं के बीच की खाई को पाटकर बालक के सामने ऐसी क्रियाओं को प्रस्तुत करना जो उसके वर्तमान तथा भावी जीवन के लिये उपयोगी बनाना।

9. पाठ्यक्रम को बालक में जनतंत्रीय भावना का विकास करना।
10. पाठ्यक्रम शिक्षण क्रियाओं तथा शिक्षक तथा छात्र के मध्य अन्तःप्रक्रिया के स्वरूप निर्धारित करना।

पाठ्यक्रम के मूल तत्व (Basic Elements of Curriculum)—शिक्षा की प्रक्रिया का सम्पादन शिक्षक द्वारा किया जाता है। शिक्षक अपनी क्रियाओं का नियोजन कक्षा शिक्षण के लिये करता है उसके प्रमुख तीन तत्व होते हैं—उद्देश्य, पाठ्यवस्तु एवं शिक्षण विधियाँ। 'पाठ्यक्रम विकास' में पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण विधियों को महत्व दिया जाता है। पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण विधियों को नियोजन उद्देश्यों की दृष्टि से किया जाता है। एक पाठ्यवस्तु से कई उद्देश्य प्राप्त किये जा सकते हैं। परन्तु अधिगम अवसरों एवं परिस्थितियों उद्देश्यों के स्वरूप को सुनिश्चित करते हैं। विशिष्ट उद्देश्यों हेतु विशिष्ट अधिगम-परिस्थितियों का नियोजन किया जाता है। शिक्षण तथा अधिगम क्रियायें पाठ्यक्रम के ही प्रमुख तत्व माने जाते हैं। इस प्रकार पाठ्यक्रम के चार मूल तत्व माने हैं—उद्देश्य, पाठ्यवस्तु, शिक्षण विधियाँ तथा मूल्यांकन। इन तत्वों में गहन सम्बन्ध होता है।

- (1) उद्देश्य—पाठ्यवस्तु शिक्षण विधियों तथा परीक्षणों का नियोजन उद्देश्यों की दृष्टि से किया जाता है। अधिगम परिस्थितियों के स्वरूप से इन्हें प्राप्त करते हैं।
- (2) पाठ्यवस्तु—पाठ्यवस्तु का स्वरूप अधिक व्यापक होता है। अधिगम परिस्थितियों उसके स्वरूप को सुनिश्चित करती है।



पाठ्यक्रम के मूल तत्वों में सम्बन्ध

(3) शिक्षण विधियाँ—उपयुक्त शब्द शिक्षण आव्यूह का चयन उद्देश्यों की प्राप्ति से किया जाता है। शिक्षण विधियों का सम्बन्ध पाठ्यवस्तु से होता है। शिक्षण आव्यूह अधिगम-परिस्थितियों को उत्पन्न करती है जिससे छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन किये जाते हैं। जो पाठ्यवस्तु के स्वरूप को सुनिश्चित करते हैं।

पाठ्यक्रम का शैक्षिक तत्वों का सम्बन्ध (Relationship of Curriculum to Education Elements)—पाठ्यक्रम का शैक्षिक तत्वों से गहन सम्बन्ध होता है।

शिक्षा-प्रक्रिया के अन्तर्गत चार प्रमुख तत्व होते हैं-शिक्षण, अधिगम पाठ्यक्रम तथा शैक्षिक नियोजन। शिक्षण तथा अधिगम में सम्बन्ध होता है क्योंकि शिक्षण क्रियाओं से अधिगम परिस्थितियों उत्पन्न की जाती है। शिक्षण क्रियाओं का सम्पादन पाठ्यवस्तु के आधार पर किया जाता है, जिसका स्वरूप पाठ्यक्रम निश्चित करता है, विद्यालय में शैक्षिक आयोजन के अन्तर्गत शिक्षण अधिगम के अतिरिक्त अन्य पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का नियोजन किया जाता है जिससे शैक्षिक परिस्थितियों आयोजित की जाती है, इस प्रकार के चारों तत्वों के आपसी सम्बन्ध का विवेचन एवं प्रस्तुतीकरण-हासफोर्ड ने अपनी पुस्तक के अन्तर्गत किया है। इन्होंने शिक्षा के चार तत्वों के महत्व को दिया है।

(अ) अधिगम (छात्र)

(ब) शिक्षण (शिक्षक)

(स) पाठ्यक्रम तथा

(द) शैक्षिक नियोजन

(अ) अधिगम वह प्रक्रिया है जो व्यवहार में परिवर्तन लाती है।

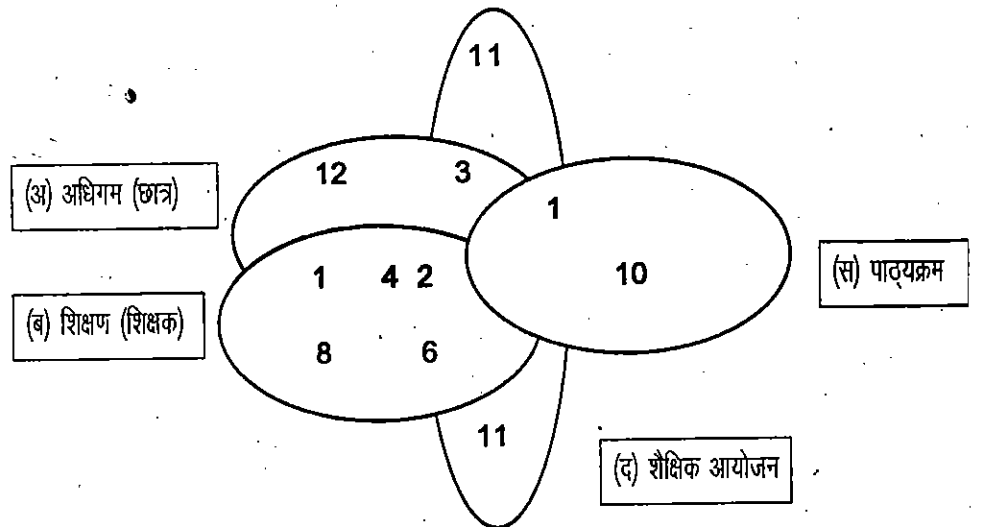
(ब) शिक्षण वह प्रक्रिया है जो अधिगम में सुगमता प्रदान करती है।

(स) पाठ्यक्रम में विद्यालयों द्वारा नियोजित अनुभवों को सम्मिलित किया जाता है।

(द) शैक्षिक नियोजन में समस्त शैक्षिक अनुभवों की क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जो विद्यालय में तथा विद्यालय से बाहर की जाती है।

इन चारों पक्षों के अन्तः प्रक्रिया में घटकों का विवरण इस प्रकार है-

शिक्षण के चारों पक्षों में अन्तःप्रक्रिया का स्वरूप



1. इसमें पाठ्यक्रम के उस पक्ष को शैक्षिक नियोजन में सम्मिलित किया जाता है, जिसमें शिक्षक की आवश्यकता नहीं होती है।
2. इसमें शिक्षक, छात्र तथा पाठ्यक्रम तीनों के मध्य अन्तःप्रक्रिया होती है।
3. छात्र शैक्षिक-नियोजन में बिना पाठ्यक्रम तथा शिक्षक के अन्तःप्रक्रिया

होती है।

4. छात्र तथा शिक्षक में पाठ्यक्रम के बिना शैक्षिक आयोजन से अन्तःप्रक्रिया होती है।
5. शिक्षक तथा पाठ्यक्रम के मध्य शैक्षिक-आयोजन के अन्तर्गत अन्तःप्रक्रिया होती है।
6. शिक्षक तथा शैक्षिक आयोजन के मध्य बिना पाठ्यक्रम के अन्तःप्रक्रिया होती है।
7. शिक्षक तथा छात्र के मध्य बिना पाठ्यक्रम तथा शैक्षिक नियोजन के अन्तर्गत अन्तःप्रक्रिया होती है।
8. शिक्षक का व्यवहार बिना पाठ्यक्रम तथा शैक्षिक-आयोजन के होता है।
9. पाठ्यक्रम तथा शैक्षिक-आयोजन की अन्तःप्रक्रिया जो छात्र तक नहीं पहुँचती है।
10. पाठ्यक्रम तथा शैक्षिक-आयोजन में प्रयोग न किया जाये और न छात्रों तक पहुँच सके।
11. शैक्षिक-आयोजन का वह कार्यक्रम जिसे प्रयुक्त न किया जा सके।
12. छात्र का समस्त शैक्षिक-आयोजन, शिक्षण तथा पाठ्यक्रम के द्वारा ही नहीं होता है। इसमें छात्र का वह अधिगम सम्मिलित किया जाता है जो अन्य माध्यमों से होता है।

इस प्रकार पाठ्यक्रम सत्त्व की भूमिका शिक्षा परिस्थितियों के नियोजन के लिये अहम होती है।

बोध प्रश्न

प्र0 3 शिक्षा प्रक्रिया के तीन प्रमुख घटक क्या है।

.....

.....

प्र0 4 पाठ्यवस्तु का स्वरूप कैसे सुनिश्चित होता है।

.....

.....

2.6 पाठ्यक्रम की आवश्यकता

शिक्षा की आवश्यकता और पाठ्यक्रम की आवश्यकता समान है। परन्तु शिक्षा की ऐतिहासिक समीक्षा से विदित होता है कि ये आवश्यकतायें बदलती रही हैं। इसलिये इन सभी आवश्यकताओं का उल्लेख यहाँ पर किया गया है—

1. ज्ञान प्राप्त करने के लिये अन्य जीवों से प्रमुख भिन्नता मानवी ज्ञान की

- दृष्टि मानी जाती है।
2. मानसिक पक्षों का प्रशिक्षण तथा विकास करने के लिये। विभिन्न विषयों शिक्षण से मानसिक पक्षों का प्रशिक्षण किया जाता है।
 3. व्यवसाय तथा नौकरियों के लिये तैयार करना। शिक्षा से नौकरियों के लिये है।
 4. छात्रों में अभिरुचियों उत्पन्न करने के लिये। छात्रों की क्षमताओं के अनुरूप उनका विकास करना।
 5. प्रजातन्त्र में सामाजिक क्षमताओं का विकास करना ऐसे नागरिकों को तैयार करना जो प्रजातन्त्र को नेतृत्व प्रदान कर सकें।
 6. छात्रों को व्यवसायों के लिये प्रशिक्षण देकर तैयार करना। नई शिक्षा नीति की प्राथमिकता है।
 7. आम मानवी गुणों के विकास के लिये शिक्षा में महत्व दिया जाता है, आत्मानुभूति का विकास किया जाये।
 8. सामाजिक आवश्यकताओं के लिये नागरिकों को तैयार करना तथा सौंदर्यानुभूति गुणों का विकास करना।
 9. प्रमुख आवश्यकता आज जीने की है कि आज परिस्थितियों में जीवित रह सकें। इसके लिये प्रशिक्षण दिया जाये।
 10. छात्रों को भावी जीवन के लिये तैयार कर सकें। शिक्षा भावी जीवन-यापन के लिये दी जाती हैं।
 11. तकनीकी विकास तथा वैज्ञानिक आविष्कारों के लिये भी तैयार करना। शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है जो सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक नियन्त्रण के लिये प्रभावी यन्त्र है। इसलिये समाज की राष्ट्र की भावी आवश्यकताओं एवं परिवर्तन के लिये पाठ्यक्रम का विकास करना प्रमुख आवश्यकता है।

पाठ्यक्रम को प्रभावित करने वाले घटक:—(Factors Influencing Curriculum)—पाठ्यक्रम का सम्पादन शैक्षिक तथा सामाजिक परिस्थितियों में किया जाता है। इसलिये शैक्षिक तथा सामाजिक घटक पाठ्यक्रम को प्रभावित करते हैं। यहाँ पर पाठ्यक्रम को प्रभावित करने वाले घटकों को विवेचन किया गया है।

1. **शिक्षा व्यवस्था (Organization of Education)**—शिक्षा के इतिहास से यह विदित होता है कि अतीत काल से ही शिक्षा व्यवस्था और पाठ्यक्रम का गहन सम्बन्ध रहा है और एक दूसरे को प्रभावित करते रहे हैं। पाठ्यक्रम प्रायः लचीला तथा परिवर्तनशील रहा है। छोटे बालकों का पाठ्यक्रम अनुभव केन्द्रित रहा है। माध्यमिक स्तर पर विषय-केन्द्रित रहा है। शिक्षा व्यवस्था के बदलने के साथ पाठ्यक्रम का प्रारूप भी बदल जाता है।

2. परीक्षा प्रणाली (Examination System)—परीक्षा प्रणाली पाठ्यक्रम को प्रभावित करती है। निबन्धात्मक परीक्षा के पाठ्यक्रम का स्वरूप वस्तुनिष्ठ परीक्षा से बिल्कुल ही भिन्न प्रकार का होता है। वस्तुनिष्ठ परीक्षा में पाठ्यवस्तु से सूक्ष्म पाठ्यवस्तु पर प्रश्न पूछे जाते हैं। निबन्धात्मक परीक्षा से उच्च उद्देश्यों का मापन क्रिया जाता है जबकि वस्तुनिष्ठ से निम्न उद्देश्यों का ही आंकलन किया जाता है।

3. शासन पद्धति (Form of Government)—शिक्षा द्वारा राष्ट्र तथा समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। शासन प्रणाली बदलने से पाठ्यक्रम के प्रारूप बदलना होता है। केन्द्र तथा राज्य स्तर पार्टी को सत्ता बदलने से भी पाठ्यक्रम के प्रारूप पर प्रभाव पड़ता है। पाठ्यक्रम के विशिष्ट प्रारूप केन्द्रीय सरकार प्रभावित करती है। रूस में शासन सत्ता बदलने से पाठ्यक्रम का प्रारूप बिल्कुल ही बदला जा रहा है। भारत राज्य या प्रदेश द्वारा व्यवस्थित की जाती है। इसलिये शिक्षा का राष्ट्रीय प्रारूप नहीं है। सभी प्रदेशों के पाठ्यक्रम के प्रारूप विभिन्न स्तरों पर अलग-अलग हैं।

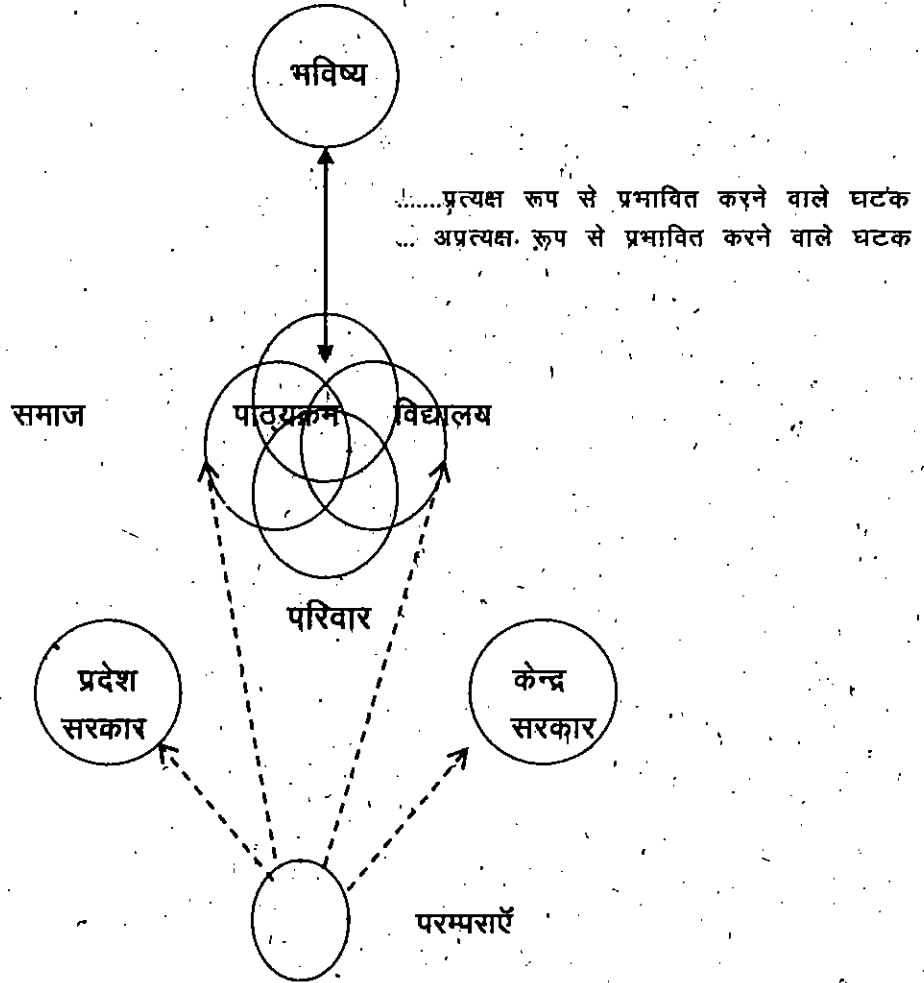
4. अध्ययन समिति (Board of Studies)—पाठ्यक्रम के प्रारूप का निर्माण अध्ययन समितियों द्वारा किया जाता है। विभिन्न स्तरों पर अध्ययन समितियों के द्वारा पाठ्यक्रम का निर्माण तथा सुधार किया जाता है। अध्ययन समिति के सदस्यों की सूझबूझ तथा अनुभवों द्वारा ही पाठ्यक्रम के प्रारूप को विकसित करते हैं। इसलिये इन सदस्यों की अभिरुचियों, अभिवृत्तियों तथा मानसिक क्षमताओं का सीधा प्रभाव पड़ता है। साधारणतयः अध्ययन समिति के अध्यक्ष ही पाठ्यक्रम का प्रारूप बनाते हैं और बदलते हैं। अन्य सदस्य मात्र अनुमोदन ही करते हैं।

5. राष्ट्रीय शिक्षा आयोग तथा समितियाँ (National Education Commission and Committee)— शिक्षा में सुधार और विकास हेतु राष्ट्रीय स्तर आयोग तथा समितियाँ गठित की जाती हैं। भारत में स्वतन्त्रता के बाद से अनेक आयोग तथा समितियाँ गठित की गईं। उन्होंने विश्वविद्यालय, माध्यमिक तथा प्राथमिक स्तर पर सुधार के लिये सुझाव दिये और उन सुझावों को लागू करने का प्रयास किया गया जिससे पाठ्यक्रम के प्रारूप को भी बदलना पड़ा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में व्यावसायिक नीति में व्यावसायिक शिक्षा को अधिक महत्व दिया है। इसलिये माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का प्रारूप विकसित किया गया है। शिक्षा के आयोगों तथा समितियों के सुझाव के आधार पर भी पाठ्यक्रम का प्रारूप प्रभावित होता है।

6. सामाजिक परिवर्तन (Social Change)—सामाजिक परिवर्तन में आर्थिक परिवर्तन की गति अधिक तीव्र है इसलिये ये आर्थिक तथा भौतिक परिवर्तन भी पाठ्यक्रम को प्रभावित करते हैं। विज्ञान तथा तकनीकी ने सामाजिक जीवन को अधिक प्रभावित किया है इसलिये व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के साथ तकनीकी के प्रशिक्षण (कम्प्यूटर) आदि सम्बन्धी नये पाठ्यक्रम विकसित किये जा रहे हैं। शिक्षा के अन्तर्गत दूरवर्ती शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ है जिसमें माध्यमों तथा सम्प्रेषण विधियों को विशेष महत्व दिया जाता है।

पाठ्यक्रम के घटकों के आपसी सम्बन्धों को चित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

पाठ्यक्रम को प्रभावित करने वाले घटक



उपरोक्त चित्र से स्पष्ट होता है कि सामाजिक परम्परायें तथा अतीत के मूल्य तथा पारिवारिक परम्परायें तथा मान्यतायें भी पाठ्यक्रम के प्रारूप को प्रभावित करती हैं। पाठ्यक्रम का प्रारूप भावी जीवन की तैयारी की दृष्टि से विकसित किया जाता है। छात्र, परिवार, विद्यालय व्यवस्था, सामाजिक परिवर्तन तथा आवश्यकतायें पाठ्यक्रम के प्रारूप को विकसित करने में सहायक होते हैं परन्तु अतीत परम्पराओं और भावी जीवन में समन्वय स्थापित करना पड़ता है। छात्र की सामान्य तथा विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखना होता है।

2.7 पाठ्यक्रम के प्रकार

पाठ्यक्रम संगठन के विषय में अलग-अलग दृष्टिकोण होते हैं इसलिए पाठ्यक्रम भी अनेक प्रकार के होते हैं, जो इस प्रकार हैं।

(1) विषय-केन्द्रित पाठ्यक्रम (Subject-Centred Curriculum)—विषय-केन्द्रित

पाठ्यक्रम उस पाठ्यक्रम को कहते हैं। बालकों की अपेक्षा विषयों को अधिक महत्व दिया जाता है। चूँकि इस प्रकार के पाठ्यक्रम में पुस्तकों का विशेष महत्व होना है, इसलिए इस पाठ्यक्रम को 'पुस्तक केन्द्रित पाठ्यक्रम' भी कहते हैं। हमारे देश में इसी प्रकार का पाठ्यक्रम प्रचलित है। विषय-केन्द्रित पाठ्यक्रम—(1) अमनोवैज्ञानिक है अर्थात् इसके अन्तर्गत बालकों की रुचियों, आवश्यकताओं तथा योग्यताओं का कोई ध्यान नहीं रखा जाता, (2) यह कठोर होता है, (3) इसके द्वारा बालक का सर्वांगीण विकास नहीं किया जा सकता, (4) इसके द्वारा बालकों में जनतान्त्रिक भावनाओं का विकास नहीं किया जा सकता तथा (5) यह पाठ्यक्रम बालकों में रटने की आदत एवं केवल परीक्षा पर ही बल देता है। उक्त दोषों के होते हुए भी विषय-केन्द्रित पाठ्यक्रम के अनेक लाभ हैं; उदाहरण के लिये—(1) इस पाठ्यक्रम में उद्देश्य स्पष्ट होता है, (2) इसका संगठन सरल होता है अर्थात् यह आसानी से समझ में आ जाता है, (3) इसमें आसानी से परिवर्तन भी किया जा सकता है। (4) इसकी विषय-वस्तु पहले से ही निश्चित होती है जिससे शिक्षक तथा बालक दोनों को पहले से ही इस बात का पता चल जाता है कि उन्हें क्या-क्या पढ़ाना है अथवा कैसे-कैसे पढ़ना है, (5) यह एक निश्चित सामाजिक तथा शैक्षिक विचारधारा पर आधारित होता है, (6) इसके द्वारा विभिन्न विषयों में सह-सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है तथा (7) इसके द्वारा परीक्षा लेने में भी आसानी होती है। उक्त गुणों के कारण विषय-केन्द्रित पाठ्यक्रम को बालक, शिक्षक तथा अभिभावक सभी वर्ग हृदय से पसन्द करते हैं।

(2) अनुभव-केन्द्रित पाठ्यक्रम (Experience-Centred-Curriculum)—

अनुभव-केन्द्रित पाठ्यक्रम उस पाठ्यक्रम को कहते हैं जिसमें बालक के विकास हेतु अनुभवों को विशेष महत्व दिया जाता है। दूसरे शब्दों में अनुभव-केन्द्रित पाठ्यक्रम विषयों की अपेक्षा अनुभवों पर आधारित होता है वस्तुस्थिति यह है कि—(1) अनुभव-केन्द्रित पाठ्यक्रम अस्पष्ट होता है अर्थात् इसके अन्तर्गत शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट नहीं होता, (2) इसके प्रयोग में समय अधिक लगता है। (3) अनुभव-केन्द्रित पाठ्यक्रम में ज्ञान का क्रम भी नहीं होता, (4) इसके अन्तर्गत क्रियाओं और अनुभवों का निश्चित क्रम भी नहीं होता, (5) इस पाठ्यक्रम को क्रियान्वित करने के लिये अधिक धन की आवश्यकता होती है, (6) अनुभव-केन्द्रित पाठ्यक्रम को सफल बनाने के लिये बुद्धिमान शिक्षकों की आवश्यकता है, (7) इसके द्वारा बालकों की प्रगति का मूल्यांकन बहुत कठिन है तथा (8) अनुभव-केन्द्रित पाठ्यक्रम के द्वारा विभिन्न अनुभवों का एक दूसरे से सह-सम्बन्ध भी स्थापित नहीं किया जा सकता। उक्त दोषों के होते हुए भी अनुभव-केन्द्रित पाठ्यक्रम के अनेक लाभ हैं; उदाहरण के लिए—(1) यह मनोवैज्ञानिक है अर्थात् इस पाठ्यक्रम का बालकों की रुचियों, आवश्यकताओं तथा योग्यताओं से सम्बन्ध होता है, (2) यह लचीला तथा प्रगतिशील होता है, (3) इसके द्वारा बालक का सर्वांगीण विकास सम्भव है, (4) यह भौतिक तथा सामाजिक वातावरण का अधिक से अधिक प्रयोग करता है (5) इसका आधार भी जनतान्त्रिक होता है, (6) अनुभव-केन्द्रित पाठ्यक्रम द्वारा स्कूल और समाज में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है तथा (7) यह

बालकों की मानसिक एवं सृजनात्मक योग्यताओं को विकसित कर उनमें नेतृत्व और स्वानुशासन का विकास करता है।

(3) कार्य-केन्द्रित पाठ्यक्रम (Activity-Centred Curriculum)—कार्य-केन्द्रित पाठ्यक्रम उस पाठ्यक्रम को कहते हैं जिसमें विभिन्न कार्यों को विशेष स्थान दिया जाता है। जॉन डीवी का मत है कि कार्य-केन्द्रित पाठ्यक्रम द्वारा बालक समाज उपयोगी कार्यों के करने में रुचि लेने जिससे उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होना निश्चित है।

(4) बाल-केन्द्रित पाठ्यक्रम (Child-Centred Curriculum)—बाल-केन्द्रित पाठ्यक्रम उस पाठ्यक्रम को कहते हैं, जिसमें विषयों की अपेक्षा बालक को मुख्या स्थान दिया जाता है। ऐसे पाठ्यक्रम का निर्माण बालक की विभिन्न अवस्थाओं की रुचियों, आवश्यकताओं, क्षमताओं तथा योग्यताओं के अनुसार किया जाता है जिससे उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होता रहे। मॉन्टेसरी, किन्डरगार्टन तथा योजना पद्धतियों बालकेन्द्रित पाठ्यक्रम के ही उदाहरण हैं।

(5) शिल्पकला-केन्द्रित पाठ्यक्रम (Craft-Centre Curriculum)—शिल्पकला-केन्द्रित पाठ्यक्रम उस पाठ्यक्रम को कहते हैं जिसमें विभिन्न प्रकार की शिल्प-कलाओं जैसे-कताई, बुनाई, चमड़े तथा लकड़ी के काम आदि को केन्द्र मानकर दूसरे विषयों की शिक्षा दी जाये। हमारे देश की वर्तमान 'बेसिक शिक्षा' में इस प्रकार के पाठ्यक्रम को विशेष महत्व है।

(6) सुसम्बद्ध पाठ्यक्रम (Correlated Curriculum)—सुसम्बद्ध-पाठ्यक्रम उस पाठ्यक्रम को कहते हैं जिसमें विभिन्न विषयों को अलग-अलग न पढ़ा कर एक दूसरे से सम्बन्धित करके पढ़ाने की व्यवस्था हो, वस्तुस्थिति यह है कि ज्ञान, एक इकाई है। अतः सुसम्बद्ध पाठ्यक्रम इस बात पर बल देता है कि बालक के सामने ज्ञान को विभिन्न विषयों में अलग-अलग न बाँट कर सम्बन्धित रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिये।

(7) मूल-पाठ्यक्रम (Core-Curriculum)—कोर-पाठ्यक्रम उस पाठ्यक्रम को कहते हैं जिसमें कुछ विषय तो अनिवार्य होता हैं तथा अधिक विषय ऐच्छिक। अनिवार्य विषयों का अध्ययन करना प्रत्येक बालक के लिये अनिवार्य होता है तथा ऐच्छिक विषयों को व्यक्तिगत रुचियों तथा क्षमताओं के अनुसार चुना जा सकता है। यह पाठ्यक्रम अमरीका की देन है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक बालक को व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनों प्रकार की समस्याओं के सम्बन्ध में ऐसे अनुभव प्रदान किये जाते हैं जिनके द्वारा वह अपने भावी जीवन में आने वाली, प्रत्येक समस्या को सरलतापूर्वक सुलझाते हुए कुशल, तथा समाजोपयोगी एवं उत्तम नागरिक बन जाये। संक्षेप में कोर पाठ्यक्रम का लक्ष्य व्यक्ति तथा समाज दोनों का अधिक से अधिक विकास करना है। इस पाठ्यक्रम की कई विशेषतायें भी हैं। पहली विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत कई विषयों को एक साथ पढ़ाया जाता है। दूसरे विभिन्न विषयों को पढ़ाने का समय निश्चित होता है। तीसरे, यह

पाठ्यक्रम बाल-केन्द्रित है तथा चौथे, इसके द्वारा बालकों को कार्यों के द्वारा सामाजिक समस्याओं के सुलझाने का अभ्यास कराया जाता है।

पाठ्यक्रम निर्माण के महत्वपूर्ण आधार (Importance Basis of Curriculum

Costruction)—शिक्षा के चार प्रमुख आधार हैं—(1) दार्शनिक, (2) मनोवैज्ञानिक, (3) सामाजिक तथा (4) वैज्ञानिक। चूँकि पाठ्यक्रम का निर्माण शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है, इसलिए पाठ्यक्रम का निर्माण शिक्षा के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किया जाता है, इसलिए पाठ्यक्रम का संयोजन, संगठन तथा निर्माण करते समय शिक्षा के उक्त सभी आधारों तथा उनमें सम्बन्धित सिद्धान्तों को दृष्टि में रखना परम आवश्यक है। अतः शिक्षा के चारों आधारों के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्तों इस प्रकार हैं—

पाठ्यक्रम निर्माण के दार्शनिक आधार (Philosophical Bases of Curriculum

Construction)—शिक्षा का दार्शनिक आधार इस बात पर बल देता है कि दर्शन सोध्य है तथा शिक्षा साधन। दूसरे शब्दों में, दर्शन जीवन के लक्ष्य को निर्धारित करता है तथा शिक्षा उन लक्ष्यों को अपने उद्देश्यों द्वारा पाठ्यक्रम के माध्यम से प्राप्त करती है। चूँकि जीवन के लक्ष्यों तथा शिक्षा के उद्देश्यों में देश, काल तथा दार्शनिक विचारधाराओं के अनुसार परिवर्तन होता रहता है, इसलिए शिक्षा का पाठ्यक्रम भी इस परिवर्तन की लपेट से बच नहीं सकता अर्थात् पाठ्यक्रम भी सदैव समय, काल तथा विचारधारा के अनुसार बदलता रहता है। दूसरों शब्दों में, दर्शन का पाठ्यक्रम से गहरा सम्बन्ध होता है। अतः जिस देश में जैसी विचारधारा प्रचलित होती है, वहाँ की शिक्षा का पाठ्यक्रम भी उसी के अनुसार बन जाता है। इसके अन्तर्गत उन्हीं विषयों को स्थान दे दिया जाता है, जिनके अध्ययन द्वारा उस देश अथवा समाज की तत्कालीन समस्याएँ, आवश्यकताएँ तथा आर्कोक्षायें पूरी हो जायें। उदाहरण के लिए भारतीय शिक्षा का पाठ्यक्रम आज वह पाठ्यक्रम नहीं है जो प्राचीन भारत की तत्कालीन आवश्यकताओं को पूरा करता है। इस महान परिवर्तन का एक मात्र कारण यह है कि आज की विचारधारा, जीवन के लक्ष्य तथा शिक्षा के उद्देश्य उस युग से भिन्न हैं। अतः हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि पाठ्यक्रम की रूपरेखा प्रचलित दर्शन के अनुसार तैयार की जाती है। जब दर्शन में परिवर्तन होता है तो पाठ्यक्रम भी बदल जाता है।

प्रकृतिवाद और पाठ्यक्रम (Naturalism and Curriculum)—प्रकृतिवाद 'केवल

ज्ञान के लिए ज्ञान' को शिक्षा का लक्ष्य स्वीकार नहीं करता। यह दर्शन तथा नैतिकता के बन्धनों को तोड़कर बालक की मूल-प्रवृत्तियों को स्वतन्त्रतापूर्वक विकसित करना चाहता है। अतः प्रकृतिवाद के अनुसार पाठ्यक्रम की रूपरेखा व्यक्तिगत विभिन्नता के आधार पर बालक की नैसर्गिक रुचियों, योग्यताओं, क्षमताओं तथा स्वाभाविक क्रियाओं के अनुसार तैयार की जानी चाहिए। स्मरण रहे कि पाठ्यक्रम निर्माण के सम्बन्ध में प्रकृतिवादियों ने अपने-अपने विचार अलग-अलग प्रस्तुत किये हैं। उदाहरण के लिए—रूसों के अनुसार पाठ्यक्रम में केवल उन्हीं विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए, जिनसे बालक की विभिन्न अवस्थाओं की सारी आवश्यकताएँ पूरी हो जायें। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम में खेल-कूद,

प्रकृति निरीक्षण, स्वास्थ्य रक्षा, शरीर विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, भाषा तथा भूगोल एवं इतिहास को सम्मिलित किया जाना चाहिये। हरबर्ट स्पेन्सर के अनुसार मानव स्वभाव से ही व्यक्तिवादी है। अतः उसने जीवन रक्षा को एक मात्र उद्देश्य घोषित करते हुए पाठ्यक्रम में केवल उन्हीं विषयों को स्थान दिया जिनके अध्ययन द्वारा जीवन की रक्षा हो सके। इसीलिए स्पेन्सर ने पाठ्यक्रम में शरीर विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, रसायन विज्ञान, गणित, जीव विज्ञान, गृह विज्ञान तथा मनोविज्ञान आदि वैज्ञानिक विषयों को मुख्य तथा साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विषयों को गौण स्थान दिया है।

बोध प्रश्न

प्र० 5 बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम में किसे प्रमुख स्थान दिया जाता है।

.....
.....

प्र० 6 सुसम्बद्ध पाठ्यक्रम किसे कहेंगे।

.....
.....

2.8 आदर्शवाद और पाठ्यक्रम

आदर्शवाद, पाठ्यक्रम निर्माण के सम्बन्ध में दार्शनिक दृष्टि से विचार करता है। दर्शन बालक के वर्तमान तथा भावी अनुभवों की अपेक्षा सम्पूर्ण मानव समाज के अनुभवों को अधिक महत्व प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में आदर्शवादी पाठ्यक्रम का लक्ष्य सभ्यता तथा संस्कृति को प्रतिबिम्बित करना है। चूँकि अनुभवों को भौतिक वातावरण से भी प्राप्त किया जा सकता है तथा अपने साथियों के सम्पर्क से भी, इसलिए आदर्शवादी पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक तथा मानवीय दोनों प्रकार के विषयों को उचित स्थान दिया जाता है।

पाठ्यक्रम की रूपरेखा के सम्बन्ध में आदर्शवादियों में मत-भेद है। उदाहरण के लिए—प्लेटो के अनुसार पाठ्यक्रम की रचना मानव-विचारों, भावों, आदर्शों तथा मूल्यों के आधार पर होनी चाहिए। रॉस का मत है कि पाठ्यक्रम का निर्माण मनोविज्ञान के आधार पर होना चाहिए। उसके अनुसार अनुभवों की तीन क्रियायें हैं—ज्ञान, अनुभूति तथा क्रिया। दूसरे शब्दों में मानव क्या जानता है, क्या सोचता है तथा क्या करता है? अतः पाठ्यक्रम के अन्तर्गत पहली क्रिया के अनुसार भाषा, साहित्य, गणित, विज्ञान तथा भूगोल एवं इतिहास को, दूसरी के अनुसार संगीत, कला तथा कविता को तथा तीसरी के अनुसार प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करने वाली भोजन, भवन तथा वस्त्र आदि की व्यावहारिक कलाओं को सम्मिलित करना चाहिये।

नन ने मानव सभ्यता के आधार पर पाठ्यक्रम निर्माण का विचार प्रस्तुत करते हुए इस बात पर बल दिया है कि पाठ्यक्रम के अन्तर्गत संसार के सबसे

अधिक तथा मूल्यवान तथा मानव के भावों की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति करने वाले विषयों तथा क्रियाओं को ही उचित स्थान मिलना चाहिए। नन न उक्त सभी क्रियाओं को दो भागों में विभाजित किया है—पहला व्यक्ति तथा समाज के जीवन की रक्षा करने वाली तथा दूसरा मानव सभ्यता का निर्माण करने वाली। पहली प्रकार की क्रियाओं के अन्तर्गत सामाजिक संगठन, नैतिक नियम, धार्मिक भावना, शारीरिक साधन, स्वास्थ्य रक्षा, सदाचार तथा प्रेम आते हैं। इन क्रियाओं का मार्गदर्शन शिक्षण एवं अध्ययन द्वारा ही किया जाना चाहिए। दूसरी प्रकार की क्रियाओं के लिए पाठ्यक्रम में साहित्य, कलाएँ, हस्तकला, विज्ञान एवं गणित तथा भूगोल एवं इतिहास को उचित स्थान मिलना चाहिए।

2.9 प्रयोजनवाद तथा पाठ्यक्रम

प्रयोजनवाद, प्रकृतिवाद की त्रुटियों को पूरा करता है। इस विचारधारा के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्माण, उपयोगिता, क्रियाशीलता तथा अभिरुचियों के सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए, दूसरे शब्दों में पाठ्यक्रम बाल-केन्द्रित होना चाहिए। प्रयोजनवाद के अनुसार उपयोगिता के सिद्धान्तों को दृष्टि में रखते हुए पाठ्यक्रम के अन्तर्गत उन्हीं विषयों तथा अनुभवों को स्थान मिलना चाहिये जो न केवल बालक के वर्तमान जीवन के लिए ही अपितु भविष्य में प्रौढ़ जीवन के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो। इस सिद्धान्त के अनुसार न्यूनतम पाठ्यक्रम के अन्तर्गत भाषा, स्वास्थ्य विज्ञान, शारीरिक परीक्षण, भूगोल, इतिहास, विज्ञान तथा कृषि विज्ञान तथा बालिकाओं के लिए गृह-विज्ञान आदि विषयों को उचित स्थान मिलना चाहिए। उक्त विषयों के अध्ययन से बालक अपने दैनिक जीवन की अनेक समस्याओं को सरलतापूर्वक सुलझा सकता है। यही उपयोगिता आगे चलकर व्यावसायिक शिक्षा की माँग भी उपस्थित करती हैं। ध्यान देने की बात है कि प्रयोजनवाद उपयोगिता के सिद्धान्त पर अवश्य बल देता है पर इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई इस सिद्धान्त को संकुचित रूप में गृहण कर ले जिससे मानव प्रगति का लोप ही जो जाये। वस्तुस्थिति यह है कि प्रयोजनवाद का आदर्श मानव प्रगति ही है।

प्रयोजनवाद के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण का दूसरा सिद्धान्त क्रियाशीलता है। इस विचारधारा के अनुसार बालक स्वभाव से ही सक्रिय होता है। अतः उसकी सक्रियता से लाभ उठाना परम आवश्यक है, दूसरे शब्दों में पाठ्यक्रम क्रियाप्रधान होना चाहिए। इसके अन्तर्गत क्रियाओं को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। प्रत्येक बालक को शारीरिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक सभी प्रकार की अर्थपूर्ण क्रियाओं में स्वतन्त्र रूप से भाग लेने के अधिकाधिक अवसर प्रदान करने चाहिए। इन क्रियाओं के माध्यम से बालक को नाना प्रकार के अनुभव प्राप्त करने होंगे। डीवी का कथन है—“यदि यह क्रियाएँ उस समुदाय की क्रियाओं का रूप ग्रहण कर लें, जिसका कि स्कूल एक अंग है तो यह क्रियाएँ बालक में नैतिक गुणों तथा पहल-कदमी एवं स्वतंत्रता के दृष्टिकोणों का विकास करेगी जो उसे नागरिकता का प्रशिक्षण देकर उसके आत्मानुशासन को ऊँचा उठायेगी।

प्रयोजनवाद के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण का तीसरा महत्वपूर्ण स्थान बालक की प्राकृतिक अभिरुचियाँ हैं। जॉन डीवी के अनुसार रुचियाँ चार प्रकार की होती हैं—(1) बात-चीत करने की रुचि (2) खोज की रुचि (3) रचना की रुचि (4) कलात्मक अभिव्यक्ति की रुचि। प्राइमरी कक्षाओं के पाठ्यक्रम की रूपरेखा बालक की उक्त चारों प्रकार की रुचियों को दृष्टि में रखते हुए तैयार करनी चाहिए, दूसरे शब्दों में बालकों को संगीत, कला, गणना, कताई-बुनाई, बागवानी, दुकानदारी, भोजन बनाना, लकड़ी बनाना, नमूना बनाना, चित्र बनाना आदि क्रियाओं से आरम्भ से करनी चाहिए। इसके पश्चात् लिखने, पढ़ने तथा गिनने को प्रोत्साहित करना चाहिए। यही छोटी क्रियाएँ भविष्य में विस्तृत रूप में परिणामस्वरूप बालक उच्च कक्षाओं में पहुँचकर प्राणी शास्त्र, कृषि शास्त्र, वनस्पति विज्ञान, गणित तथा बीजगणित एवं इंजीनियरिंग आदि कठिन विषयों का ज्ञान सरलतापूर्वक प्राप्त कर सकेंगे। संक्षेप में पाठ्यक्रम का निर्माण बालक के जीवन की वास्तविकता के अनुसार होना चाहिए। यह वह स्थान है जहाँ पर प्रकृतिवाद का अन्तर समाप्त हो जाता है।

2.10 यथार्थवाद और पाठ्यक्रम

यथार्थवाद, भौतिकवाद पर आधारित है चूँकि भौतिकवाद के अनुसार भौतिक जगत ही सबकुछ है इसलिए यथार्थवादी तथा पुस्तकीय तथा साहित्यिक ज्ञान की अपेक्षा व्यावहारिक तथा भौतिकविज्ञानों को पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। यथार्थवादियों का विश्वास है कि बालकों को ऐसा ज्ञान दिया जाना चाहिए जो उनके लिए उपयोगी हो, जिसका उनके जीवन से सम्बन्ध हो तथा जो उनके भावी जीवन की यथार्थ आवश्यकताओं, समस्याओं तथा परिस्थितियों से व्यवस्थापन कर सकें।

मनोवैज्ञानिक आधार तथा पाठ्यक्रम (Psychological Bases and Curriculum Construction)—शिक्षा का मनोवैज्ञानिक आधार इस बात पर बल देता है कि शिक्षा बालक के लिए है न कि बालक शिक्षा के लिए। दूसरे शब्दों में शिक्षा का केन्द्र-बिन्दु बालक है। मनोविज्ञान ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं। यही नहीं प्रत्येक बालक की रुचियाँ, आवश्यकताएँ, क्षमताएँ तथा योग्यताएँ भी एक दूसरे से भिन्न होती हैं। अतः बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं तथा व्यक्तिगत विभिन्नताओं के आधार पर पाठ्यक्रम इतना लचीला होना चाहिये कि प्रत्येक स्तर का बालक अपनी-अपनी रुचियों, आवश्यकताओं तथा क्षमताओं के अनुसार पूर्णरूपेण विकसित होता रहे। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम में खेलों, क्रियात्मक कार्यों तथा अनुभवों को महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए।

सामाजिक आधार और पाठ्यक्रम निर्माण (Sociological Bases and Curriculum Construction)—शिक्षा का सामाजिक आधार इस बात पर बल देता है कि शिक्षा के द्वारा बालक की व्यक्तिगत इच्छाओं, रुचियों तथा प्रवृत्तियों को समाजहित के लिए विकसित किया जाये। अतः पाठ्यक्रम में उन्हीं क्रियाओं तथा

विषयों को स्थान दिया जाना चाहिये, जो सामाजिक दृष्टि से उपयोगी हो। दूसरे शब्दों में, पाठ्यक्रम की रूपरेखा समाज की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं तथा परिस्थितियों को ध्यान में रखकर तैयार की जानी चाहिये जिससे प्रत्येक बालक में सामाजिकता तथा नागरिकता के गुण विकसित हो जायें। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम में भाषा, गणित, स्वास्थ्य-शिक्षा, शारीरिक शिक्षण, सामाजिक-अध्ययन, प्रारम्भिक विज्ञान, प्राणिशास्त्रीय विज्ञान, जीविकोपार्जन के विषय, प्रयोगात्मक कलायें तथा संगीत एवं कला आदि विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिये।

वैज्ञानिक आधार और पाठ्यक्रम निर्माण (Scientific Bases and Curriculum Construction)—शिक्षा में वैज्ञानिक प्रवृत्ति अथवा शिक्षा का वैज्ञानिक आधार इस बात पर बल देता है कि पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक विषयों को मुख्य तथा साहित्यिक विषयों को गौण स्थान मिलना चाहिये। शिक्षा में वैज्ञानिक विचारधारा के विकसित होने का श्रेय हरबर्ट स्पेन्सर को है। स्पेन्सर के अनुसार व्यक्ति का विकास किसी अमुक्त क्षेत्र में न होकर सर्वांगीण होना चाहिये। अतः शिक्षक व्यक्ति के जीवन का विकास इस प्रकार से करें कि वह अपने जीवन की प्रत्येक समस्या को आसानी से सुलझाकर सुखी जीवन व्यतीत कर सके। दूसरे शब्दों में, शिक्षा का उद्देश्य पूर्ण जीवन की तैयारी होना चाहिये। इस प्रसंग में स्पेन्सर ने मानव की क्रियाओं को उनके महत्त्व के अनुसार पाँच वर्गों में विभाजित किया और प्रत्येक वर्ग के उपयुक्त विषयों पर प्रकाश डाला। स्पेन्सर के अनुसार पहले वर्ग के अन्तर्गत वे क्रियायें आती हैं जो प्रत्यक्ष रूप से आत्मरक्षा के काम आती हैं। दूसरे वर्ग के अन्तर्गत वे क्रियायें आती हैं जो अप्रत्यक्ष रूप से आत्मरक्षा के काम आती हैं। तीसरे वर्ग में वे क्रियायें आती हैं जिनका कार्य सन्तान की रक्षा करना है। चौथे वर्ग के अन्तर्गत वे क्रियायें आती हैं जो सामाजिक अथवा राजनीतिक रक्षा के लिए आवश्यक हैं तथा पाँचवें वर्ग के अन्तर्गत वे क्रियायें आती हैं जिनके द्वारा अवकाश काल का सदुपयोग हो सकता है। स्पेन्सर ने बताया कि पहले वर्ग की क्रियाओं के लिए शरीर-विज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान, भौतिक-विज्ञान, तथा रासायनिक-विज्ञान, दूसरे वर्ग की क्रियाओं के लिए गणित, जीवविज्ञान, समाजशास्त्र तथा भौतिक-विज्ञान, तीसरे वर्ग की क्रियाओं के लिए शरीर-विज्ञान, गृह-शास्त्र तथा मनोविज्ञान, चौथे वर्ग की क्रियाओं के लिए इतिहास, राजनीति तथा अर्थशास्त्र और पाँचवें वर्ग की क्रियाओं के लिए कला, संगीत तथा कविता को पाठ्यक्रम में स्थान मिलना चाहिये। स्पेन्सर ने यह भी बताया कि पाठ्यक्रम का कोई भी विषय ऐसा नहीं है जिसके लिए विज्ञान की आवश्यकता न हो। यहाँ तक की कला तथा साहित्य का अध्ययन भी विज्ञान के असम्भव है।

2.10 पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त

पाठ्यक्रम निर्माण के प्रमुख सिद्धान्त जिनका ध्यान पाठ्यक्रम निर्माण के समय करना चाहिए, इस प्रकार से है—

(1) बाल-केन्द्रियता का सिद्धान्त (Principle of Child Centrism)—पाठ्यक्रम बाल-केन्द्रित होना चाहिये। दूसरे शब्दों में पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय

बालकों की रुचियों, आवश्यकताओं, मनोवृत्तियों, क्षमताओं, योग्यताओं तथा बुद्धि एवं आयु आदि का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

(2) **जीवन से सम्बन्धित होने का सिद्धान्त (Principle of Relation with Life)**—पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय उन्हीं विषयों पर ध्यान देना चाहिये, जिनका बालक के जीवन से सीधा सम्बन्ध हो। पुराने पाठ्यक्रम की आलोचना आज इसलिए हो रही है क्योंकि इसका बालकों के जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

(3) **रचनात्मक तथा सर्जनात्मक शक्तियों के उपयोग का सिद्धान्त (Principle of Utilizing Creative and Constructive Powers)**—पाठ्यक्रम में उन क्रियाओं तथा विषयों को स्थान मिलना चाहिये जो बालक की रचनात्मक तथा सृजनात्मक शक्तियों का विकास कर सकें। रेमान्ट का कथन है—“जो पाठ्यक्रम वर्तमान तथा भविष्य की आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त है, उसमें निश्चित रूप से रचनात्मक, विषयों के प्रति निश्चित सुझाव होना चाहिये।”

(4) **खेल और कार्य की क्रियाओं के अन्तर का सिद्धान्त (Principle of Interrelation of Play Work Activities)**—पाठ्यक्रम तैयार करते समय ज्ञान प्राप्त करने की क्रियाओं को इतना रुचिकर बनाने का प्रयास करना चाहिये कि बालक ज्ञान को खेल समझकर प्रभावशाली ढंग से ग्रहण कर लें। क्रो और क्रो का कथन है—“जो लोग सीखने की प्रक्रिया को निर्देशित करते हैं, उनका उद्देश्य यह होना चाहिये कि वे ज्ञानात्मक क्रियाओं की ऐसी योजना बनायें, जिसमें खेल के दृष्टिकोण को स्थान प्राप्त हो।”

(5) **संस्कृति तथा सभ्यता के ज्ञान सिद्धान्त (Principle of the Knowledge of Culture and Civilization)**—पाठ्यक्रम के अन्तर्गत उन क्रियाओं, वस्तुओं तथा विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिये जिनके द्वारा बालक को अपनी संस्कृति तथा सभ्यता का ज्ञान हो जाये। दूसरे शब्दों में, पाठ्यक्रम संस्कृति तथा सभ्यता की रक्षा तथा विकास करे।

(6) **अनुभवों की पूर्णता का सिद्धान्त (Principle of the Totality of Experiences)**—पाठ्यक्रम के अन्तर्गत मानव जाति के अनुभवों की सम्पूर्णता निहित होनी चाहिये। दूसरे शब्दों में, पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सैद्धान्तिक विषयों के साथ-साथ मान जाति के उन सभी अनुभवों को उचित स्थान मिलना चाहिये जिन्हें बालक स्कूल में, खेल के मैदानों, कक्षा-गृह में, पुस्तकालय में, प्रयोगशाला में तथा शिक्षकों के अनौपचारिक सम्पर्कों द्वारा सीखता रहता है। माध्यमिक शिक्षा आयोग का भी यह विचार है—“पाठ्यक्रम का अर्थ केवल सैद्धान्तिक विषयों से ही नहीं लिया जाता है, वरन उसमें अनुभवों की सम्पूर्णता निहित होती है।”

(7) **स्वस्थ आचरण के आदर्शों की प्राप्ति का सिद्धान्त (Principle of Achievement of Wholesome Behaviour Pattern)**—पाठ्यक्रम में उन क्रियाओं, वस्तुओं तथा विषयों को स्थान मिलना चाहिये जिनके द्वारा बालक दूसरों के साथ प्रशंसनीय व्यवहार करना सीख जायें। क्रो और क्रो का कथन है—“पाठ्यक्रम का

निर्माण इस प्रकार से किया जाना चाहिये जिससे वह बालकों को उत्तम आचरण के आदर्शों की प्राप्ति में सहायता कर सके।”

(8) **उपयोगिता का सिद्धान्त (Principle of Utility)**:- पाठ्यक्रम के अन्तर्गत उन क्रियाओं तथा विषयों को स्थान मिलना चाहिये जो बालक के वर्तमान तथा भावी जीवन के लिए उपयोगी हों। दूसरे शब्दों में, जो क्रियायें तथा विषय बालक के वर्तमान तथा भावी जीवन के लिए उपयोगी नहीं हैं, उन्हें पाठ्यक्रम में सम्मिलित नहीं करना चाहिये।

(9) **अप्रदर्शिता का सिद्धान्त (Principle of Forward Look)**:- पाठ्यक्रम के अन्तर्गत उन क्रियाओं, वस्तुओं तथा विषयों को स्थान मिलना चाहिये जिनके द्वारा बालक को उसके भावी जीवन में आने वाली परिस्थितियों का ज्ञान हो जाये तथा वह उनके साथ अनुकूल भी कर ले। दूसरे शब्दों में, सीखा हुआ ज्ञान ऐसा होना चाहिये जो बालक को अनुकूल तथा आवश्यकता पड़ने पर परिस्थितियों में परिवर्तन करने के योग्य बना दे।

(10) **विविधता तथा लचीलेपन का सिद्धान्त (Principle of Variety and Elasticity)**:- प्रत्येक बालक की रुचियाँ, आवश्यकतायें, क्षमतायें तथा मनोवृत्तियाँ एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। इस विभिन्नता को दृष्टि में रखते हुए पाठ्यक्रम में विविधता तथा लचीलापन होना चाहिये। माध्यमिक शिक्षा आयोग का भी यही विचार है—“पाठ्यक्रम में काफी विविधता तथा लचीलापन होना चाहिये, जिससे कि वैयक्तिक विभिन्नताओं तथा वैयक्तिक आवश्यकताओं एवं रुचियों का अनुकूलन किया जा सके।

(11) **अवकाश के लिए प्रशिक्षण का सिद्धान्त (Principle of Training for Leisure)**:- वर्तमान युग में अवकाश काल का सदुपयोग करना एक महान समस्या है। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम इतना व्यापक होना चाहिये कि जहाँ एक ओर वह बालकों को काम करने की प्रेरणा दे वहाँ दूसरी ओर वह उनमें ऐसी क्षमतायें भी उत्पन्न करें कि वे अपने अवकाश काल का सुदुपयोग करना सीख जायें।

(12) **जीवन सम्बन्धी समस्त क्रियाओं के समावेश का सिद्धान्त (Principle of All Life Activities)**:- स्पेन्सर के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य जीवन को पूर्णता प्रदान करना है। अतः पाठ्यक्रम में जीवन से सम्बन्धित उन सभी क्रियाओं को स्थान मिलना चाहिये जिनसे बालक का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा नैतिक सभी प्रकार का समुचित विकास हो जाये।

(13) **सामुदायिक जीवन से सम्बन्ध का सिद्धान्त (Principle of Relationship With Community Life)**:- पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय स्थानीय आवश्यकताओं तथा समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उन सभी सामाजिक प्रथाओं, मान्यताओं तथा समस्याओं को स्थान मिलना चाहिये जिनसे बालक सामुदायिक जीवन की मुख्य-मुख्य बातों से परिचित हो जाये। इस प्रकार माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार—“पाठ्यक्रम सामुदायिक जीवन से सजीव तथा आंगिक रूप से सम्बन्धित होना चाहिये।”

(14) **जनतन्त्रीय भावना के विकास का सिद्धान्त (Principle of Developing**

Democratic Spirit)— भारत में जनतंत्र के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम के अन्तर्गत ऐसी क्रियाओं को स्थान मिलना चाहिए जिनके द्वारा बालकों में जनतंत्रीय भावनाओं एवं दृष्टिकोणों का विकास हो सके।

(15) सह-सम्बन्ध का सिद्धान्त (Principle of Correlation)— पाठ्यक्रम को अलग-अलग सम्बन्धहीन टुकड़ों में विभाजित करने से उसका महत्व एवं प्रभाव कम हो जाता है। इसके विपरीत पाठ्यक्रम के विषयों में सह-सम्बन्ध स्थापित करने से बालक ज्ञान के समग्र रूप से परिचित हो जाता है। अतः इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सम्मिलित किये हुए विषय पृथक-पृथक न हो अपितु उनका एक दूसरे से सह-सम्बन्ध अवश्य हो।

प्रचलित माध्यमिक पाठ्यक्रम के दोष (Defects of Existing Secondary Curriculum)— भारतीय शिक्षा के प्रचलित माध्यमिक पाठ्यक्रम का निर्माण ब्रिटिशकालीन शिक्षा के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किया गया है। परिणामस्वरूप उसके अन्तर्गत उन सभी विचारों, क्रियाओं तथा अनुभवों एवं विषयों का अभाव है जो स्वतंत्र भारत के बालकों को उत्तम नागरिक बना सके। यही कारण है कि इस पाठ्यक्रम के शिक्षक, बालक तथा अभिभावक तथा सभी लोग आये-दिन निन्दा करते रहते हैं। माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार हमारे प्रचलित माध्यमिक पाठ्यक्रम में निम्नलिखित दोष हैं—

(1) संकुचित आधार (Narrow Basis)—माध्यमिक शिक्षा के प्रचलित पाठ्यक्रम का निर्माण बालक की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं तथा क्षमताओं एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ण अवहेलना करते हुए केवल विश्वविद्यालयों की शिक्षा को दृष्टि में रखते हुए किया गया है। अतः इसका आधार तथा दृष्टिकोण अत्यन्त संकुचित है।

(2) पुस्तकीय एवं सैद्धान्तिक ज्ञान पर बल (Emphasis on Bookish and Theoretical Knowledge)—चूंकि माध्यमिक शिक्षा के प्रचलित पाठ्यक्रम पर विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम का प्रभाव है, इसलिए यह भी पुस्तकीय तथा सैद्धान्तिक ज्ञान पर ही बल देता है। ऐसे पुस्तकीय तथा सैद्धान्तिक ज्ञान को प्राप्त करके बालक व्यावहारिक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने में असफल हो जाते हैं।

(3) विषयों से अधिक बोझ (Ovcrowdwd with Subject)—प्रचलित पाठ्यक्रम का निर्माण विषय-विशेषज्ञों की दृष्टि से किया गया है, दूसरे शब्दों में, इसके अन्तर्गत आवश्यकता से अधिक विषयों को स्थान दिया गया है, चाहे वह बालकों के लिए उपयोगी हो अथवा नहीं। विषयों के इस भारी बोझ से बालक हर समय दबे रहते हैं। दुख की बात यह है कि इन विषयों को न तो बालक की रुचियों तथा योग्यताओं के अनुसार ही छाँटा गया है और न ही एक विषय का दूसरे विषय के साथ सह-सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया गया है। इससे बालक ज्ञान के समग्र रूप से वंचित रह जाते हैं।

(4) जीवन से असम्बन्धित (Unrelated with Life)—माध्यमिक शिक्षा आयोग

के ही शब्दों में—“माध्यमिक शिक्षा की बात ही माध्यमिक पाठ्यक्रम का जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है, यह बालकों को जीवन के लिए तैयार करने में असफल रहा है। यह वहाँ से बाहर की दुनिया का उन्हें कोई अभ्यास नहीं कराता जिसमें वह शीघ्र ही प्रवेश करने वाले हैं।”

(5) **व्यक्तिगत भेदों को कोई स्थान नहीं (No Place for Individual Differences)**—किशोर अवस्था में व्यक्तिगत विभिन्नताएँ स्पष्ट हो जाती हैं पर प्रचलित पाठ्यक्रम इन व्यक्तिगत विभिन्नताओं की अवहेलना करते हुए प्रत्येक बालक के लिए एक ही विषय-वस्तु प्रस्तुत करता है। यह अमनोवैज्ञानिक है।

(6) **परीक्षा-केन्द्रित (Examination Centred)**—प्रचलित पाठ्यक्रम का एक मात्र उद्देश्य बालक को परीक्षा के लिए तैयार करना है। अतः सभी शिक्षक परीक्षा में आने वाली सम्भावित विषय-सामग्री के बताने में तथा बालक उसके रटने में हर समय जुटे रहते हैं। इससे बालक को हर विषय का वास्तविक ज्ञान नहीं हो पाता है।

(7) **तकनीकी तथा व्यावसायिक विषयों की कमी (Lack of technical and Vocational Subject)**—प्रचलित पाठ्यक्रम में तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। इससे न तो हमारे बालकों में श्रम के प्रति महत्व की भावना जाग्रत हो रही है और न ही देश की वास्तविक औद्योगिक उन्नति हो पा रही है।

(8) **नैतिक तथा यौन शिक्षा का अभाव (Lack of Sex and Moral Education)**—प्रचलित पाठ्यक्रम में यौन तथा नैतिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है, परिणामस्वरूप बालकों में नैतिक तथा यौन अपराध की संख्या तथा चरित्रहीनता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

(9) **जनतंत्र के लिए अयोग्य (Unsuitable for Democracy)**—प्रचलित पाठ्यक्रम में जनतंत्रीय आदर्शों का समावेश नहीं है। अतः इसके द्वारा बालकों में जनतंत्रीय भावना का विकास करना असम्भव है। चूंकि हमारे देश में अब जनतंत्रीय व्यवस्था स्वीकार कर ली है, इसलिए माध्यमिक शिक्षा का प्रचलित पाठ्यक्रम हमारे बालकों के लिए व्यर्थ है।

पाठ्यक्रम के सुधार के लिये सुझाव (Suiggestions for Improvement in the Curriculum)—उपयुक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि माध्यमिक शिक्षा के प्रचलित पाठ्यक्रम में अनेक दोष हैं। इन दोषों के कारण यह पाठ्यक्रम बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने में असफल रहा है। पाठ्यक्रम के उक्त सभी दोषों को दूर करने के लिये माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा कोठारी आयोग ने अनेक सुझाव प्रस्तुत किये जो इस प्रकार हैं—

1. प्राइमरी स्तर के बालकों का पाठ्यक्रम बाल-केन्द्रित होना चाहिये।
2. पाठ्यक्रम को बालकों की विभिन्न रुचियों, आवश्यकताओं तथा प्रवृत्तियों

का विकास करना चाहिये।

3. पाठ्यक्रम लचीला होना चाहिये।
4. पाठ्यक्रम को बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना चाहिए।
5. पाठ्यक्रम को अवकाश के सुदपयोग की शिक्षा भी देनी चाहिये।
6. पाठ्यक्रम को सामुदायिक जीवन से समायोजन करने में सहायता करनी चाहिये।
7. पाठ्यक्रम को बालकों के जीविकोपार्जन की समस्या को हल करना चाहिये।
8. पाठ्यक्रम के विषय अलग-अलग न होकर एक दूसरे से सम्बन्धित होने चाहिये।
9. उच्चतर माध्यमिक स्तर का पाठ्यक्रम विविध प्रकार का होना चाहिये। ऐसे विविध पाठ्यक्रम के अन्तर्गत कुछ विषय अनिवार्य होने चाहिये तथा बहुत से विषय ऐसे होने चाहिये जिनमें से प्रत्येक बालक अपनी-अपनी व्यक्तिगत रुचियों के अनुसार कुछ विषय चुन सके। इस प्रकार उच्चतर माध्यमिक स्तर के लिये माध्यमिक शिक्षा आयोग ने निम्नलिखित पाठ्यक्रम निर्धारित किया है—

(अ) मुख्य विषय (Core Subject)—(1) भाषा, (2) सामान्य विज्ञान, (3) समाजशास्त्र तथा (4) हस्तकला।

ऐच्छिक विषय (Optional Subject)—मुख्य विषयों के अतिरिक्त प्रत्येक बालक को निम्नलिखित वर्गों में से किसी एक वर्ग के अन्तर्गत तीन विषय चुनने चाहिये—

- (1) मानवीय (Humanities)
- (2) वैज्ञानिक (Science)
- (3) प्राविधिक (Technical)
- (4) व्यावसायिक (Commercial)
- (5) कृषि (Agriculture)
- (6) ललित कला (Fine Arts)
- (7) गृह विज्ञान (Home Science)

पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में कोठारी आयोग (1964-1966) के सुझाव (Suggestions of Kothari Commission Regarding Curriculum)—कोठारी शिक्षा आयोग ने भी माध्यमिक शिक्षा आयोग की भाँति प्रचलित पाठ्यक्रम में अनेक दोषों को दृष्टि में रखते हुये लोअर प्राइमरी से लेकर हायर सेकेण्डरी स्तर की कक्षाओं के पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये—

1. लोअर प्राइमरी स्तर (Lower Primary Level)—आयोग ने सुझाव दिया है

कि लोअर प्राइमरी अर्थात् पहली से चौथी कक्षा तक के पाठ्यक्रम में भाषा, गणित, कार्य-अनुभव, सृजनात्मक क्रियायें, स्वास्थ्य-शिक्षा तथा समाज-सेवा आदि विषयों को स्थान मिलना चाहिये।

2. हायर प्राइमरी स्तर (Higher Primary Level)—आयोग ने सुझाव दिया है कि हायर प्राइमरी अर्थात् पाँचवीं से सातवीं कक्षा के पाठ्यक्रम में नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा, दो भाषायें, विज्ञान, गणित, समाज-सेवा, सामाजिक अध्ययन, कला तथा शारीरिक शिक्षा आदि विषयों को सम्मिलित किया जाये।

3. लोअर सेकेण्डरी स्तर (Lower Secondary Level)—आयोग ने सुझाव दिया है कि लोअर सेकेण्डरी अर्थात् आठवीं से दसवीं कक्षा तक के पाठ्यक्रम में तीन भाषायें, विज्ञान, गणित, भूगोल, नागरिक-शास्त्र, समाज-सेवा, कार्य-अनुभव, शारीरिक शिक्षा तथा नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा दी जानी चाहिये।

4. हायर सेकेण्डरी स्तर (Higher Secondary Level)—आयोग ने सुझाव दिया है कि इस स्तर के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषय सम्मिलित किये जाने चाहिये।

(1) कोई सी दो भाषायें—जिनमें कोई एक वर्तमान भारतीय भाषा सम्मिलित हो तथा कोई एक विदेशी भाषा चुनी जाये।

(2) निम्नलिखित में कोई तीन विषय लिये जायें—एक अतिरिक्त भाषा, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, कला, भौतिकी, रसायनशास्त्र, गणित, जीव-विज्ञान, गृहविज्ञान, तथा भूगर्भ शास्त्र।

(3) कार्य अनुभव एवं समाज सेवा।

(4) शारीरिक सेवा।

(5) कला अथवा चित्रकला।

(6) नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की क्रिया।

प्रचलित पाठ्यक्रम के दोषों को दूर करने के लिए दोनों शिक्षा आयोगों द्वारा दिये गये उपर्युक्त सुझावों पर दृष्टि डालने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि कोठारी शिक्षा आयोग की अपेक्षा माध्यमिक अथवा मुदालियर शिक्षा आयोग के सुझाव अधिक ठोस हैं।

बोध प्रश्न

प्र0 7 प्रचलित पाठ्यक्रम में किस प्रकार की शिक्षा का अभाव है ?

.....

प्र0 8 परीक्षा केन्द्रित पाठ्यक्रम का उद्देश्य क्या होता है।

.....

2.12 पाठ्यक्रम संगठन के प्रतिमान

जेम्स एम० ली० के अनुसार पाठ्यक्रम संगठन के दो प्रमुख प्रकल्प हैं—

1. अंशों में विभाजित प्रकल्प (Fragment Design)
2. एकीकृत प्रकल्प (Unified Design)

अंशों में विभाजित प्रकल्प के अन्तर्गत प्रत्येक विषय को पृथक रूप से संगठित किया जाता है तथा उसे अपरिवर्तनीय समझा जाता है। इसके अनुसार शिक्षण सम्पूर्ण कक्षा समूह के लिए होता है। इसमें निर्देशात्मक प्रक्रिया दृढ़ एवं परम्परागत ढंग से होती है।

एकीकृत प्रकल्प या प्रतिमान के अन्तर्गत विषय-वस्तु की पृथकता के स्थान पर अध्ययन की जाने वाली समस्या के आधार पर विषयों को एकीकृत किया जाता है। इसमें शिक्षक एवं शिक्षार्थियों की सहयोगी क्रियाओं, नियोजन आदि को भी स्थान प्रदान किया जाता है। इसमें सम्पूर्ण कक्षा समूहों के साथ-साथ वैयक्तिक अध्ययन तथा छोटे-छोटे समूहों के कार्यों को भी महत्व दिया जाता है। इसमें निर्देशात्मक प्रक्रिया लचीली होती है।

विषय-आधारित प्रतिमान जिसके अन्तर्गत अन्तर्वस्तु को पृथक स्पष्ट विषयों के रूप में आयोजित या प्रारूपित करने का प्रयास किया जाता है, एक सुपरिचित एवं परम्परित प्रतिमान है। विगत वर्षों में पाठ्यक्रम संगठन के क्षेत्र में जो अनेक प्रयोग किये गये हैं उनके परिणामस्वरूप अनेक नवीन प्रतिमान प्रकाश में आये हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका इस कार्य में अग्रणी रहा है। वहाँ प्रचलित प्रतिमानों को तीन प्रमुख वर्गों में रखा जाता है—

1. पाठ्यक्रम के सामान्य प्रतिमान
2. पाठ्यक्रम के विशिष्ट प्रतिमान
3. पाठ्यक्रम के तृतीय प्रतिमान अथवा छात्र प्रवृत्तियाँ।

1. पाठ्यक्रम का सामान्य प्रतिमान (General Pattern of Curriculum)—इसे सामान्य पाठ्यक्रम कहा जाता है। इसके अन्तर्गत वे विषय-समूह तथा अन्य अधिगम क्रियाएँ सम्मिलित की जाती हैं जो सभी छात्र-छात्राओं के लिए अनिवार्य होती हैं तथा जिनका उद्देश्य उन्हें उत्तम नागरिक बनाना होता है। अमेरिका में इस प्रकार के पाठ्यक्रम की घोषणा वहाँ स्वतन्त्रता की घोषणा के समय प्राचीन विश्व-प्रणाली से आगे एक प्रगतिशील कदम के रूप में की गई थी।

2. पाठ्यक्रम का विशिष्ट प्रतिमान (Specific Pattern of Curriculum)—इसके अन्तर्गत वे विभिन्न विषय-समूह तथा अन्य सम्बन्धित अधिगम क्रियाएँ सम्मिलित की जाती हैं जिनमें से विद्यार्थी अपनी अभिरुचियों एवं भावी व्यावसायिक जीवन की आवश्यकताओं एवं योजनाओं के अनुसार चयन कर लेते हैं अर्थात् इसमें अनेक वैकल्पिक विषयों एवं क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है।

3. तृतीय पाठ्यक्रम या छात्र क्रियाएँ (Tertiary Curriculum or Students Activities)—इसके अन्तर्गत खेलकूद, सांस्कृतिक, साहित्यिक, सामाजिक तथा अन्य मनोरंजनात्मक क्रियाएँ अथवा प्रवृत्तियाँ सम्मिलित होती हैं जिनमें से कुछ का यचन विद्यार्थी अपनी रुचि एवं अभियोग्यता के अनुसार कर लेते हैं। इस प्रतिमान को पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के नाम से भी जाना जाता है।

यहाँ कुछ विशिष्ट प्रतिमान का विवेचन किया जा रहा है जिनमें वाई0 सरन तथा हिल्दा ताबा के प्रतिमान अधिक विख्यात हैं। अतः यहाँ पर इन दोनों को विशिष्ट प्रतिमान कहा गया है और उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) सरन पाठ्यक्रम प्रतिमान (Saran Curriculum Model As Output)—इस प्रतिमान को वाई0 सरन ने (1976) में विकसित किया, यह पाठ्यक्रम प्रतिमान अधिक प्रचलित तथा विख्यात है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि इसका विकास प्रणाली विश्लेषण के माध्यम से हुआ। इसमें तकनीकी के प्रमुख पक्षों को आधार माना गया। आज के तकनीकी के युग में पाठ्यक्रम का प्रारूप भी इससे अच्छा नहीं रहा। इसमें विशिष्ट उद्देश्यों को प्राथमिकता दी जाती है। अदा, प्रदा तथा प्रक्रिया पक्षों का विश्लेषण करके इसका विकास एवं सुधार किया जाता है। इसकी प्रमुख अवधारणायें हैं—

1. कोई पाठ्यक्रम अपने में पूर्ण नहीं है उसमें सुधार एवं विकास की आवश्यकता होती है।

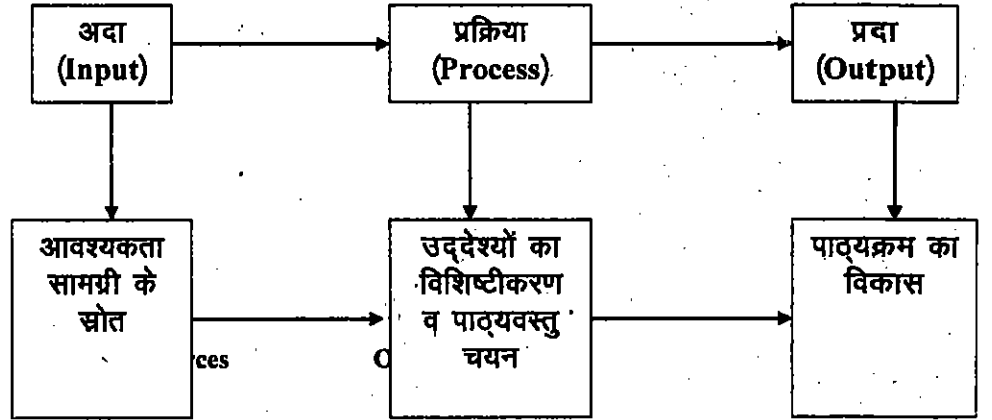
2. कोई नया पाठ्यक्रम भी पूर्ण नहीं हो सकता है अपितु प्रचलित पाठ्यक्रम की कठिनाईयों का निदान करके उनमें सुधार करने से पाठ्यक्रम का सुधार 'प्रणाली विश्लेषण' से करना अधिक व्यावहारिक रहता है।

सरन प्रतिमान के प्रमुख पक्ष—सरन प्रतिमान के तीन पक्ष होते हैं जो तकनीकी से लिये गये हैं—(1) अदा (Input) (2) प्रदा (Output) (3) प्रक्रिया (Process)। इस प्रतिमान में प्रदा को प्राथमिकता दी जाती है।

(1) अदा (Input)—प्रतिमान के इस पक्ष को तीन घटकों में बाँटा गया है—(अ) पाठ्यवस्तु के स्रोत, आवश्यकता तथा विशेषज्ञों की विचारधारा (ब) उद्देश्यों का प्रतिपादन करना तथा पाठ्यवस्तु का चयन करना तथा (स) पाठ्यक्रम का प्रारूप विकसित करना। इस पक्ष के अन्तर्गत आवश्यकता, विशेषज्ञों की राय के आधार पर पाठ्य स्रोतों को ज्ञात किया जाता है। आवश्यकता के आधार पर उद्देश्यों की पहिचान करके उनका प्रतिपादन करते हैं और उद्देश्यों के अनुरूप पाठ्यवस्तु का चयन किया जाता है। उद्देश्यों एवं पाठ्यवस्तु की सहायता से पाठ्यक्रम का प्रारूप विकसित करते हैं।

सरन पाठ्यक्रम प्रतिमान

Curriculum Model as Input



(2) प्रदा (Output)– पाठ्यक्रम के प्रारूप के लिए अदा की भूमिका महत्वपूर्ण है परन्तु प्रदा पक्ष भी उतना महत्वपूर्ण है क्योंकि पाठ्यक्रम सीखने के अनुभवों की व्यवस्था का स्वरूप प्रस्तुत करता है जिससे अपेक्षित उद्देश्य प्राप्त किये जाते हैं। इसके अन्तर्गत कई कारक होते हैं परन्तु मूल्यांकन के आधार पर लिया जाता है। मूल्यांकन प्रक्रिया उद्देश्य-केन्द्रित होती है। इसके दो प्रमुख कार्य होते हैं—प्रथम यह निर्णय लिया जा सके कि उद्देश्य प्राप्त हुये हैं अथवा नहीं हो सके। द्वितीय यह भी विदित हो जाता है कि यदि उद्देश्य प्राप्त नहीं हुये हैं तो क्या कारण रहा। मूल्यांकन प्रक्रिया निदानात्मक होती है। प्रणाली विश्लेषण को प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रकार पाठ्यक्रम के सुधार हेतु दिशा भी मिल जाती है।

सरन प्रतिमान के सोपान (Steps for Saran Model)—अदा, प्रदा तथा प्रक्रिया के सम्पादन हेतु नौ सोपानों का अनुसरण किया जाता है वे इस प्रकार हैं—

1. आवश्यकता के मूल्यांकन हेतु सर्वेक्षण
2. भावी आवश्यकताओं के लिए मूल्यांकन
3. उद्देश्यों को पहिचानना
4. उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखना
5. पाठ्यवस्तु का चयन
6. मूल्यांकन प्रणाली का प्रारूप
7. स्रोतों का विकास
8. जाँच करना तथा
9. समीक्षा करना।

इस पाठ्यक्रम प्रतिमान में उद्देश्यों को अधिक महत्व दिया गया है।

इसलिए यह प्रतिमान उद्देश्य-केन्द्रित आयाम के अधिक समीप है। शिक्षा में उद्देश्यों को ही प्राथमिकता दी जाती है इसलिए इस प्रतिमान में भी उद्देश्यों तथा उनके विशिष्ट रूप को ही महत्व दिया गया है। इन सोपानों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

1. आवश्यकता के मूल्यांकन हेतु सर्वेक्षण (Survey for Need assessment)

- सर्वप्रथम यह आवश्यकता होती है कि बालकों की आवश्यकताओं, समाज, राष्ट्र की आवश्यकताओं का सर्वेक्षण किया जाए। सामाजिक परिवर्तन को भी ध्यान में रखा जाए। सामाजिक नई प्रवृत्तियों को भी ज्ञात किया जाए। सामाजिक दर्शन और सामाजिक आवश्यकताओं के लिए सर्वेक्षण किया जाता है। इसके लिए साक्षात्कार निरीक्षण तथा प्रश्नावली आदि प्रविधियों को प्रयुक्त किया जाता है, वस्तुनिष्ठ रूप में आवश्यकताओं की परख की जाती है।

2. भावी आवश्यकताओं के लिए मूल्यांकन (Assessment for Future Needs)

- शिक्षा तथा पाठ्यक्रम का नियोजन भावी नागरिकों को तैयार करने के लिए किया जाता है। शिक्षा सदैव भावी जीवन अथवा समाज की तैयारी करती है। भावी जीवन की तैयारी हेतु, भावी राष्ट्र और समाज की आवश्यकताओं का अनुमान लगाया जाता है और उनकी परख भी की जाती है। नई शिक्षा नीति (1986) में राजीव गॉंधी ने यही अपेक्षा की थी कि 21 वीं शताब्दी के लिए नागरिक तैयार करने हेतु शिक्षा का प्रारूप विकसित किया जाए। जिस बालक को आज विद्यालय में प्रवेश दिया गया है वह 20 वर्ष बाद शिक्षा पूरी करके समाज में कोई स्थान चाहेगा। अतः 20 वर्ष बाद की आवश्यकताओं का अनुमान लगाना और उनकी परख करना नितान्त आवश्यक होता है। इसमें सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिवर्तन की प्रवृत्ति के आधार पर भविष्य की आवश्यकताओं का अनुमान किया जाता है। भविष्य की आवश्यकताओं की परख करना आवश्यक होता है क्योंकि पाठ्यक्रम का आधार भावी आवश्यकतायें होती हैं।

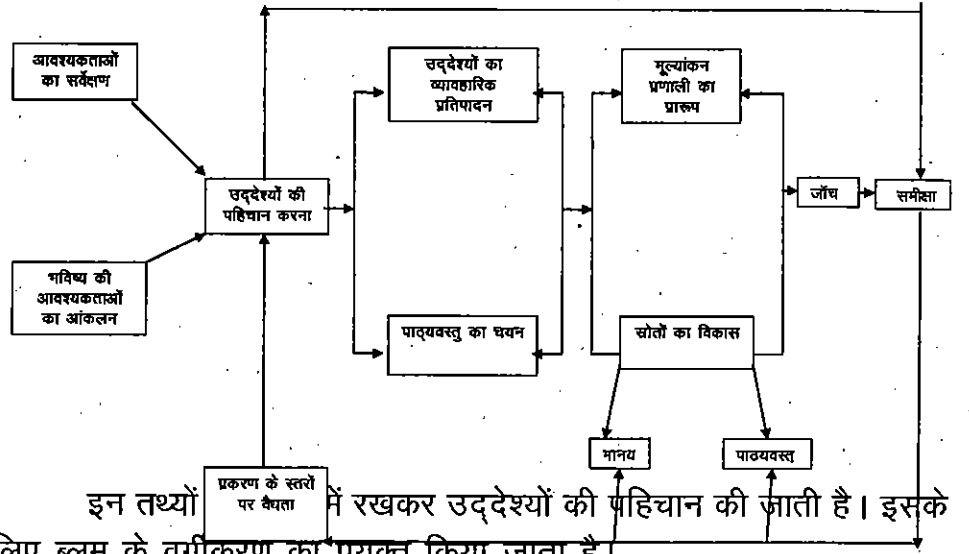
3. उद्देश्यों को पहिचानना (Identification of Objectives)

- शिक्षा एक सोद्देश्य प्रक्रिया है इसलिए पाठ्यक्रम प्रारूप किन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विकसित किया जाता है। बालक के ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक तथा शारीरिक विकास को महत्व दिया जाता है और सन्दर्भ बिन्दु समाज और राष्ट्र की भावी आवश्यकतायें होती हैं। विकास के स्वरूप में पाठ्यवस्तु सहायक होती है। पाठ्यवस्तु की स्वरूप आवश्यकतायें निर्धारित करता है। अतः उद्देश्यों की पहिचान के प्रमुख आधार अधोलिखित हैं-

- समाज तथा राष्ट्र की भावी आवश्यकतायें,
- बालक की आवश्यकतायें,
- बालक का विकास क्रम और उसकी विशेषतायें तथा
- पाठ्यवस्तु की प्रकृति तथा स्वरूप।

सरन पाठ्यक्रम प्रतिमान (अदा प्रणाली का रूप)

Saran Curriculum Model (As a Input System)



इन तथ्यों में रखकर उद्देश्यों की पहिचान की जाती है। इसके लिए ब्लूम के वर्गीकरण का प्रयुक्त किया जाता है।

4. उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखना (Formulation of Behaviour Objectives)— प्रदा पक्ष के लिए बालको का व्यवहार परिवर्तन ही आधार होता है। बालक का विकास भी उनमें अपेक्षित परिवर्तन द्वारा किया जाता है। शिक्षक पाठ्यवस्तु की सहायता से ऐसी परिस्थितियों उत्पन्न करता है जिससे छात्र अनुभवों एवं क्रियाओं द्वारा अपेक्षित व्यवहार सीख लेता है। इसलिए प्रक्रिया स्तर पर व्यावहारिक उद्देश्य अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने के लिए मेगर की विधि या आर० सी० एम० विधि को प्रयुक्त कर सकते हैं। इसके तीन तत्व होते हैं— (अ) उद्देश्य के रूप में, (ब) पाठ्यवस्तु का स्वरूप अथवा तत्व, तथा (स) उद्देश्य हेतु क्रिया। अनुक्रिया अथवा मानसिक प्रक्रिया। उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने से शिक्षण अधिगम की क्रियायें सुनिश्चित हो जाती है। मापन तथा मूल्यांकन करना भी सरल तथा सुगम हो जाता है। व्यवहार परिवर्तन ही मूल्यांकन के मानदण्ड होते हैं।

5. पाठ्यवस्तु का चयन (Selection of Content)—पाठ्यवस्तु का स्वरूप वृहद् होता है। शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर पाठ्यवस्तु एक ही होती है। परन्तु उनका स्वरूप अलग-अलग होता है। एक ही पाठ्यवस्तु का शिक्षण भी विभिन्न स्तरों पर किया जाता है। अतः पाठ्यवस्तु के चयन में—उद्देश्य, शिक्षण स्तर तथा छात्रों की बोधगम्यता को ध्यान में रखकर पाठ्यवस्तु का चयन किया जाता है। पाठ्यवस्तु उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक प्रमुख साधन है।

6. मूल्यांकन प्रणाली का प्रारूप (Design of Evaluation System)—पाठ्यक्रम के प्रारूप की सार्थकता के लिए मूल्यांकन करना भी आवश्यक होता है। मूल्यांकन प्रक्रिया से दो लाभ होते हैं—प्रथम, जिन उद्देश्यों के प्राप्त करने हेतु प्रारूप विकसित किया है वे कहीं तक प्राप्त हो रहे हैं। द्वितीय, यदि उद्देश्य प्राप्त नहीं हो रहे हैं तो क्या कारण है इसलिए निदान करके सुधार करने का

प्रयास किया जाता है। इस प्रकार मूल्यांकन प्रणाली उद्देश्य-केन्द्रित होनी चाहिए मानदण्ड परीक्षा को प्रयुक्त करना चाहिए। सुधार एवं विकास हेतु ठोस आधार मूल्यांकन प्रणाली से ही प्राप्त होता है। अतः पाठ्यक्रम विकास हेतु मूल्यांकन प्रणाली का प्रारूप महत्वपूर्ण सोपान माना जाता है।

7. स्रोतों का विकास (Development of Resources)— पाठ्यक्रम के प्रारूप को विकसित करते समय उपलब्ध साधन एवं सुविधाओं का ध्यान रखना भी आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए, कृषि के पाठ्यक्रम के लिए खेतिहार भूमि होना नितान्त आवश्यक होता है। साधन एवं सुविधाओं के अभाव में पाठ्यक्रम का सम्पादन करना सम्भव नहीं हो पाता है। प्रयोगशाला, वाचनालय, पुस्तकालय तथा अन्य साधनों के अतिरिक्त योग्य शिक्षक का होना भी आवश्यक होता है। अतः इन सभी घटकों को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम के प्रारूप को विकसित किया जाना चाहिए।

8. जॉच करना (Try Out)— पाठ्यक्रम के प्रारूप को विकसित करने के बाद उसकी जॉच करना भी आवश्यक होता है। पाठ्यवस्तु की सार्थकता छात्रों एवं उद्देश्यों के सन्दर्भ में देखी जाती है। जॉच विषय के विद्वानों द्वारा तार्किक ढंग से भी की जाती है। प्रणाली विश्लेषण में प्रयोग करके भी देखते हैं तब पाठ्यक्रम के प्रारूप का अन्तिम रूप दिया जाता है। पाठ्यवस्तु में मनोवैज्ञानिक क्रम होना चाहिए। जॉच की प्रक्रिया के आधार पर प्रारूप का सुधार एवं विकास किया जाता है।

9. समीक्षा करना (Review)— इन सभी सोपानों का अनुसरण के बाद उनकी समीक्षा की जाती है जिससे सुधार हेतु दिशा मिलती है कि इस प्रकार के सुधार की आवश्यकता है। अनुभवों तथा जॉच के आधार पर पाठ्यक्रम के प्रारूप का सुधार करके अन्तिम रूप तैयार किया जाता है।

इन सोपानों की सहायता से सरन प्रतिमान के पाठ्यक्रम का विकास किया जाता है। यह प्रतिमान व्यावहारिक अधिक है क्योंकि अनुभवों तथा जॉच के आधार पर अन्तिम प्रारूप तैयार किया जाता है। यह प्रतिमान समय अधिक लेता है इसलिए मितव्ययी नहीं है। सरन प्रतिमान का प्रारूप अधिक व्यापक है।

(2) व्यापक मूल्यांकन के आधार पर पाठ्यक्रम का विकास—हिल्दा ताबा (Hilda Taba-Comprehensive Evaluation of Curriculum)—जिस संदर्भ में ब्लूम ने मूल्यांकन की परिभाषा दी है उसी अर्थ में यहाँ मूल्यांकन का प्रयोग हुआ है। “विद्यालय में छात्रों की प्रगति हेतु उनके व्यवहार परिवर्तन के सम्बन्ध में जिन प्रमाणों को एकत्रित किया जाता है और उनका अर्थापन किया जाता है उसे मूल्यांकन प्रक्रिया कहते हैं।”

मूल्यांकन प्रत्यय का विकास ब्लूम ने किया था कि शिक्षण एवं परीक्षण की क्रिया में कैसे सुधार किया जा सकता है? परीक्षण, शिक्षण पर आधारित होना चाहिए। दोनों ही प्रक्रियाएँ उद्देश्य-केन्द्रित हों। शिक्षा को त्रिपादी प्रक्रिया माना है—शिक्षा के उद्देश्य, सीखने के अनुभव तथा व्यवहार परिवर्तन। सीखने के

अनुभवों के लिए पाठ्यक्रम का प्रारूप महत्वपूर्ण होता है। सीखने के अनुभवों के अन्तर्गत-शिक्षक, शिक्षण विधियाँ, प्रविधियाँ, सहायक सामग्री, पाठ्यवस्तु को सम्मिलित किया जाता है। मूल्यांकन का प्रयोग सम्पूर्ण परिस्थिति तथा सोपानों के लिये किया जाता है। छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन न होने पर पाठ्यक्रम में सुधार किया जाता है।

पाठ्यक्रम के प्रारूप को विकसित करने में मूल्यांकन की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। हिल्दा ताबा ने इसके लिये चार सोपानों का उल्लेख किया है-

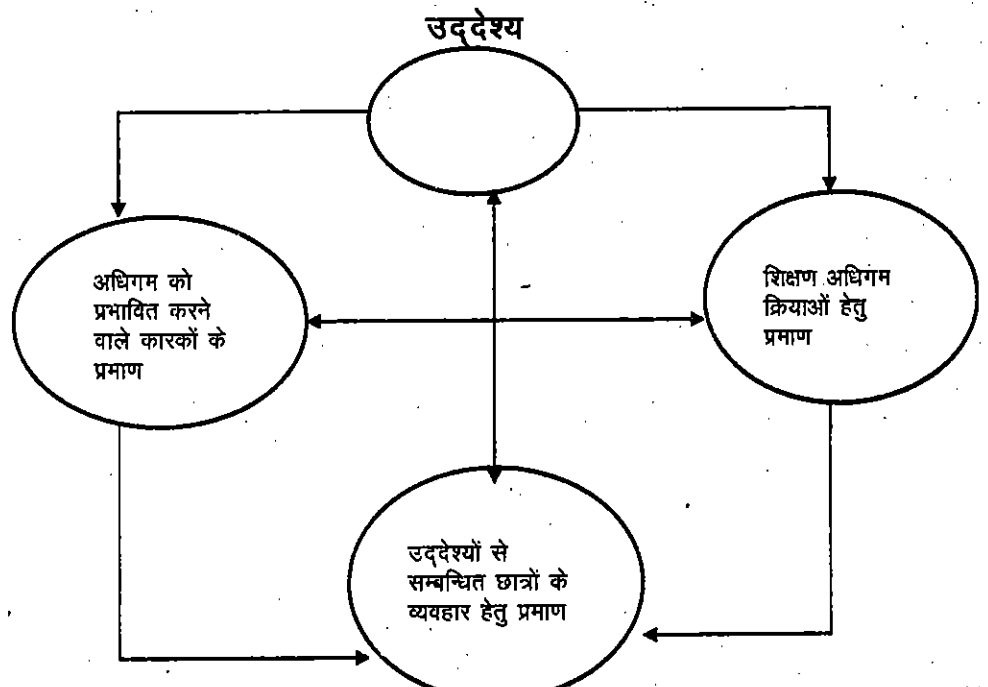
प्रथम सोपान-उद्देश्यों का निर्धारण (**Identification of Objectives**)

द्वितीय सोपान-शिक्षण अधिगम क्रियाओं के लिए प्रमाण (**Evidences for teaching-learning process**)

तृतीय सोपान-अधिगम को प्रभावित करने वाले घटक (**Factors affecting learning**)

चतुर्थ सोपान-उद्देश्यों से सम्बन्धित छात्रों के व्यवहार के लिए प्रमाण (**Evidence of pupil behaviour pertaining objectives**)

प्रथम सोपान में पाठ्यक्रम का मूल्यांकन शिक्षा के उद्देश्यों की दृष्टि से किया जाता है। जिससे ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक, सृजनात्मक और प्रत्यक्षीकरण को महत्व दिया जाता है। इन सभी के सम्बन्ध में प्रमाणों को एकत्रित किया जाता है और उद्देश्यों का निर्धारण करते हैं।



द्वितीय सोपान में समुचित शिक्षण-विधियाँ, प्रविधियों एवं शिक्षण सामग्री को प्रयुक्त करके अधिगम के लिए परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती है। अधिगम-अनुभवों

हेतु प्रमाण को भी एकत्रित किया जाता है।

तृतीय सोपान में अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों के लिए प्रमाण एकत्रित करते हैं जैसे पुनर्बर्लन तथा अभिप्रेरणा से छात्र अधिक सीखते हैं। अभ्यास भी अधिगम को प्रभावित करता है। दृश्य-श्रव्य सामग्री से बालक अधिक रुचि लेते हैं। छात्र को रटना नहीं पड़ता है।

चतुर्थ सोपान में पाठ्यक्रम की सार्थकता एवं उपादेयता उद्देश्यों की दृष्टि से की जाती है। परीक्षण का स्वरूप उद्देश्य-केन्द्रित होता है। इसलिए व्यवहार परिवर्तन के रूप में प्रमाणों का संकलन किया जाता है। इन प्रमाणों के आधार पर पाठ्यक्रम का सुधार एवं विकास किया जाता है।

इन सोपानों के आधार पर हिल्दा ताबा ने पाठ्यक्रम के प्रारूप के लिए चार अवस्थाओं का भी उल्लेख किया है। यद्यपि अवस्थाओं एवं सोपानों में अधिक समीपता है।

1. मूल्यांकन हेतु प्रदत्तों के स्वरूप का निर्धारण करना। (Deciding the kinds of evaluation data needed)
2. आवश्यक यंत्रों एवं प्रक्रियाओं का चयन करना अथवा स्वरूप विकसित करना। (Selecting or constructing the needed instrument and procedure)
3. परिवर्तन के सन्दर्भ में प्रदत्तों का विश्लेषण एवं अर्थापन करना तथा विकास हेतु परिकल्पना का प्रतिपादन करना। (Analysing and interpreting the data to develop the hypothesis regarding needed changes)
4. परिकल्पना को कार्य रूप में बदलना। (Converting hypothesis in to action)

प्रथम अवस्था के अन्तर्गत उद्देश्यों, शिक्षण विधियों व प्रविधियों से सम्बन्धित मूल्यांकन हेतु प्रदत्तों के स्वरूप को निर्धारित किया जाता है।

द्वितीय अवस्था में आवश्यक उपकरणों तथा प्रक्रिया का चयन किया जाता है। इनके मूल्यांकन के लिए मूल्यांकन प्रक्रिया-मौखिक, लिखित तथा प्रयोगात्मक का निर्धारण किया जाता है।

तृतीय अवस्था में उपरोक्त आँकड़ों के आधार पर निर्दान करके उनमें सुधार हेतु परिकल्पना का प्रतिपादन किया जाता है। परिकल्पना के स्वरूप से यह भी स्पष्ट होता है कि पाठ्यक्रम में किस प्रकार परिवर्तन करने की सम्भावना है। परिकल्पना की पुष्टि के बाद यह निश्चित हो जाता है कि क्या परिवर्तन अपेक्षित है। परिकल्पना की पुष्टि करना आवश्यक होता है यह प्रतिमान की अन्तिम अवस्था होती है। अनुभवों एवं परिकल्पना की पुष्टि से सुधार हेतु दिशा मिल जाती है।

हिल्दा ताबा के इस प्रतिमान में अवस्थाओं अथवा सोपानों का अनुसरण क्रमशः किया जाता है। यह प्रतिमान भी अधिक व्यावहारिक है। प्रमाणों के आधार

पर सुधार एवं विकास किया जाता है। सरन के सोपानों का स्वरूप विशिष्ट है, क्रियायें सुनिश्चित है इसलिए अधिक प्रचलित हैं।

2.13 सारांश

पाठ्यक्रम विकास का प्रमुख साधन है। शिक्षा तथा शिक्षण का स्वरूप पाठ्यक्रम के प्रारूप द्वारा निर्धारित होता है। शिक्षा प्रक्रिया के तीन प्रमुख घटक है— शिक्षक, शिक्षार्थि तथा पाठ्यक्रम। पाठ्यक्रम को शैक्षिक तथा सामाजिक घटक पाठ्यक्रम को प्रभावित करते हैं। पाठ्यक्रम अनेक प्रकार के होते हैं जैसे विषय केन्द्रित, अनुभव केन्द्रित, बाल केन्द्रित, शिल्प केन्द्रित, कार्य केन्द्रित आदि इसी प्रकार पाठ्यक्रम निर्माण के प्रमुख सिद्धान्त विभिन्न हैं जैसे उपयोगिता का, जीवन से सम्बन्धित होने का, लचीलेपन का। पाठ्यक्रम संगठन के दो प्रमुख प्रतिमान है जैसे अंशों में विभाजित प्रकल्प तथा एकीकृत प्रकल्प।

2.14 अभ्यास प्रश्न

- 1— पाठ्यक्रम को प्रभावित करने वाले प्रमुख घटकों की चर्चा कीजिये।
- 2— पाठ्यक्रम के प्रमुख प्रकार बताइये।

2.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

- 1— पाठ्यक्रम का प्रमुख लक्ष्य बच्चे का विकास करना है।
- 2— पाठ्यक्रम का मूल्यांकन करने के उपरान्त सुधार के लिये दिये गये सुझाव पृष्ठपोषण कहलाते हैं।
- 3— शिक्षा-प्रक्रिया के तीन प्रमुख घटक शिक्षक, छात्र तथा पाठ्यक्रम हैं।
- 4— पाठ्यक्रम का स्वरूप अधिगम से सुनिश्चित होता है।
- 5— बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम में प्रमुख स्थान बच्चे को दिशा दिया जाता है।
- 6— सुसम्बद्ध पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों को एक दूसरे से सम्बन्धित करके पढ़ाया जाता है।

इकाई की रूपरेखा

- 3.0 प्रस्तावना
- 3.1 उद्देश्य
- 3.2 ज्ञान एवं सूचना
- 3.3 सूचना तकनीकी या सूचना प्रौद्योगिकी
- 3.4 सूचना तकनीकी या सूचना प्रौद्योगिकी की व्याख्या
 - 3.4.1 सूचना प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित संक्षिप्त विश्वकोष में
 - 3.4.2 अमेरिकी रिपोर्ट के अनुसार सूचना प्रौद्योगिकी की परिभाषा
 - 3.4.3 यूनेस्को के अनुसार सूचना प्रौद्योगिकी की परिभाषा
 - 3.4.4 डॉ० चतुर्वेदी के अनुसार सूचना प्रौद्योगिकी की परिभाषा
 - 3.4.5 सूचना प्रौद्योगिकी की संक्षिप्त परिभाषा
- 3.5 सूचना प्रणाली
- 3.6 सूचना तकनीकी / प्रौद्योगिकी के उद्देश्य
- 3.7 सूचना प्रौद्योगिकी के उदय के कारक
- 3.8 सूचना प्रौद्योगिकी का महत्व
- 3.9 सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न घटक
- 3.10 सूचना एवं संचार तकनीकी के विभिन्न मीडिया या माध्यम
 - 3.10.1 मुद्रित साधन
 - 3.10.2 मौखिक सूचनाएँ एवं ज्ञान
 - 3.10.3 दृश्य श्रव्य सहायक सामग्री
 - 3.10.4 स्व-अधिगम सामग्री एवं उपकरण
 - 3.10.5 प्रत्यक्ष जानकारी प्रदान करने वाले साधन
 - 3.10.6 विभिन्न सूचना केन्द्र एवं नेटवर्क
- 3.11 सूचना प्रौद्योगिकी का प्रभाव
- 3.12 सूचना प्रौद्योगिकी का भविष्य
- 3.13 शिक्षा में सूचना एवं संचार तकनीकी का उपयोग
 - 3.13.1 विद्यार्थियों के लिए उपयोगी
 - 3.13.2 शिक्षकों के लिए उपयोगी
 - 3.13.3 मार्गदर्शन प्रदान करने वालों के लिए उपयोगी

3.13.4 शैक्षिक नियोजनकर्त्ता और प्रशासकों के लिये उपयोगी

3.13.5 शैक्षिक अनुसंधानकर्त्ताओं के लिये उपयोगी

3.14 सारांश

3.15 अभ्यास हेतु प्रश्न

3.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 प्रस्तावना

सूचना-अर्थ एवं संप्रत्यय -सूचना तकनीक को अपने शाब्दिक अर्थ में एक ऐसा विज्ञान तथा तकनीकी ज्ञान समझा जाता है जिसकी सहायता से सूचनाओं की संग्रहित, सुरक्षित, नियन्त्रित एवं उपयोग में लाने का कार्य भली-भाँति निभाया जा सकता हो परन्तु प्रश्न उठता है कि 'सूचना' शब्द का अपने आप में क्या अर्थ और महत्व है?

"सूचना से सम्बन्ध उन आँकड़ों से है जिन्हें विश्लेषित कर ऐसा रूप प्रदान किया जाता है जो सूचना प्राप्तकर्त्ता को सार्थक लगे और उसे वह वांछित निष्कर्ष निकालकर किसी निर्णय पर पहुंचने के लिये काम में ला सके।"

संक्षिप्त रूप में यह परिभाषा निम्न प्रकार से भी व्यक्त की जा सकती है—"सूचना से तात्पर्य उन आँकड़ों से है जिन्हें किसी निर्णय पर पहुंचने के लिये काम में लाया जाता है।" (Information is data which is used in decision making.)

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- सूचना तकनीक के अर्थ को समझ सकेंगे।
- ज्ञान एवं सूचना के सूक्ष्म अन्तर को समझ सकेंगे।
- सूचना तकनीकी के संप्रत्यय को स्पष्ट समझ सकेंगे।
- सूचना तकनीकी की विभिन्न परिभाषाओं से अवगत हो सकेंगे।
- सूचना प्रणाली को समझ सकेंगे।
- सूचना तकनीकी के उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
- सूचना प्रौद्योगिकी के महत्व को समझ सकेंगे।
- सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न घटकों एवं माध्यमों को समझ सकेंगे।
- सूचना प्रौद्योगिकी के प्रभाव एवं भविष्य को समझ सकेंगे।
- शिक्षा में सूचना एवं संचार तकनीकी के उपयोग को समझ सकेंगे।

सूचना शब्द को अपने बहु-प्रचलित रूप में या साधारण बोलचाल की

भाषा में ज्ञान तथा जानकारी के रूप में काम में लाया जाता है। अर्थात् ज्ञान और सूचना दोनों को एक दूसरे के पर्याय के रूप में समझा जाता है। यह ठीक नहीं है। ज्ञान और सूचना एक दूसरे के पर्याय नहीं हो सकते। सूचना प्राप्त करने के बाद ही हमें ज्ञान का बोध होता है। ज्ञान की अवस्था, सूचना प्राप्ति की अवस्था के बाद आती है। पहले हम किसी वस्तु, व्यक्ति या विचार के प्रति सूचना एकत्रित करते हैं और उसके बाद ही यह दावा करने के योग्य बनते हैं कि हमें उस व्यक्ति, वस्तु या विचार की जानकारी, ज्ञान या बोध है।

3.3 सूचना तकनीकी या सूचना प्रौद्योगिकी

सूचना तकनीकी एक ऐसी तकनीकी या प्रौद्योगिकी है जिसकी सहायता से सूचनाओं या आंकड़ों को यथा संभव यथार्थता तथा विश्वसनीयता के साथ इसलिये एकत्रित करने, संग्रह करने, संश्लेषण एवं विश्लेषण करने तथा आवश्यकतानुसार जैसी जरूरत हो काम में लाने का इस उद्देश्य से प्रयत्न किया जाता है कि इससे सूचना से लाभ उठाने वाले को अपना ज्ञानवर्द्धन करने तथा निर्णय और समस्या समाधान क्षमता को बढ़ाने का उचित अवसर मिल सके।

सूचना प्रौद्योगिकी के अंतर्गत वह विषय और उद्योग आते हैं तो सूचना के आदान-प्रदान में मदद करते हैं जैसे-दूरसंचार सेवा, कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर, ब्रॉडबैंड, इंटरनेट, केबल टी0 वी0 आदि। एक उद्योग के तौर पे ये एक उभरता हुआ क्षेत्र है। सूचना प्रौद्योगिकी आंकड़ों की प्राप्ति, सूचना संग्रह, सुरक्षा, परिवर्तन, आदान-प्रदान, अध्ययन, डिजाइन आदि कार्यों तथा इन कार्यों के निष्पादन के लिये आवश्यक कम्प्यूटर हार्डवेयर एवं साफ्टवेयर अनुप्रयोगों से सम्बन्धित है। सूचना प्रौद्योगिकी कम्प्यूटर पर आधारित सूचना-प्रणाली का आधार है। सूचना प्रौद्योगिकी, वर्तमान समय में वाणिज्य और व्यापार साथ ही शिक्षा का अभिन्न अंग बन गयी है। संचार क्रान्ति के फलस्वरूप अब इलेक्ट्रॉनिक संचार को भी सूचना प्रौद्योगिकी का एक प्रमुख घटक माना जाने लगा है और इसे सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (Information and communication Technology-ICT) भी कहा जाता है। एक उद्योग के तौर पर यह एक उभरता हुआ क्षेत्र है।

3.4 सूचना तकनीकी या सूचना प्रौद्योगिकी की व्याख्या

भाषा, अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। भाषा मानव जीवन का अभिन्न अंग है। संप्रेषण के द्वारा ही मनुष्य सूचनाओं का आदान-प्रदान एवं उसे संग्रहीत करता है। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक कारणों से विभिन्न मानवी समूहों का आपस में संपर्क बन जाता है। गत शताब्दी में सूचना ओर संपर्क के क्षेत्र में अद्भुत प्रगति हुई है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के फलस्वरूप विश्व का अधिकांश भाग जुड़ गया है। सूचना प्रौद्योगिकी क्रान्ति ने ज्ञान के द्वार खोल दिये हैं। बुद्धि एवं भाषा के मिलाप से सूचना प्रौद्योगिकी के सहारे आर्थिक संपन्नता की ओर भारत अग्रसर हो रहा है। इलेक्ट्रॉनिक वाणिज्य के रूप में ई-कॉमर्स, इंटरनेट द्वारा डाक भेजना ई-मेल द्वारा सम्भव हुआ है। ऑन-लाईन सरकारी कामकाज

विषयक ई-प्रशासन, ई-बैंकिंग द्वारा बैंक व्यवहार ऑन-लाईन, शिक्षा सामग्री के लिए ई-एजुकेशन आदि माध्यम से सूचना प्रौद्योगिकी का विकास हो रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के बहु-आयामी उपयोग के कारण विकास के नये द्वार खुल रहे हैं। भारत में सूचना प्रौद्योगिकी का क्षेत्र तेजी से विकसित हो रहा है। इस क्षेत्र में विभिन्न प्रयोगों का अनुसंधान करके विकास की गति को बढ़ाया गया है। सूचना प्रौद्योगिकी में सूचना, आँकड़े तथा ज्ञान का आदान-प्रदान मनुष्य जीवन के हर क्षेत्र में फैल गया है। हमारी आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, व्यावसायिक तथा अन्य बहुत से क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी के कारण सफल हुई है। इस नये युग में ई-कॉमर्स, ई-मेडीसीन, ई-एजुकेशन, ई-गवर्नंस, ई-बैंकिंग, ई-शापिंग, आदि इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों का विकास हो रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी आज शक्ति एवं विकास का प्रतीक बनी है। कम्प्यूटर युग के संचार साधनों में सूचना प्रौद्योगिकी के आगमन से हम सूचना समाज में प्रवेश कर रहे हैं। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के इस अधिकतम देन के ज्ञान एवं इनका सार्थक उपयोग करते हुए, उनसे लाभान्वित होने की सभी को आवश्यकता है।

3.4.1 सूचना प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित संक्षिप्त विश्व-कोष में-

“सूचना प्रौद्योगिकी को सूचना से संबद्ध माना गया है। इस प्रकार के विचार डिक्शनरी ऑफ कम्प्यूटिंग में भी व्यक्त किए गए हैं। मैकमिलन डिक्शनरी ऑफ इनफॉर्मेशन टेक्नोलॉजी में सूचना प्रौद्योगिकी को परिभाषित करते हुए यह विचार व्यक्त किया गया है कि कम्प्यूटिंग और दूरसंचार के संमिश्रण पर आधारित माइक्रोइलेक्ट्रॉनिक्स द्वारा मौखिक, चित्रात्मक, मूलपाठ विषयक और संख्या सम्बन्धी सूचना का अर्जन, संसाधन भंडारण और प्रसार है।”

3.4.2 अमेरिका रिपोर्ट के अनुसार सूचना प्रौद्योगिकी को इन शब्दों में परिभाषित किया गया है-

“सूचना प्रौद्योगिकी का अर्थ है, सूचना का एकत्रिकरण, भंडारण, प्रोसेसिंग, प्रसार और प्रयोग। यह केवल हार्डवेयर अथवा सॉफ्टवेयर तक ही सीमित नहीं है। बल्कि इस प्रौद्योगिकी के लिए मनुष्य की महत्ता और उसके द्वारा निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करना, इन विकल्पों के निर्माण में निहित मूल्य, यह निर्णय लेने के लिए प्रयुक्त मानदंड है कि क्या मानव इस प्रौद्योगिकी को नियंत्रित कर रहा है और इससे उसका ज्ञान संवर्धन हो रहा है।”

3.4.3 यूनेस्को के अनुसार सूचना प्रौद्योगिकी की परिभाषा-

“सूचना प्रौद्योगिकी, वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकीय और इंजीनियरिंग विषय है और सूचना की प्रोसेसिंग, उनके अनुप्रयोग की प्रबंध तकनीकें हैं। कम्प्यूटर और उनकी मानव तथा मशीन के साथ अंतः क्रिया एवं संबद्ध सामाजिक, आर्थिक तथा

सांस्कृतिक विषय”

3.4.4 डॉ० चतुर्वेदी ने सूचना प्रौद्योगिकी के सूचना तकनीकी शब्द को परिभाषित करते हुए लिखा है—

“सूचना तकनीकी का किसी भी उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किया जाए वह वस्तुतः उपकरण तकनीकी है। यह सूचनाओं को अमूर्त संसाधन के रूप में मथती है। यह ‘हार्डवेयर और साफ्टवेयर’ दोनों पर आश्रित है। इसमें उन तत्वों का समावेश भी है जो ‘हार्डवेयर और साफ्टवेयर’ से स्वतंत्र है।

3.4.5 सूचना प्रौद्योगिकी के अंतर्गत वे सब उपकरण एवं पद्धतियों सम्मिलित है, जो “सूचना” के संचालन में काम आते हैं। यदि इसकी एक संक्षिप्त परिभाषा देनी हो, तो कहेंगे—

“सूचना प्रौद्योगिकी एक ऐसा अनुशासन है जिसमें सूचना का संचार अथवा आदान-प्रदान त्वरित गति से दूरस्थ समाजों में, विभिन्न तरह के साधनों तथा संसाधनों के माध्यम से सफलतापूर्वक किया जाता है।”

सूचना प्रौद्योगिकी के संदर्भ में हम जब सूचना शब्द का प्रयोग करते हैं, तब यह एक तकनीकी पारिभाषिक शब्द होता है। वहाँ सूचना के संदर्भ में आँकड़ा और प्रज्ञा, विवेक, बुद्धिमत्ता आदि शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। प्रौद्योगिकी ज्ञान कि एक ऐसी शाखा है, जिसका सरोकार यांत्रिकीय कला अथवा प्रयोजन परक विज्ञान अथवा इन दोनों के समन्वित रूप से है।

बोध प्रश्न

प्र० 1 भाषा से आप क्या समझते हैं।

.....
.....

प्र० 2 विभिन्न इलेक्ट्रानिक माध्यमों के नाम बताइये।

.....
.....

3.5 सूचना प्रणाली

सूचना प्रणाली से अभिप्राय प्रणाली विशेषज्ञ द्वारा विकसित ऐसी मानव निर्मित प्रणाली या मशीनी प्रणाली से होता है जिसे किसी भी उपयोगकर्ता द्वारा माँछित सूचनाओं को प्राप्त करने, व्यवस्थित करने तथा आवश्यकतानुसार अपने व्यक्तिगत तथा व्यावसायिक कार्यों हेतु निर्णय लेने के काम में लाया जा सकता है। आज के समय में सूचना प्रणालियों का एक विशेष ही महत्व है। इनकी कृपा से हमें विशेष प्रकार की सूचनायें एक ही स्थान विशेष पर एक विशेष तरीके से

सुविधापूर्वक प्राप्त हो जाती हैं। इनसे सूचनाओं का सफलतापूर्वक संग्रह करके उनका अच्छी तरह व्यवस्थापन और नियंत्रण करने में भी आसानी रहती है तथा इन्हें विश्लेषित कर वांछित रूप से परिवर्तित कर आवश्यकतानुसार काम में लाने में भी सूचना प्रणालियों काफी सहायक होती है। सूचना प्रणालियों से हमें जीवन अवसरों (जैसे नौकरी, शिक्षा, पाठ्यक्रम तथा निजी जिन्दगी और व्यवसाय में उन्नति), समस्याओं तथा खतरों से सावधान रहने आदि से सम्बन्धित विभिन्न सूचनायें मिलती रहती है, जिनसे हमें आवश्यक रूप से सावधान रहने, काम काज में सक्षम होने, जीवन को व्यवस्थित और प्रगतिशील बनाने, समयानुसार उचित निर्णय लेने आदि में पूरी पूरी मदद मिलती रहती है। विशेष प्रकार की सूचना प्रणालियों विशेष प्रकार के सूचना संपादन, नियंत्रण और उनका भली-भाँति उपयोग कराने में विशेष प्रकार का योगदान देने का कार्य अच्छी तरह निभाती रहती है जिनसे निजी तौर पर या कम्प्यूटर्स का उपयोग कर सकने की क्षमता में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है।

3.6 सूचना तकनीकी/प्रौद्योगिकी के उद्देश्य

सूचना तकनीकी/प्रौद्योगिकी के प्रमुख उद्देश्यों को निम्न प्रकार से लिपिबद्ध किया जा सकता है।

1. एक ऐसा सूचना तन्त्र या प्रणाली विकसित करना जिससे सूचनाओं के एकत्रित करने, संग्रह करने तथा आवश्यकतानुसार उपलब्ध कराने का कार्य बेहतर ढंग से किया जा सके।
2. सूचनाओं में निहित जानकारी, ज्ञान, संदेश तथा आंकड़ों को उनके अपने सही और मूलरूप में समझने और जानने में सूचना ग्रहण करने वालों को सहायता करना।
3. सूचनाओं को प्रयोग में लाने वाले को संग्रहित सूचनाओं का विश्लेषण, संश्लेषण तथा अपनी आवश्यकता के अनुकूल व्यवस्थित करने के कार्य में सहायता करना।
4. सूचनाओं में लाभ उठाने वालों को इस तरह सहायता करना कि वे अपने व्यवहार में उचित परिमार्जन करने तथा अपनी निर्णय एवं समस्या समाधान योग्यता में वृद्धि करने में समर्थ हो सकें।

3.7 सूचना प्रौद्योगिकी के उदय के कारक

सूचना प्रौद्योगिकी के उदय के निम्नलिखित कारक हैं—

अर्धचालक प्रौद्योगिकी: इन्टीग्रेट परिपथों का लघुकरण, कम्प्यूटिंग शक्ति में वृद्धि, उन्नत क्षमता युक्त एककीकृत परिपथों का विकास।

सूचना भण्डारण: आंकड़ा भंडारण के लिये प्रयुक्त अर्धचालक प्रौद्योगिकी

के विकास से सस्ता, लघु आकार और अति क्षमतायुक्त युक्तियाँ सुलभ हो गयी है।

नेटवर्किंग: प्रकाशीय तंतु (आप्टिकल फाइबर) की तकनीकी में अत्यधिक विकास के कारण नेटवर्किंग सस्ता, तेज और आसान हो गयी है।

बोध प्रश्न

प्र० 3 सूचना भण्डारण से आप क्या समझते हैं ?

.....
.....

प्र० 4 नेट वर्किंग सस्ती और तेज क्यों है ?

.....
.....

3.8 सूचना प्रौद्योगिकी का महत्व

सूचना प्रौद्योगिकी का महत्व निम्नलिखित कारणों से है—

- सूचना प्रौद्योगिकी, सेवा अर्थतंत्र की आधार है।
 - पिछड़े देशों के सामाजिक और आर्थिक विकास के लिये सूचना प्रौद्योगिकी एक सम्यक तकनीकी है।
 - गरीब जनता को सूचना-सम्पन्न बनाकर ही निर्धनता का उन्मूलन किया जा सकता है।
 - सूचना-सम्पन्नता से शक्तिकरण होता है।
 - सूचना तकनीकी, प्रशासन और सरकार में पारदर्शिता लाती है, इससे भ्रष्टाचार कम करने में मदद मिलती है।
 - सूचना तकनीकी का प्रयोग योजना बनाने, नीति निर्धारण तथा निर्णय लेने में होता है।
- यह नये रोजगारों का सृजन करती है।

9 सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न घटक

कम्प्यूटर हार्डवेयर प्रौद्योगिकी—इसके अन्तर्गत माइक्रोकम्प्यूटर, सर्वर, डे मेनफ्रेम कम्प्यूटर के साथ-साथ इनपुट, आउटपुट एवं संग्रह करने वाली वस्तुएँ आती है।

कम्प्यूटर साफ्टवेयर प्रौद्योगिकी—इसके अन्तर्गत संचालन प्रणाली, वेब उज़र तथा व्यापारिक/वाणिज्यिक साफ्टवेयर आते हैं।

दूरसंचार व नेटवर्क प्रौद्योगिकी—इसके अन्तर्गत दूर संचार के माध्यम,

प्रोसेसर तथा अन्तरजाल से जुड़ने के लिये तार या बेतार पर आधारित साफ्टवेयर आते हैं।

मानव संसाधन—इसके अन्तर्गत सिस्टम ऐडमिनिस्ट्रेटर, नेटवर्क ऐडमिनिस्ट्रेटर आदि आते हैं।

बोध प्रश्न

प्र0 5 सूचना प्रौद्योगिकी के प्रमुख घटक बताइये।

प्र0 6 मानव संसाधन क्या है।

3.10 सूचना एवं संचार तकनीकी के विभिन्न मीडिया या माध्यम—

सूचना तकनीकी को अपने कार्य व्यापार के लिए विभिन्न प्रकार के माध्यमों तथा साधनों का सहारा लेना होता है। शिक्षण अधिगमों के उचित अर्जन के संदर्भ में सूचना तकनीकी में प्रयुक्त विभिन्न माध्यमों को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है।

3.10.1 मुद्रित साधन—

जैसे पाठ्य पुस्तक, संदर्भ-ग्रंथ, पाठ्यक्रम से सम्बन्धित अन्य साहित्य एवं पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ आदि। विद्यालय तथा अन्य सार्वजनिक पुस्तकालयों में मिलने वाली पठन सामग्री।

3.10.2 मौखिक सूचनार्ये एवं ज्ञान—

अध्यापकों, विद्यालय के अन्य सह-कर्मियों, सहपाठियों, बड़ी कक्षाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों, मित्रों, माता-पिता तथा परिजनों एवं समाज के अन्य सदस्यों से औपचारिक और अनौपचारिक रूप में प्राप्त ज्ञान तथा सूचनार्ये।

3.10.3 दृश्य-श्रव्य सहायक सामग्री—

विभिन्न प्रकार की दृश्य-श्रव्य सहायक सामग्री एवं उपकरण जैसे—ग्राफिक सहायक सामग्री (चित्र, चार्ट, मानचित्र आदि), रेडियो, टेलीविज़न, आडियो एवं विडियो उपकरण, फिल्म, सिनेमा आदि।

3.10.4 स्व-अधिगम सामग्री एवं उपकरण—

अभिक्रमित अधिगम सामग्री एवं पाठ्यपुस्तक, शिक्षण मशीन, तथा कम्प्यूटर

निदेशित शिक्षण सामग्री आदि।

3.10.5 प्रत्यक्ष जानकारी प्रदान करने वाले साधन—

ऐसे साधन, वस्तुयें तथा स्थान जहां से प्रत्यक्ष रूप में जानकारी और ज्ञान प्राप्त हो सकता है। जैसे संग्रहालय, कारखाने, खेत और बगीचे, नदियाँ और पहाड़, ऐतिहासिक स्थान एवं भवन, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक अनुभव प्राप्त कराने वाली घटनायें एवं स्थान भौगोलिक जानकारी प्राप्त कराने वाली स्थितियाँ तथा स्थान आदि।

3.10.6 विभिन्न सूचना केन्द्र एवं नेटवर्क—

विद्यालय में स्थापित सूचना केन्द्र, अन्य विद्यालयों तथा संस्थानों के सूचना केन्द्र, विभिन्न प्रकार के नेटवर्क जैसे— मेट्रोपोलीटन एरिया नेटवर्क (MAN), लोकल एरिया नेटवर्क (LAN) तथा वाइड एरिया नेटवर्क (WAN), कम्प्यूटर्स में प्राप्त सूचना भंडार, ई-मेल, इन्टरनेट तथा वर्ल्ड वाइड वेबसाइट है।

बोध प्रश्न

प्र० 7 मुद्रित साधन क्या है ?

.....
.....

प्र० 8 दृश्य-श्रव्य सहायक सामग्री किसे कहते हैं।

.....
.....

3.11 सूचना प्रौद्योगिकी का प्रभाव

सूचना प्रौद्योगिकी ने पूरी धरती को एक गाँव बना दिया है। इसने विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं को जोड़कर एक वैश्विक अर्थव्यवस्था को जन्म दिया है। यह नवीन अर्थव्यवस्था अधिकाधिक रूप से सूचना के रचनात्मक व्यवस्था व वितरण पर निर्भर है। इसके कारण व्यापार और वाणिज्य में सूचना का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। इसीलिये इस अर्थव्यवस्था को सूचना अर्थव्यवस्था (Information Economy) या ज्ञान अर्थव्यवस्था (Knowledge Economy) भी कहने लगे हैं। सामान के उत्पादन पर आधारित परम्परागत अर्थव्यवस्था कमजोर पड़ती जा रही है और सूचना पर आधारित सेवा अर्थव्यवस्था निरन्तर आगे बढ़ती जा रही है।

सूचना क्रान्ति से समाज के सम्पूर्ण कार्यकलाप प्रभावित हुए हैं—धर्म, शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यापार, प्रशासन, सरकार, उद्योग, अनुसंधान व विकास, संगठन,

प्रचार आदि सब के सब क्षेत्रों में कायापलट हो गयी है। आज का समाज सूचना समाज कहलाता है।

3.12 सूचना प्रौद्योगिकी का भविष्य

सूचना के महत्व के साथ सूचना की सुरक्षा का महत्व भी बढ़ेगा। सूचना प्रौद्योगिकी से जुड़े कार्यों में रोजगार के अवसर बढ़ेंगे, विशेष रूप से सूचना सुरक्षा एवं सर्वर के विशेषज्ञों की माँग बढ़ेगी।

3.13 शिक्षा में सूचना एवं संचार तकनीकी का उपयोग

विद्यार्थी, अध्यापक, स्कूल कर्मचारी, प्रशासक वर्ग तथा परमार्शदाता आदि सभी सूचना एवं संचार तकनीकी का उपयोग विभिन्न प्रकार की सूचनाओं को एकत्रित करने, संग्रह करने तथा उन्हें ठीक प्रकार से विश्लेषित, संश्लेषित एवं व्यवस्थित करने में कर सकते हैं। सूचना एवं संचार तकनीकी के माध्यम से संस्थाओं को सूचना केन्द्र का एक उपयुक्त नेटवर्क बनाया जा सकता है। एक कम्प्यूटर पर उपलब्ध सूचना सामग्री सभी अन्य कम्प्यूटरों पर भी जरूरत पड़ने पर उपलब्ध हो जाये इस तरह के आंतरिक नेटवर्क द्वारा संस्था के भीतर सभी को जब जैसी जरूरत हो सूचना प्राप्त करने में पर्याप्त सहायता मिल सकती है। इस प्रकार के मेट्रोपोलीटन एरिया नेटवर्क (MAN), लोकल एरिया नेटवर्क (LAN) तथा वाइड एरिया नेटवर्क (WAN) द्वारा संस्था बाहर की नेटवर्क प्रणालियों से भी सम्पर्क साथ कर संस्था के सूचना केन्द्र को समृद्ध और सजग बनाये रखा जा सकता है। इसका उपयोग व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक हित के लिये किया जा सकता है। सभी छात्रों को सम्भव सूचना स्रोतों की सही जानकारी तथा पहुँच हो पाती है। वे इन सूचनाओं से पर्याप्त लाभ उठाकर अपने ज्ञान, कौशल, बोध, रुचि, दृष्टिकोण आदि सभी व्यवहार क्षेत्रों में वांछित परिमार्जन और प्रगति करने के योग्य बनते हैं।

विद्यार्थी, अध्यापक, स्कूल कर्मचारी, प्रशासक वर्ग तथा परमार्शदाता आदि सभी के लिए सूचना एवं संचार तकनीकी निम्नलिखित प्रकार से उपयोगी हो सकती है—

3.13.1 विद्यार्थियों के लिये उपयोगी

सूचना तकनीकी के उपयोग से विद्यार्थियों को सूचना के स्रोतों से परिचित होने, उनके द्वारा सूचना इकट्ठी करने, उन्हें ठीक ढंग से संग्रहित करने, व्यवस्थित कर भविष्य में आवश्यकतानुसार उपयोग में लाने का उचित अवसर और प्रशिक्षण मिलता है। जो कुछ भी उन्हें ज्ञान प्राप्ति, अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन तथा व्यक्तित्व विकास के लिये यथार्थ और विश्वसनीय सूचनाओं के रूप में चाहिये वह सब कुछ सूचना तकनीकी के सहयोग से उन्हें प्रभावी ढंग से प्राप्त हो सकता है। सूचना तकनीकी के द्वारा उन्हें मात्र सूचना या ज्ञान प्राप्ति का द्वार ही नहीं खुलता बल्कि समस्या समाधान योग्यता, निर्णय क्षमता आदि का

भी प्रशिक्षण मिलता है।

3.13.2 शिक्षकों के लिये उपयोगी

सूचना तकनीकी शिक्षकों को अपने शिक्षण दायित्वों को निभाने हेतु विभिन्न प्रकार से सहायता कर सकती है। उपयुक्त शिक्षण हेतु उन्हें विभिन्न प्रकार की सूचनायें, ज्ञान तथा आंकड़ें चाहियें इन सबको ठीक प्रकार से दिलाने में सूचना तकनीकी बहुमूल्य सहयोग दे सकती है। विभिन्न प्रकार के सूचना स्रोतों से परिचित कराना; उनसे आवश्यक सूचनायें प्राप्त करके अपने शिक्षण कार्य हेतु उपयोग में लाने के कार्य में सूचना तकनीकी उन्हें भली-भाँति सहायता कर सकती है। वे अपने विद्यार्थियों को भी ज्ञान और सूचना के उपलब्ध स्रोतों से परिचित कराकर अपना बहुत कुछ कार्य भर कम कर सकते हैं क्योंकि जिन बातों को उन्हें विद्यार्थियों को बार-बार बताना पड़ सकता है वे सभी बातें उन्हें बहुत ही व्यापक और गहन अर्थों में सूचना तकनीकी के सहारे आसानी से उपलब्ध हो सकती है। अभिक्रमित पाठ्य पुस्तकों, शिक्षण मशीन तथा कम्प्यूटर निदेशित स्व अधिगम सामग्री यहां अध्यापकों को अपने शिक्षण कार्यों को बेहतर ढंग से पूरा कर बालकों को ज्यादा से ज्यादा फायदा करने के कार्य में आ सकती है।

3.13.3 मार्गदर्शन प्रदान करने वालों के लिए उपयोगी

निर्देशन एवं परामर्श सेवाओं के संचालन में चाहे वह विद्यालय परिसर में चलें या अन्य संस्थाओं द्वारा समुदाय में चलाये जायें, सूचना तकनीकी का सहयोग विभिन्न प्रकार से लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। निर्देशन एवं परामर्श सेवाओं के लिये तरह-तरह की सूचनायें, जानकारी और आँकड़ों की लगातार जरूरत रहती हैं। व्यक्तिगत, व्यावसायिक या शैक्षणिक कैसा भी निर्देशन और परामर्श दिया जाये, परामर्शदाता को सूचनाओं और आँकड़ों के बारे में पूरी तरह जानकारी चाहिये जो सही और विश्वसनीय हो, जिसे आसानी से प्राप्त किया जाता रहे, तथा उसका उचित भंडारण कर समय पर प्रयोग में लाया जा सके। कहना न होगा ये सभी बातें, सूचना तकनीकी के सहयोग से ही अच्छी तरह संभव है।

3.13.4 शैक्षिक नियोजनकर्ता और प्रशासकों के लिये उपयोगी

शैक्षिक कार्यक्रमों के नियोजन और शैक्षिक गतिविधियों के ठीक प्रकार प्रबन्धन हेतु भी सूचना तकनीकी का सहयोग विभिन्न प्रकार से मूल्यवान सिद्ध हो सकता है। विद्यालय का प्रशासन चलाना है तो आपको विद्यालय की सभी प्रकार की गतिविधियों तथा मानव और भौतिक संसाधनों के कार्य-कलापों की भली-भाँति जानकारी तथा सम्बन्धित आँकड़े उचित रूप में उपलब्ध होने ही चाहिये। सूचना तकनीकी का सहयोग यहां प्रशासकों को वरदान सिद्ध हो सकता है। इसी तरह किसी भी तरह का नियोजन कार्य बिना उचित सूचनाओं, जानकारी तथा आँकड़ों के बिल्कुल भी आगे नहीं बढ़ सकता। विद्यालय में चाहे परीक्षाएँ करानी हों या विद्यार्थियों को किसी भी पाठ्यक्रम में प्रवेश देना हो, सभी के नियोजन हेतु उचित

सूचना एवं आँकड़े, सूचना तकनीकी की सहायता से भली-भाँति प्राप्त हो सकते हैं।

3.13.5 शैक्षिक अनुसंधानकर्त्ताओं के लिये उपयोगी

जो भी शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान करना चाहता है उसे विषय से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की सूचनायें तथा आँकड़ें चाहियें। ये सूचनायें तथा आँकड़े अनुसंधानकर्त्ताओं को यथार्थ एवं विश्वसनीय रूप से उनकी सुविधा के हिसाब से ठीक प्रकार प्राप्त होते रहने चाहियें। किस प्रकार का अनुसंधान कार्य हो चुका है तथा देश-विदेश में इस बारे में क्या कुछ हो रहा है यह जानकारी और सूचनाओं की उचित रूप में उपलब्धि उन्हें सूचना तकनीकी के सहयोग से ही भली-भाँति प्राप्त होती रह सकती है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि सूचना तकनीकी से प्राप्त सुविधाओं से शिक्षा के प्रयास और परिणामों से जुड़े हुये सभी पक्षों को विविध रूपों में सहायता मिल सकती हैं। सूचना प्राप्ति ही सही अर्थों में ज्ञानार्जन की सीढ़ी है। इसी में आगे जाकर सभी प्रकार के अधिगम अर्जन में सहायता मिलती है। इस दृष्टि से सूचना तकनीकी द्वारा सूचना प्राप्ति को ठीक तरह नियमित और नियंत्रित करने का कार्य सभी प्रकार से शिक्षा के विभिन्न कार्यों में सहायक बनकर शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

3.14 सारांश

सूचना से सामान्य रूप से अभिप्राय ज्ञान तथा जानकारी से है। तकनीक की सहायता से सूचना का आदान प्रदान किया जाता है जैसे इण्टरनेट, टी0वी0, कम्प्यूटर आदि। भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। आजकल ई-कामर्स, ई-मेडीसीन, ई-एजुकेशन, ई-गवर्नंस, ई-बैंकिंग आदि इलेक्ट्रानिक माध्यमों का विकास हो रहा है प्रौद्योगिक ने पूरी धरती को गाँव बना दिया है। इसने विश्व की विभिन्न अर्थ-व्यवस्थाओं को जोड़कर वैश्विक अर्थ व्यवस्था को जन्म दिया है, शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी बहुत अधिक हो रहा है।

सूचना एवं तकनीक के उपयोग से विद्यार्थियों को सूचना के स्रोतों के उपयोग का अवसर मिलता है। सूचना एवं तकनीक का प्रयोग शिक्षकों, विद्यार्थियों, नीति निर्धारकों, प्रशासकों सभी के लिये उपयोगी है।

3.15 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. सूचना तकनीकी से क्या अभिप्राय है?
2. सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न घटक एवं माध्यम क्या हैं?
3. सूचना प्रौद्योगिकी का शिक्षा के क्षेत्र में क्या महत्व है? स्पष्ट करें।
4. सूचना प्रौद्योगिकी का विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के लिये क्या उपयोग है?

5. ज्ञान एवं सूचना में क्या अंतर है?

3.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है।
2. ई-कामर्स, ई-मेडीसिन, ई-एजुकेशन, ई-गवर्नेंस, ई-बैंकिंग, ई-शापिंग आदि इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों का विकास हो रहा है।
3. आकंड़ा भण्डार को ही सूचना का भण्डारण भी कहते हैं।
4. प्रकाशीय तंतु के कारण नेटवर्किंग सस्ती और तेज हो गयी है।
5. साफ्टवेयर और हार्डवेयर सूचना प्रौद्योगिकी के प्रमुख घटक हैं।
6. इसके अन्तर्हीन सिस्टम ऐडमिनिस्ट्रेटर तथा नेटवर्क ऐडमिनिस्ट्रेटर आते हैं।
7. पाठ्य पुस्तकें, संदर्भ ग्रन्थ, पुस्तकें, ग्रन्थ पत्रिकायें आदि मुद्रित साधन हैं।
8. रेडियो, टेलीविजन, ग्राफिक, चित्र चार्ट आदि दृश्य-श्रव्य सहायक सामग्री के अन्तर्गत आते हैं।

इकाई-4 गुणवत्ता उन्नयन

इकाई की रूपरेखा

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 गुणवत्ता की अवधारणा
- 4.4 शिक्षा में गुणवत्ता
 - 4.4.1 पश्चिमी दृष्टिकोण
 - 4.4.2 भारतीय दृष्टिकोण
- 4.5 विद्यालयी शिक्षा में गुणवत्ता
- 4.6 विद्यालयी गुणवत्ता के सूचक
- 4.7 विद्यालय में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन
- 4.8 सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन में प्रधानाचार्य की भूमिका
- 4.9 सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन का कार्यान्वयन
- 4.10 सारांश
- 4.11 अभ्यास प्रश्न
- 4.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 4.13 संदर्भ ग्रन्थ

4.1 प्रस्तावना

गुणवत्ता सुनिश्चय आज की शिक्षा का प्रमुख आवश्यक है। इस सम्बन्ध में क्रमबद्ध एवं योजनाबद्ध ढंग से प्रयास किया जाने लगा है। प्रायः शिक्षा में गुणवत्ता के लिये क्रमबद्ध एवं योजनाबद्ध ढंग से प्रयास किया जाने लगा है। वर्तमान भारतीय शिक्षा में परम्परा एवं आधुनिकता का विलक्षण मिश्रण है। शिक्षा में गुणवत्ता प्रबन्ध पर बहुत ध्यान दिया जा रहा है। गुणवत्ता के सूचक क्या है इस पर कोई मतैक्य नहीं है। किसी ने शिक्षक और किसी ने विद्यार्थी की गुणवत्ता को विद्यालयी गुणवत्ता का सूचक माना है।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी :

- गुणवत्ता के अर्थ को समग्र रूप में समझ तथा अपने शब्दों में अभिव्यक्त करने में समर्थ हो सकेंगे।
- गुणवत्ता को पश्चिमी तथा भारतीय संदर्भों में परिभाषित कर सकेंगे।

- विद्यालय में शिक्षा की गुणवत्ता को अवधारणा एवं आवश्यकता को समझ सकेंगे।
- विद्यालयी शिक्षा की गुणवत्ता के विभिन्न सूचकों एवं उनकी सार्थकता को समझ सकेंगे।
- विद्यालय में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन किस प्रकार किया जा सकता है यह समझ सकेंगे।
- गुणवत्ता लाने में प्रधानाचार्य की भूमिका पर चर्चा कर सकेंगे।
- सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन को कार्यरूप में कैसे उतारा जाये यह समझ सकेंगे।

4.3 गुणवत्ता की अवधारणा

'गुणवत्ता' शब्द का प्रयोग सदैव से ही उद्योग में प्रयुक्त होता रहा है। उत्पाद की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिये सदैव ही अनेक प्रयास किये जाते रहे हैं। शिक्षा के गुणवत्ता का विचार भी नवीन नहीं है। हाँ यह अवश्य है कि आज शिक्षा में गुणवत्ता प्रबन्धन के लिये कमबद्ध एवं योजनाबद्ध ढंग से प्रयास किया जाने लगा है। गुणवत्ता एक गतिशील विचार है जिसकी परिभाषा करना अत्यन्त कठिन कार्य है। ब्रिटिश मानक संस्थान (1991) की परिभाषा के अनुसार—

“गुणवत्ता किसी उत्पाद अथवा सेवा के वे समग्र लक्षण एवं विशेषताएँ होती हैं जो उसके बारे में वर्णित अथवा निहित गुणों को पूरा करने की क्षमता रखती हैं।”

ओकलैण्ड (1989) ने एक विस्तृत विश्लेषण के अंत में गुणवत्ता की परिभाषा देते हुए कहा है — “प्रयोजन एवं प्रकार्य के अनुरूप उपयुक्त होने की मात्रा गुणवत्ता है।” अर्थात् किसी उत्पाद एवं सेवा का एक निश्चित प्रयोजन होता है। जिस सीमा तक वह उस उत्पाद अथवा सेवा प्राप्त करने वाले को उपयुक्त प्रतीत होता है, वही उसकी गुणवत्ता है। उदाहरण स्वरूप किसी उत्पाद के लिये भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न विचार हो सकते हैं। एक फाउण्टेनपेन किसी को अत्यन्त आकर्षक लग सकता है तो किसी दूसरे को उसके बाहरी रूप से अधिक उसका टिकाऊपन भाता है। और कोई फेंक देने योग्य समझता है। इसी प्रकार सेवा क्षेत्र में भी गुणवत्ता के कई मानदण्ड हो सकते हैं जैसे — समय बद्धता, लागत, विनम्रता तथा सदृश व्यवहार, जाति, निश्चितता इत्यादि। यहाँ पर भी लोगों में मतभेद हो सकता है। कुछ को मुस्कुराते, विनयशील और सभ्य व्यवहार करने वाले सेवा प्रदाता अधिक बेहतर लग सकते हैं चाहे वे कार्य करने में सुस्त ही क्यों न हो जबकि दूसरी ओर कुछ लोगों को समय की बचत करने वाले चुस्त-दुरुस्त सेवा प्रदाता अधिक पसन्द होते हैं चाहे वे मुस्कुराहट से कोसों दूर हों। अतः उत्पाद हो अथवा सेवा क्षेत्र, गुणवत्ता का अंतिम सूचक उपभोक्ता की पसन्द ही है।

बोध प्रश्न

प्र० 1 गुणवत्ता से आप क्या समझते हैं?

.....
.....

प्र० 2 गुणवत्ता के मानदंड क्या हैं?

.....
.....

4.4 शिक्षा में गुणवत्ता

शिक्षा में गुणवत्ता से अभिप्राय प्रायः विद्यार्थियों की गुणवत्ता से होता है। क्योंकि विद्यार्थी ही शिक्षा प्रक्रिया के उत्पाद हैं। औद्योगिक उत्पाद यदि गुणवत्तापूर्ण नहीं है तो बाजार से वापस लिये जा सकते हैं अथवा उन्हें नष्ट किया जा सकता है। किन्तु शिक्षा के उत्पाद के एक बार तैयार हो जाने पर आप उसमें कुछ परिवर्तन नहीं कर सकते और न ही उन्हें नष्ट कर सकते हैं। अतः शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता का होना अत्यन्त आवश्यक है।

4.4.1 पश्चिमी दृष्टिकोण

शिक्षा लक्ष्य अभिमुख होती है। लक्ष्य वैयक्तिक तथा सामाजिक होते हैं। लक्ष्यों के अनुसार शिक्षा में गुणवत्ता को निम्न रूप से परिभाषित किया जा सकता है : -

- आवश्यकताओं की पूर्ति अथवा अधिपूर्ति
- सतत् सुधार
- प्रत्येक का कार्य
- नेतृत्व
- प्रणाली में मानव संसाधन विकास
- भय ह्रास
- प्रत्याभिज्ञान और पुरस्कार
- कार्यकारी दल का कार्य
- मापन
- व्यवस्थित समस्या समाधान

सीमौट (1992) ने उपरोक्त सिद्धान्तों की रचना करते समय उत्पाद की अपेक्षा प्रक्रियाओं पर अधिक बल दिया है। शिक्षा के कुछ मूलभूत लक्ष्यों को छोड़ दें तो प्रत्येक समाज के लक्ष्य भिन्न होते हैं। अतः प्रत्येक समाज में शिक्षा की

प्रक्रिया भी भिन्न होता है तथा विद्यार्थियों की गुणवत्ता के सूचक थी। शिक्षा में समान पाठ्यचर्या, सभी विषयों के समतुल्य स्थान, समान उपयुक्त शिक्षण विधियों, लगभग समान योग्यता वाले अध्यापक तथा लगभग एक समान सरकारी नीतियों का पालन करते हुये भी विद्यालयों में गुणवत्ता के आधार पर अन्तर पाया जाता है। और यह भी सत्य है कि एक ही विद्यालय में अपने बच्चे को प्रवेश दिलाने के लिए अभिभावक अपनी जी जान लगा देते हैं तथा दूसरी ओर कोई अन्य अभिभावक उस विद्यालय की शिक्षा व्यवस्था से निराश होकर अपने बच्चे को उस विद्यालय से निकाल लेते हैं। स्पष्ट है कि विद्यालयी परिप्रेक्ष्य तथा अभिभावकों के दृष्टिकोण से भी गुणवत्ता का अर्थ भिन्न-भिन्न होता है।

4.4.2 भारतीय दृष्टिकोण

चूंकि शिक्षा का उद्देश्य मानव निर्माण से है, शिक्षा की गुणवत्ता पर होने वाले कोई भी चर्चा मानव स्वभाव पर आधारित होगी। मानव एक बहुतल वाली समग्र आकृति है। वह एक साथ भौतिक, मानसिक, बौद्धिक एक आध्यात्मिक समतलों पर जीवन जीता है। इन समतलों को हम शरीर, मन, बुद्धि एवं चित्त/आत्मा के रूप में जानते हैं। इंद्रियाँ शरीर का भाग है किन्तु वे मन से जुड़ने पर ही क्रियाशील होती हैं। शिक्षा में गुणवत्ता की अभिव्यक्ति तभी होती है जब मन द्वारा इंद्रियों को वश में रखा जा सके, बुद्धि द्वारा सही और गलत की पहचान की जा सके और शरीर केवल स्व अर्थात् आत्मा के साक्षात्कार करके आनन्द मय हो सके।

भारत में शिक्षा को एक प्रक्रिया, शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्ध तथा मानव पर उसके प्रभाव के रूप में चित्रित किया गया है। ज्ञान अथवा विद्या को दो भागों में बांटा गया है— परा विद्या अर्थात् वह ज्ञान जो अनुभव एवं प्रत्यक्षीकरण से प्राप्त होता है तथा अपराविद्या वह है जो इंद्रियों से प्राप्त होती है। जो शिक्षा हमें विद्यालयों में प्राप्त होती है उसे अपराविद्या की श्रेणी में रखा गया है।

शिक्षा में गुणवत्ता को उसके प्रभाव के आधार पर भी वर्णित किया जा सकता है। सबसे अधिक उद्धरित एवं प्रचलित है : सा विद्या या विमुक्तये (विद्या वही है जो मुक्त करे— अज्ञान और अविद्या के बन्धनों से)। शिक्षा के प्रभावों को दर्शाने वाली एक अन्य उक्ति है : विद्या ददाति विनयं (शिक्षा विनम्रता प्रदान करती है)। इन दो प्रभावों के अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण शिक्षा का प्रभाव है कि वह व्यक्ति को पराविद्या और अपराविद्या में अन्तर करने का विवके विकसित करती है। भारतीय समाज में इस प्रकार के गुणों को सार्थक मूल्य दिया जाता है। अतः भारतीय परिप्रेक्ष्य में मानव पर छोड़े गये प्रभाव ही शिक्षा की गुणवत्ता के द्योतक हैं।

बोध प्रश्न

प्र0 3 शिक्षा के गुणवत्ता के द्योतक क्या है

.....
.....

प्र0 4 भारत में शिक्षा को किस रूप में चित्रित किया गया है।

.....
.....

4.5 विद्यालयी शिक्षा में गुणवत्ता

वर्तमान भारतीय शिक्षा परम्परा एवं आधुनिकता का एक विलक्षण मिश्रण है। वैश्वीकरण के फलस्वरूप जहाँ एक ओर ऐसे विद्यालय हैं तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं वही दूसरी ओर अत्यन्त निम्न स्तर के विद्यालय भी देखे जा सकते हैं। विद्यालयों में गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा के लिये निर्धारक भूमिका निभाते हैं— विद्यालयी सुविधायें, शिक्षक, प्रधानाचार्य, सहपाठी, पठन—पाठन सामग्री, शिक्षण विधियों, आकलन एवं मूल्यांकन प्रणाली, प्रौद्योगिकी तथा आस—पास की अर्थव्यवस्था इत्यादि। निजी विद्यालयों में अपने बच्चों की शिक्षा पर व्यय करने वाले अभिभावक अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होते जा रहे हैं। शिक्षा पर होने वाले व्यय के एक निवेश के रूप में देखा जा रहा है। यही कारण है कि आज विद्यालयों में गुणवत्ता नियंत्रण (quality control) तथा सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन (total quality management) पर बहुत ध्यान दिया जा रहा है। आज विद्यालयों में निजी परीक्षणों एवं साक्षात्कार के आधार पर योग्यता परखी जाती है तब विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाता है। इन विद्यालयों में एक सुविभाजित वार्षिक समय—सारणी होती है। विद्यार्थी गुणवत्तापरक शैक्षिक गतिविधियों में व्यस्त रखे जाते हैं। समय—समय पर पर्यवेक्षक होता है। अभिभावक भी समय—समय पर क्रिया कलापों की मॉनीटरिंग करते हैं। दूसरे शब्दों में ये सुप्रबंधित विद्यालय हैं। जो न केवल गुणवत्ता को पूरे समग्र रूप में देखने का प्रयास करते हैं अपितु गुणवत्ता प्रबंधन की कार्यप्रणाली भी विकसित करने का प्रयास कर रहे हैं।

4.6 विद्यालयी गुणवत्ता के सूचक :

गुणवत्ता के सूचक क्या हैं इस पर कोई मतैम्य नहीं है। किसी ने खुली मानविकता, जिम्मेदारियों का बोध, आलोचनात्मक ढंग से सोचने की क्षमता, बहुभाषाई निपुणता तथा बहु सांस्कृतिक वातावरण को गुणवत्ता का सूचक माना है तो वहीं दूसरी ओर किसी ने शिक्षक की गुणवत्ता को ही विद्यालयी गुणवत्ता का सूचक माना है।

डेविस और एलिसन ने विद्यालयी गुणवत्ता जानने के लिये तीन उत्तरदाताओं

— विद्यार्थी, शिक्षक तथा अभिभावक से बातचीत की। गुणवत्ता के सूचकों की पहचान के प्रमुख मुद्दे इस प्रकार थे :

विद्यार्थी :

- शिक्षण और अधिगम की गुणवत्ता
- स्टाफ में संतुष्टि
- संप्रेषण
- विद्यार्थियों के व्यवहार के मानदंड
- विद्यालयी सुविधाओं की गुणवत्ता
- विद्यालय के सामान्य घटकों तथा संपूर्ण पक्षों से संतुष्टि
- विद्यार्थियों के लिये समान अवसरों का विस्तार

अभिभावक :

- शिक्षण और अधिगम की गुणवत्ता
- स्टाफ से संतुष्टि
- संप्रेषण
- विद्यार्थियों के व्यवहार के मानदंड
- विद्यालयी सुविधाओं की गुणवत्ता
- विद्यालय के सामान्य घटकों तथा संपूर्ण पक्षों से संतुष्टि
- विद्यालय के नियामकों (गवर्नेस) की भूमिका

शिक्षक :

- विद्यालय में संप्रेषण
- अध्यापकों के लिए कार्यकारी वातावरण की गुणवत्ता
- विद्यालय में व्यावसायिक वातावरण
- विद्यालय द्वारा दी जा रही शिक्षा की गुणवत्ता
- शिक्षकों को प्रदान किया जाने वाला व्यावसायिक समर्थन
- शासी निकाय की भूमिका
- विद्यालय से सामान्य संतुष्टि

बॉयर (1996) के अनुसार विद्यालयी गुणवत्ता के लिए पांच प्राथमिकताएं हैं, जो इस प्रकार हैं :

- उस संस्था के भीतर समुदाय बोध का निर्माण
- भाषाई केंद्रिकता – प्रतीकों का अध्ययन एवं उपयोग

- पाठ्यचर्या का सामंजस्य
- सृजनात्मक अधिगम के लिए वातावरण का निर्माण— सक्रिय अधिगम के लिए एक स्थान, न कि अकर्मणीय अधिगम, एक स्थान जहाँ लोग सर्जक बनने के लिए सीखें, सिर्फ अनुकरण के लिए नहीं, जहाँ वे सहयोग करना सीखें, साथ ही साथ प्रतिस्पर्धा भी हो।
- ऐसे वातावरण का निर्माण जो हर विद्यार्थी के चारित्रिक निर्माण की पुष्टि करे।

विद्यालयों में गुणवत्ता प्रबंधन पर आयोजित कार्यशालाओं में से एक में भाग ले रहे वरिष्ठ शैक्षिक प्रशासकों ने निम्नलिखित गुणवत्ता के सूचकों को उद्धृत किया है।

- विद्यार्थियों एवं शिक्षकों द्वारा अनुशासन एवं समय की पाबंदी
- विद्यालय प्रांगण की स्वच्छता एवं रखरखाव
- शैक्षणिक उपलब्धियों में उत्कृष्टता
- गैर शैक्षणिक उपलब्धियों में उत्कृष्टता
- संस्था का वातावरण एवं ग्राहकों की संतुष्टि।

उपरोक्त पॉयंट्स सूचक उत्पाद पर जोर देते हैं। शैक्षणिक एवं गैर शैक्षणिक उपलब्धियों में उत्कृष्टता गुणवत्ता का पूर्व एवं प्रत्यक्ष सूचक है। जबकि अनुशासन, समयबद्धता, स्वच्छता एवं कार्य संतुष्टि गुणवत्ता के अभूर्त अप्रत्यक्ष सूचक हैं।

इसी तरह कक्षा की गुणवत्ता एवं कक्षा के बाहर अनुदेश, विद्यार्थियों का मूल्यांकन तथा आकलन, सह-पाठ्यक्रम गतिविधियां, कार्यालयी प्रबंधन तथा बाह्य एजेंसियों के साथ संपर्क गुणवत्ता के कुद सूचक हैं या यूं कहें कि विद्यालय की प्रक्रिया है। बाह्य परीक्षाओं में प्रदर्शन, क्षेत्रीय, जिला, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर के खेलकूद एवं दूसरी इसी तरह की सह-पाठ्यक्रम गतिविधियों, नौकरी में शिक्षकों की आचार-संहिता एवं संतुष्टि आदि गुणवत्ता के सूचक हैं या यूं कहें कि विद्यालय के उत्पाद हैं।

4.7 विद्यालय में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन

विद्यालय एक सामाजिक संस्था है। किसी भी संस्था में गुणवत्ता प्रबन्धन से पूर्व उसका संगठनात्मक आकलन करना अत्यन्त आवश्यक है। संगठनात्मक आकलन के लिए प्रमुख गुणात्मक विधि है। एस.डब्लू.ओ.टी. (S.W.O.T.) बुनियादी तौर पर संगठनात्मक उपचार के लिए प्रतिभागितापरक प्रणाली है जिसमें किसी संगठन के सदस्य अपनी ताकत, कमजोरी, अवसरों तथा खतरों की पहचान की

अपेक्षा सामूहिक रूप से निर्णय करते हैं। एस.डब्लू.ओ.टी. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देने की क्षमता प्रदान करता है।

- वे क्या ताकते हैं जिनपर भरोसा किया जा सकता है तथा जिन्हें और बढ़ाया जा सकता है?
- वे कौन सी कमजोरियां हैं जिन पर तत्काल ध्यान देने की जरूरत है और जिन्हें सुधारा जा सकता है।
- संस्था के सामने कौन से अवसर हैं जिनका उपयोग शक्ति-संवर्धन में किया जा सके?
- वे कौन से खतरे हैं जिनपर तत्काल ध्यान देने की जरूरत है जिससे वे विकास के लिए खतरे न बनें।

संस्था का आकलन हमें उसके अनेक अज्ञात और अस्पष्ट पक्षों से परिचित कराता है तथा हम उसका प्रबन्ध भली प्रकार करने में सक्षम हो सकते हैं। सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन के तीन आधारभूत सिद्धान्त हैं:-

1. गुणवत्ता एक सतत प्रक्रिया है
2. ग्राहक (विद्यार्थी, अभिभावक) अभिमुख एवं केन्द्रित है।
3. सभी की भागीदारी

सभी गुणवत्ता प्रबन्धन के इन तीनों सिद्धान्तों को पूर्ण रूप से लागू करने के लिये संस्था के अध्यक्ष अथवा नेता में निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहिये :

विद्यार्थी को केन्द्र बिन्दु बनाना:

- विद्यार्थियों के प्रति अपने उत्तरदायित्व निभाने में सजग रहता है
- विद्यार्थियों की विभिन्न श्रेणियों की पहचान करता है
- विद्यार्थियों की अपेक्षाओं के प्रति संवेदनशील रहता है
- विद्यार्थियों की अपेक्षाओं का पता लगाने और उन्हें पूरा करने के सतत प्रयास करता है।

सभी की सहभागिता सुनिश्चित करना:

- सहकर्मियों को गुणवत्ता हेतु प्रयास करने के लिए प्रेरित करता है
- भावी सोच और गुणवत्ता प्रबन्धन का विकास करने में सभी का सहयोग लेता है
- नवाचार लाने और जोखिम उठाने के लिए सहकर्मियों को अधिकार सौंपता है
- समानता की भावना को बढ़ावा देता है
- बाधाओं और अड़चनों को दूर करता है।

सतत् सुधार के प्रयास करना :

- व्यक्तिगत रूप से नवाचार को अपनाता है
- गुणवत्ता प्राप्त करने की दिशा में इस प्रयोजन की दृढ़ता से अवगत कराता है।
- जैसा कहता है वैसा करके दिखाता है
- दीर्घावधिक कार्यनीतियों की योजना बनाता है
- प्रणालियों की समीक्षा करता है तथा उनको फिर से व्यवस्थित करता है।

4.8 सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन में प्रधानाचार्य की भूमिका

प्रधानाचार्य के समक्ष एक चुनौती होती है कि वह अपनी संस्था की ऐसी नीजियां, कार्यनीतियाँ एवं योजनायें बनाये जो उसे निरन्तर गुणवत्ता की ओर ले जाये। उसे संस्था के सभी लोगों को गुणवत्ता के वातावरण में सम्मिलित करना पड़ता है साथ ही साथ स्वयं भी गुणवत्ता को अपनाता पड़ता है ताकि वह उनका नेतृत्व कर सके। अपनी उस भूमिका को भलीभांति निर्वहन करने के लिये आवश्यक है कि :-

- उसके पास अपनी संस्था के लिए सम्पूर्ण गुणवत्ता की सोच होनी चाहिए;
- उनमें गुणवत्ता सुधार प्रक्रिया के प्रति पूरी प्रतिबद्धता होनी चाहिए;
- उन्हें गुणवत्ता संदेश का प्रचार-प्रसार करते रहना चाहिए;
- वे यह सुनिश्चित करें कि संस्थान की नीतियों और कार्यव्यवहारों में ग्राहक की आवश्यकताओं को सर्वोच्च महत्व दिया जाए;
- उन्हें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि ग्राहकों की बात सुनने के लिए समुचित माध्यम है,
- वे स्टाफ के विकास को बढ़ावा दें;
- वे इस बात के प्रति सावधान रहें कि समस्या आ खड़ी हो तो बिना किसी प्रमाण के दूसरे लोगों को दोष न दें। अधिकतर समस्याएँ संस्था की नीतियों के कारण ही आती हैं, स्टाफ के असफल रहने के कारण नहीं;
- अपने संस्थानों में नवीनता को बढ़ावा दें।
- उन्हें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि संगठन का ढांचा ऐसा हो कि सभी के उत्तरदायित्व स्पष्ट रूप से व्यक्त हों और उन उत्तरदायित्वों के अनुरूप ही अधिकतम अधिकार सौंपे जाएं।

- उन्हें काल्पनिक बाधाओं और अड़चनों को चाहे वे संगठन संबंधी हों अथवा संस्कृति संबंधी, दूर करने के प्रति प्रतिबद्ध रहना चाहिए;
- उन्हें प्रभावकारी टीमों बनानी चाहिए;
- उन्हें सफलता का मॉनीटरिंग तथा मूल्यांकन करने के लिए समुचित व्यवस्था-तंत्र बनाना चाहिए।

बोध प्रश्न

प्र० 7 विद्यालय में गुणवत्ता प्रबन्धन की प्रमुख जिम्मेदारी किसकी होती है।

.....

प्र० 8 गुणवत्ता प्रबन्धन में प्रायः समस्याएँ किस प्रकार की होती हैं।

.....

4.9 सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन का कार्यान्वयन

अधिकांश शिक्षा संस्थायें प्रायः विकास की किसी योजना के बगैर बस यूँही चलती रहती हैं। अगर उनमें विकास के प्रयास किये भी जाते हैं तो बस आधे-अधूरे। सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन के लिये आवश्यक है कि एक योजना बनाकर उसे कार्यरूप दिया जाये।

विद्यालय में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन का कार्यान्वयन करने के लिए अंतिम योजना अथवा कार्यनीति बनाने के अनेक वैकल्पिक तरीके हैं। क्रॉफोर्ड (1990) ने सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन के कार्यान्वयन के आठ चरण बताए हैं, जो इस प्रकार हैं :

- भावी दृष्टि— संस्था कैसी हो—उसकी महत्ता किस बात में होगी?;
- ध्येय का निश्चय— भावी दृष्टि के अनुरूप;
- उद्देश्यों का निर्धारण—विशिष्ट, व्यावहारिक, नियमित लक्ष्यों में परिवर्तन;
- छोटे-छोटे रूपों में विभक्त ग्राहकों की आवश्यकताएं;
- ग्राहकों की आवश्यकताओं को पूरा करने की विस्तृत प्रक्रिया;
- सामग्रियों, सुविधाओं और पूरा किए जाने वाले मानदण्डों का उल्लेख;
- मानवीय, भौतिक और वित्तीय संसाधनों को एकजुट करने की योजना;
- अपने—आप में पूर्ण गुणवत्ता आश्वासन तंत्र।

क्रॉफोर्ड ने सतर्क किया है कि सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन संस्कृति के विकास का प्रतिरोध अवश्य होगा; साथ ही, सांस्कृतिक परिवर्तन मात्र ही पर्याप्त नहीं

होता-संपूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन की मान्यताएं विकसित करने के लिए स्टाफ का विकास करने के लिए समुचित प्रयास और निवेश करने होंगे।

फ्रेजियर (1997) ने छः चरण वाली कार्यनीति बनाने का सुझाव दिया — तैयारी करो, आकलन करो, योजना बनाओ, तैनाती करो, जारी रखो और बाधाओं को हटा दो। नवरत्नम (1997) ने छह चरण वाली योजना बनाई। ये चरण इस प्रकार हैं :

1. जागरूकता और स्व-आकलन;
2. प्रशिक्षण और टीम बनाना;
3. गुणवत्ता की योजना;
4. कार्यान्वयन प्रक्रिया;
5. व्यापक मूल्यांकन
6. स्तत सुधार।

4.10 सारांश

गुणवत्ता सुनिश्चयन आज की शिक्षा की प्रमुख आवश्यकता है। गुणवत्ता शब्द का प्रयोग सदैव से ही उद्योग में प्रयुक्त होता रहा है। गुणवत्ता एक गतिशील विचार है शिक्षा लक्ष्य अभिमुख होती है। वर्तमान भारतीय शिक्षा परम्परा एवं आधुनिक का एक विलक्षण मिश्रण है आज विद्यालयों में गुणवत्ता नियंत्रण तथा गुणवत्ता प्रबन्धन पर बहुत ध्यान दिया जा रहा है। विद्यालय एक सामाजिक संस्था है। प्रधानाचार्य के समक्ष एक चुनौती होती है कि वह अपनी संस्था की ऐसी नीतियां, कार्य नीतियां एवं योजनायें बनाये जो उसे निरन्तर गुणवत्ता की ओर ले जाये। परियोजना बनाना और परियोजना का कार्यान्वयन करना संस्थान के परिपूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन का पहला चरण है। विद्यालय अथवा किसी भी शैक्षिक संस्थान की संस्कृति में बदलाव आ जायेगा यदि लगातार मूल्यांकन, गुणवत्ता तथा पुनः योजना का कार्य सतत चलता रहे।

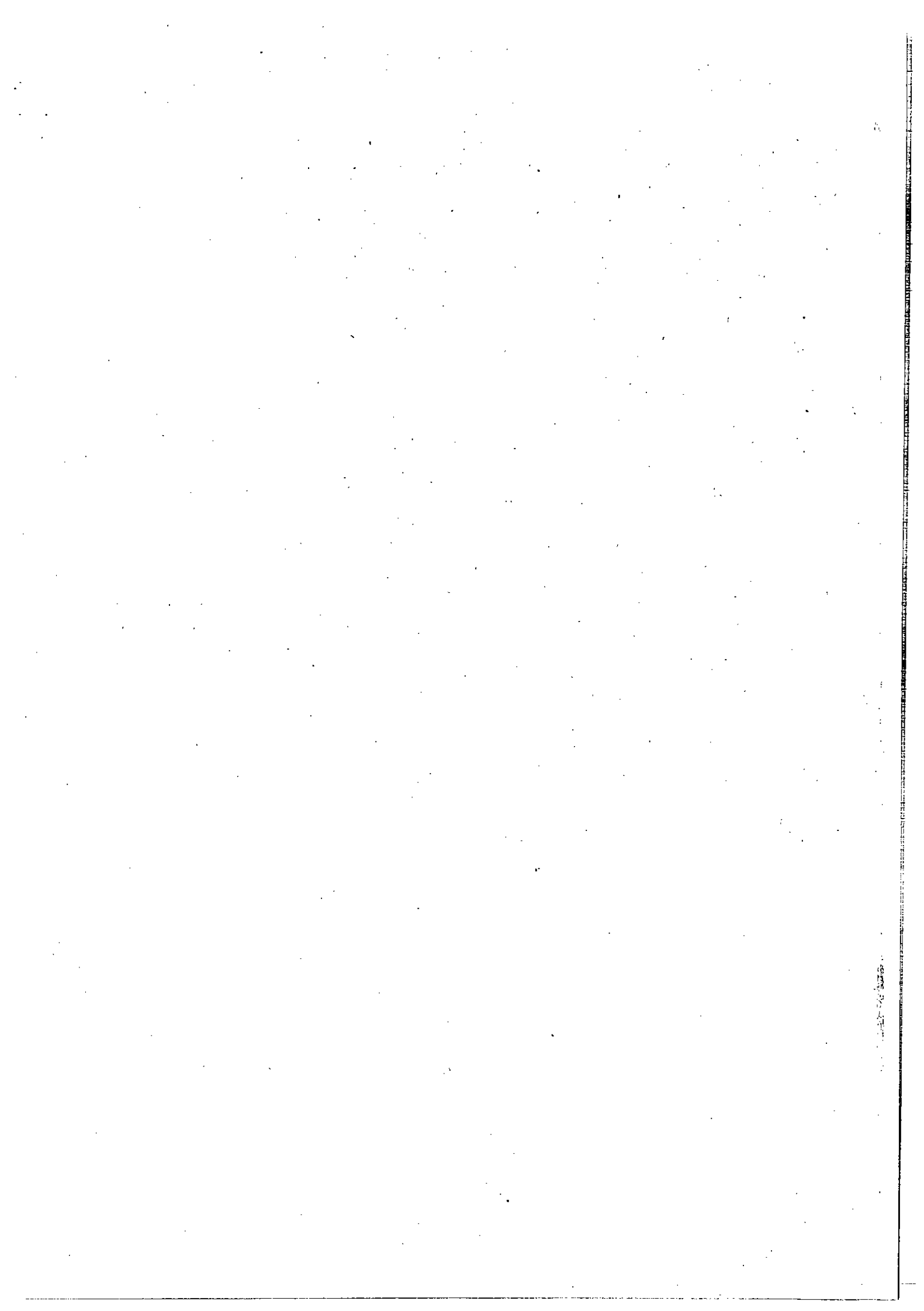
सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन को कार्यान्वयन करने और परिणाम प्राप्त करने में समय लगता है। परियोजना बनाना और परियोजना का कार्यान्वयन करना संस्थान के सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन का पहला चरण है। लगातार मूल्यांकन, अनुसुवण तथा पुनः योजना बनाते हुये इसी रुझान को बनाये रखा जाये तो विद्यालय अथवा किसी भी शैक्षिक संस्थान की संस्कृति में बदलाव आ जायेगा। यदि यह बदलाव मानवोन्मुखी है तो सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन का लक्ष्य आपने पा लिया है।

4.11 अभ्यास हेतु प्रश्न :

1. गुणवत्ता शब्द से आपका क्या अभिप्राय है?
2. शिक्षा की गुणवत्ता की अवधारणा क्या है?
3. शिक्षा की गुणवत्ता का भारतीय दृष्टिकोण क्या है? यह पश्चिमी दृष्टिकोण से किस प्रकार भिन्न है?
4. विद्यालयी शिक्षा की गुणवत्ता के विभिन्न सूचक क्या हैं?
5. विद्यालयी शिक्षा की गुणवत्ता बनाये रखने में संस्था का नेता क्या भूमिका निभा सकता है?

4.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. मुखोपाध्याय, मर्मट (2002)– शिक्षा में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली।
2. संजय मिश्र (2006) – क्वालिटी एश्योरेंस इन हायर एजुकेशन: एन इंट्रोडक्शन, नेशनल, एसेसमेंट एण्ड एकेडिटेशन काउंसिल, बेंगलौर।



MAED-09 शिक्षा में समसामयिक मुद्दे

खण्ड-1 विचारणीय मुद्दे

- इकाई-1 प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण
- इकाई-2 पाठ्यक्रम विकास
- इकाई-3 सूचना एवं संचार तकनीकी का उपयोग
- इकाई-4 गुणवत्ता उन्नयन

खण्ड-2 शैक्षिक प्रवृत्तियाँ

- इकाई-5 गैर सरकारी संगठनों की भूमिका
- इकाई-6 मानवाधिकार
- इकाई-7 वैश्वीकरण
- इकाई-8 निजीकरण

खण्ड-3 सामयिक शैक्षिक प्रत्यय - I

- इकाई-9 व्यवसायिक शिक्षा
- इकाई-10 अध्यापक शिक्षा
- इकाई-11 विशिष्ट शिक्षा
- इकाई-12 मूल्य शिक्षा

खण्ड-4 सामयिक शैक्षिक प्रत्यय - II

- इकाई-13 स्वास्थ्य शिक्षा
- इकाई-14 जनसंख्या शिक्षा
- इकाई-15 पर्यावरण शिक्षा
- इकाई-16 शांति शिक्षा

खण्ड परिचय-2 : शैक्षिक प्रवृत्तियाँ

प्रस्तुत खण्ड में शैक्षिक प्रवृत्तियों पर चर्चा की गई है। इकाई-5 में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका को और सुदृढ़ करने हेतु सुझाव दिये गये हैं। वास्तव में गैर सरकारी संगठन विशेष रूप से समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयास करते हैं। गैर सरकारी संगठनों का मुख्य सम्बन्ध सामाजिक न्याय विकास और मानवाधिकारों से है। ये संगठन अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिये अनुदानों पर निर्भर रहते हैं।

इकाई-6 मानवाधिकारों से सम्बन्धित है। भारत में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन 1993 में हुआ। भारतीय संविधान में मानव अधिकारों को मौलिक अधिकारों के रूप में अपनाया गया है। राज्यों में भी राज्य मानवाधिकार आयोग स्थापित किये गये हैं।

इकाई -7 में वैश्वीकरण पर चर्चा की गई है। शिक्षा न केवल परिवर्तन को प्रभावित करती है बल्कि परिवर्तन से भी प्रभावित होती है। वैश्वीकरण प्रतिस्पर्धाएं, शिक्षा का मेंहगा होना, तकनीकी साधनों का अधिकतम प्रयोग जैसी चुनौतियाँ शिक्षा के समक्ष उपस्थित हो रही हैं।

इकाई -8 के निजीकरण से सम्बन्धित है। जो क्रियायें पूर्व में राज्य सरकार द्वारा संचालित की जाती थीं उनको किसी निजी कम्पनी अथवा संस्था को सौंप दिया जाता तो इस हस्तान्तरण को निजीकरण कहते हैं। शिक्षा के निजीकरण के फलस्वरूप शिक्षा का प्रसार हो रहा है एवं देश का धन सकारात्मक कार्यों में लग रहा है।

इकाई-5 गैर सरकारी संगठन की भूमिका

इकाई की रूपरेखा

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 गैर सरकारी संगठन का अर्थ
- 5.4 परिभाषायें
- 5.5 गैर सरकारी संगठन एवं शिक्षा
- 5.6 कुछ महत्वपूर्ण गैर-सरकारी संगठन
 - 5.6.1 आकांक्षा
 - 5.6.2 वन श्री ट्रस्ट
 - 5.6.3 पोथमकंदम विद्यालय
 - 5.6.4 अजीम प्रेम जी फाउन्डेशन
 - 5.6.5 प्रथम्
- 5.7 गैर सरकारी संगठनों को प्रभावशाली बनाने हेतु सुझाव
- 5.8 सारांश
- 5.9 अभ्यास प्रश्न
- 5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.1 प्रस्तावना

किसी भी प्रजातांत्रिक समाज ने मुख्यतः 3 घटक होते हैं।

1. सरकार (government)
2. व्यवसायिक सेक्टर (business sector)
3. नागरिक समाज (civil society)

ये तीनों एक दूसरे से सम्बन्धित रहते हैं। सरकार मुख्य रूप से शक्ति का केन्द्र होती है। उसके पास नियंत्रण और शासन करने की शक्ति होती है। इसी प्रकार व्यवसायिक सेक्टर लाभ केन्द्रित होते हैं। वे किसी भी कीमत पर पर्यावरण, स्वास्थ्य या जन कल्याण के बजाए केवल स्वयं लाभ उठाने की कोशिश करते हैं। नागरिक समाज को इस दशा में सरकार और व्यवसायिक सेक्टर दोनों को ही नियंत्रित करना पड़ता है और इस प्रकार जनता का पक्ष लेते हुए उनके अधिकारों और हितों की रक्षा करती है।

प्रजातांत्रिक शासन की स्थापना में लोगों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करते हुए उन्हें संगठन बनाने और विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता थी। इस तरह से लोगों ने विभिन्न उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए जैसे कि स्त्री अधिकारों की रक्षा के लिए, पर्यावरण संरक्षण, स्वास्थ्य सेवाओं के लिए जन संगठनों का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया। शिक्षा के क्षेत्र में भी इन संगठनों ने

कार्य किया और अशिक्षा को कम करने का प्रयास किया। इन संगठनों को ही हम स्वयं सेवी संगठन/गैर-सरकारी संगठन कह सकते हैं। ये संगठन समाज का ही हिस्सा होते हैं, जो समाज की उस आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयास करते हैं जिनकी तरफ सरकार का ध्यान नहीं जाता है या कम जाता है या संसाधनों की कमी के कारण ध्यान नहीं दिया जाता या अन्य कार्यों को प्राथमिकता प्रदान करने के कारण वह कार्य उपेक्षित रह जाता है।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी -

1. गैर सरकारी संगठनों से क्या अभिप्राय है, यह समझ पायेंगे।
2. शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका को समझ पायेंगे।
3. कुछ प्रमुख गैर-सरकारी संगठनों के विषय में जान पायेंगे जिन्होंने शिक्षाके क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है।
4. गैर-सरकारी संगठनों को अधिक उपयोगी बनाने हेतु कुछ उपाय सुझा पायेंगे।

5.3 गैर-सरकारी संगठन का अर्थ

गैर-सरकारी संगठन से तात्पर्य लोगों के ऐसे समूह से है जिनका मुख्य उद्देश्य अपने समाज या समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करना है। ये संगठन सरकार द्वारा तो बनाए जाते हैं न ही नियंत्रित किए जाते हैं। ये संगठन अपने समुदाय की ऐसी जरूरतों को पूरा करते हैं जिसकी ओर सरकार ध्यान नहीं देती या फिर संसाधनों की अनुपलब्धता या अन्य प्राथमिकताओं के कारण इन समस्याओं की ओर ध्यान नहीं दे पाते हैं।

इस प्रकार गैर-सरकारी संगठनों/स्वयंसेवी संगठनों का संबंध मुख्य रूप से सामाजिक न्याय, विकास और मानवाधिकारों से है। यह अपने स्थानीय समुदायों को सीधे सेवा उपलब्ध कराते हैं। स्वयंसेवी संगठनों की मुख्य विशेषता यह है कि ये अपने लक्ष्यों को पूरा करने के लिए जरूरी साधनों के लिए अनुदान (Donation) पर निर्भर करते हैं। उन्हें ये अनुदान समुदाय से व्यापारिक प्रतिष्ठानों से या फिर देशी/विदेशी सरकार या अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से मिलती है।

प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, सूखा, भूकम्प, भूस्खलन के बाद इन लोगों के पुनर्वास और राहत कार्यों में इन स्वयंसेवी संगठनों के कार्य सराहनीय है। स्थानीय संगठन Grassroot Level तक पहुँचते हैं और आपदा पीड़ित लोगों के लिए राहत कार्य करते हैं। ये संगठन पीड़ितों के लिए फंड इकट्ठा करते हैं उन्हें भोजन, कपड़ा और स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करते हैं। ये संगठन

समुदाय के पुनर्वास कार्यों में भी मदद करते हैं। इसके लिए उन्हें सरकार या व्यक्तिगत प्रतिष्ठानों से भी सहायता मिलती है। इन प्रकार से ये स्वयं सेवी संगठन राहत कार्यों विशेष रूप से शिक्षा, स्वास्थ्य, सामुदायिक विकास और पर्यावरण के क्षेत्र में सेवाएँ उपलब्ध कराते हैं।

बोध प्रश्न

प्र0 1 गैर सरकारी संगठनों का मुख्य सम्बन्ध किससे होता है।

.....
.....

प्र0 2 गैर सरकारी संगठनों को अनुदान प्रायः कौन देता है।

.....
.....

5.4 परिभाषाएँ

गैर-सरकारी संगठन व्यक्तियों का ऐसा संगठन होता है जो कि कतिपय सामाजिक सिद्धान्तों में विश्वास करता है एवं इस प्रकार कार्य करता है कि वह जिस समुदाय की सेवा कर रहा है उसका विकास कर सके।

- गैर-सरकारी संगठन ऐसे सामाजिक विकास संगठन हैं जो व्यक्ति के सशक्तीकरण में सहायता करते हैं।
- ये ऐसे संगठन अथवा व्यक्तियों का समूह है जो कि किसी बाह्य नियंत्रण से मुक्त रहते हुए अपने विशिष्ट उद्देश्यों व लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए कार्य करते हैं ताकि किसी समुदाय या स्थान या स्थिति में वांछित परिवर्तन लाए जा सकें।
- गैर-सरकारी संगठन ऐसे संगठन हैं जो राजनीतिक दलों से सम्बद्ध नहीं होते एवं सामान्य तौर पर समुदाय के विकास एवं लाभप्रद कार्यों में संलग्न रहते हैं।
- गैर सरकारी संगठन वे संकल्पित संगठन हैं जो शहरी व ग्रामीण क्षेत्र के विशेष रूप से गरीबों, दलीतों व पिछड़ों की बुनियादी समस्याओं को दूर कर उनके जीवन स्तर को सुधारने के लिए प्रयासरत हैं।
- समुदाय के द्वारा समुदाय के लिए स्थापित ऐसे संगठन जो कि बिना अथवा अत्यल्प सरकारी हस्तक्षेप के सिर्फ दानदाता के अतिरिक्त सामाजिक-आर्थिक सांस्कृतिक गतिविधियों करती हैं गैर सरकारी संगठन कहलाते हैं।
- ऐसा संगठन जो कि लचीला व प्रजातांत्रिक संगठन है और जो बिना स्वयं के लाभ के लोगों की सेवा में रत रहता हो।

यदि हम इतिहास में झॉकने का प्रयास करें तो पाएँगे कि समय-समय पर इन गैर-सरकारी संगठनों ने मानवता की सेवा के लिए कई सारे महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। प्राकृतिक आपदाओं जैसे भूकम्प, सूखा, तूफान इत्यादि एवं अन्य मानवीय सेवा कृत्यों जैसे- जन शिक्षा, जन-स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण, जनसंख्या नियंत्रण इत्यादि में इन संगठनों ने कारगर भूमिका निभायी है।

5.5 गैर सरकारी संगठन एवं शिक्षा

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा के महत्व को स्वीकारते हुए संविधान में अनुच्छेद 45 का प्रावधान किया गया जिसमें 1960 तक 6-14 वर्ष के सभी बच्चों को अगले 10 वर्षों में प्राथमिक शिक्षा से आच्छादित करने का लक्ष्य रखा गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश के सामने अनेक समस्याएँ थी, जिसमें शिक्षा का गिरा हुआ स्तर एक प्रमुख समस्या थी। अन्य समस्याएँ जैसे - गरीबी, स्त्रियों की निम्न स्थिति, बढ़ती हुई जनसंख्या इत्यादि इसी समस्या से जुड़ी हुई समस्या थी। सरकार ने इन समस्याओं को हल करने के लिए अनेक नयी योजनाएँ बनाई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अशिक्षा को दूर करना भारत सरकार के सामने सबसे बड़ा राष्ट्रीय मुद्दा था। शिक्षा के स्तर को उठाना और शिक्षा दर में सुधार करने के लिए सरकार ने कई योजनाएँ बनाई और कमीशन बिठाई जिन्होंने तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त कमियों पर प्रकाश डाला और इन कमियों को दूर करने के लिए सुझाव दिए। इन सुझावों को कार्यान्वित किया गया और अनेक नई योजनाएँ बनाई गईं। इन सब प्रयासों के परिणाम स्वरूप शिक्षा दर जो कि 1951 में 18.37 प्रतिशत थी, से बढ़कर 1961 में 24.02 प्रतिशत हो गई। हालांकि ये वृद्धि संतोषजनक नहीं थी। कोटारी कमीशन (1964-64) ने फिर से शिक्षा व्यवस्था का विश्लेषण किया और शिक्षा का अधिक से अधिक प्रचार व प्रसार करने पर जोर दिया। सर्वप्रथम यह सुझाव दिया कि शिक्षा प्रदान करने हेतु राज्य व जिला स्तर पर स्वयंसेवी संगठनों/ गैर सरकारी संगठनों का सक्रिय सहयोग लिया जाये।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में (1986) अशिक्षा को दूर करने के लिए प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण पर बल दिया गया। शिक्षा के सार्वभौमिकरण का अर्थ है जन-जन को शिक्षित करना। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 में प्रत्येक राज्य को उत्तरदायित्व सौंपते हुए ये उल्लेख किया गया था कि वे जन-जन को शिक्षित बनाने के लिए प्रारम्भिक शिक्षा की अनिवार्य व्यवस्था करेंगे। उक्त संवैधानिक निर्देश के अनुपालन हेतु 2 अक्टूबर 1951 से ही शिक्षा के सार्वजनिकरण की दिशा में निरन्तर प्रयास किए जा रहे हैं किन्तु आज भी हम लक्ष्य को प्राप्त कर पाने में असमर्थ रहे हैं।

यह एक तथ्य है कि देश की इतनी बड़ी जनसंख्या को केवल स्कूलों के माध्यम से शिक्षित नहीं किया जा सकता। लोगों को शिक्षित करने के लिए अनौपचारिक शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए, जैसा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में कहा गया है। अनौपचारिक शिक्षा के लिए स्वयंसेवी संगठन/ गैर-सरकारी संगठन ज्यादा सफल साबित हुए हैं। इन संगठनों ने यह दिखा दिया है कि वे शिक्षा के सार्वभौमीकरण में विशेष रूप से अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से कहीं अधिक प्रभावकारी व कारगर साबित हुए हैं।

बोध प्रश्न

प्र० 3 भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में शिक्षा का उत्तरदायित्व राज्य को सौंपा गया है।

.....

प्र० 4 किस वय वर्ग के बच्चों को शिक्षा से आच्छादित करने का लक्ष्य रखा गया है।

.....

5.6 कुछ महत्वपूर्ण गैर-सरकारी संगठन

स्वयं सेवी संगठनों/ गैर सरकारी संगठनों ने जन केन्द्रित योजनाओं जैसे- स्वास्थ्य सेवाओं, परिवार नियोजन, पर्यावरण संरक्षण और अनौपचारिक शिक्षा के विकास में सराहनीय कार्य किए हैं। प्रजातंत्र में स्वयं सेवी संगठनों को अवसर प्रदान किए जाते हैं। भारत में भी स्वयंसेवी संगठनों ने अपने सेवाकार्यों से लोगों की सेवा की है। जन शिक्षा के क्षेत्र में गैर सरकारी संगठनों का योगदान काफी सराहनीय रहा है।

5.6.1 आर्कोक्षा

आर्कोक्षा फाउन्डेशन एक ऐसा संगठन है जिसका ये दृष्टिकोण है कि वह एक दिन समस्त छात्रों को सशक्त जीवन के लिए आवश्यक शिक्षा, कौशलों व चारित्रिक गुणों से लैस कर देगा। आर्कोक्षा प्रमुख रूप से शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहा है। जहाँ यह आर्कोक्षा केन्द्रों के माध्यम से अनौपचारिक शिक्षा प्रदान कर रहा है वहीं आर्कोक्षा स्कूलों के माध्यम से औपचारिक शिक्षा।

पिछले 20 वर्षों के दौरान यह संगठन एक केन्द्र के 75 बच्चों से बढ़कर 58 केन्द्रों व 6 स्कूलों के 3500 बच्चों तक पहुँच गया है। यह संगठन प्रत्येक छात्र/ छात्रा को मजबूत शैक्षिक आधार एक अच्छा समय, स्वाभिमान और मूल्य प्रदान करने एवं उन्हें इस लायक बनाने ताकि वह अपनी जीविका स्वयं कमाकर

अपने जीवन स्तर को सुधार सके, के लिए दृढ़ संकल्पित है।

सन् 1990 में आकांक्षा एक साधारण सी सोच के सागि प्रारम्भ हुआ था। हमारे आस-पास मलिन बस्तियों के हजारों बच्चे हैं जिन्हें शिक्षित होना चाहिए। बहुत सारे कालेजों के हजारों छात्र/ छात्रा भी हैं जिनके पास ऊर्जा, उत्साह व समय है उन बच्चों को पढ़ाने के लिए यहाँ पर कई सारे स्कूलों में स्थान भी उपलब्ध है जहाँ आदर्श शैक्षिक वातावरण प्राप्त हो सके। आवश्यकता सिर्फ इस बात की है कि किस प्रकार इन तीनों (बच्चे, छात्र व स्थान) को साथ में लाया जा सके ताकि ये छात्र इन वंचित बच्चों को शिक्षित कर सके।

इस साधारण से विचार का क्रियान्वयन काफी जटिल था। 20 से भी ज्यादा स्कूलों का भ्रमण किया गया। अन्त में जाकर Fr. Ivan D' Souza जो कि होलीनेम स्कूल के प्रिंसिपल थे ने पहली बार अपने स्कूल में आकांक्षा सेन्टर चलाने की अनुमति प्रदान कर दी।

दूसरी चुनौती थी बच्चों को ढूँढना और उन्हें आने के लिए राजी करना। आकांक्षा की संस्थापक 18 वर्षीय शहीन मिस्त्री ने 15 बच्चों के साथ प्रथम आकांक्षा सेन्टर का प्रारम्भ किया।

सच्चाई यह थी कि शाहीन स्वयं नहीं जानती थी कि वह वास्तव में क्या कर रही है। वह सिर्फ इतना जानती थी कि वह बच्चों को प्यार करती है और एक परिवर्तन लाना चाहती है। उसे यह विश्वास है कि प्रत्येक बच्चे को प्रत्येक दिन एक अच्छा समय व अच्छा स्थान मिलना चाहिए जहाँ वे सिर्फ बच्चे बनकर रह सकें। इस प्रकार उसने अपना प्रथम कालेज छात्रों का ऐच्छिक समूह तैयार किया और उन्हें विश्वास दिलाया कि वे साथ मिलकर एक परिवर्तन जा सकते हैं।

आकांक्षा प्रत्येक बच्चे को निम्नलिखित सुविधायें उपलब्ध कराने के लिये कटिबद्ध है—

1. अंग्रेजी व गणित में एक मजबूत बुनियादी आधार
2. स्वाभिमान व मूल्यों का अहसास
3. एक अच्छा समय जहाँ हँसते खेलते सीखें, कक्षा में एवं बाहर भी
4. ऐसे उपाय जिससे वे भविष्य में अपनी जीविका अर्जित कर सकें।

5.6.2 वन श्री ट्रस्ट

समस्त जीवधारी इससे पूर्व में कभी न पाए गए ह्रास की ओर लगातार अग्रसारित वातावरण से गुजर रहे हैं। हम सब अपने जीवन के लिए वातावरण पर निर्भर हैं परन्तु इसके प्रति बिल्कुल भी ध्यान नहीं देते। प्रत्येक व्यक्ति प्रकृति की देखभाल करे, इस उद्देश्य के साथ वनश्री ट्रस्ट 2001 में बना।

वनश्री ट्रस्ट संवेदनशील उत्साही युवाओं का समूह है जो कि बेहतर व हरीभरी धरती के निर्माण के लिए लगन से कार्य करना चाहते हैं। हम मुख्य रूप

1 इस प्रकार की गतिविधियों में संलग्न हैं जिसके माध्यम से बच्चे व युवा वर्ग कृति का संरक्षण करना सीख सके ताकि हमारे आस-पास वातावरण को जो ख़सान पहुँचाया जा रहा है उसे कुछ कम किया जा सके।

ट्रस्ट अपने श्रंखला वह कार्यक्रमों के माध्यम से लोगों में नेतृत्व, क्षमता, सहकार व समस्त जीवों के प्रति प्रेम जैसे गुणों को भरकर अपनी धरती के ज्ज्वल भविष्य के लिए लगातार प्रयासरत हैं।

विषय की योजनाएँ:

पंशु व पक्षी संरक्षण केन्द्र जो कि 24 घंटे कार्य करे।

वृक्ष अपनाओ योजना जिसके माध्यम से देशी प्रजाति के वृक्षों का रोपण व उनकी सुरक्षा लोगों द्वारा किया जाना।

विद्यालय वन योजना : प्रत्येक विद्यालय के पास अपने परिसर में एक छोटा सा वन हो।

Green Most Capital Again : गाँधीनगर को विश्व का सर्वाधिक हरित राजधानी बनाना।

तिविधियाँ :

प्राथमिक कक्षा के विद्यालयों के लिए Eco clubs सफलता पूर्वक चलाए जा रहे हैं।

सस्ते एवं प्रभावी जल संचयन प्रोजेक्ट्स

2004-05 में सर्वश्रेष्ठ एन.जी.ओ. का पुरस्कार प्राप्त किया

यहाँ के छात्रों में Environment Quizzes व Wild life Quizzes में पुरस्कार जीते हैं।

पतंगबाजी महोत्सव के दौरान पक्षी संरक्षण कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ जो अभी भी जारी है।

3 पोथमकंदम विद्यालय

यह विद्यालय 1955 में प्रारम्भ किया गया था जिसे 1984 में उच्च प्राथमिक विद्यालय के रूप में उच्चीकृत कर दिया गया। यह विद्यालय केरल राज्य सरकार के घटनानुसार ब्लॉक पंचायत (स्थानीय स्वशासन) द्वारा संचालित होता है। यहाँ पढ़ने वाले बच्चे ज्यादातर गरीब किसानों और कुली इत्यादि का कार्य करने वाले श्रमिकों के हैं। विद्यालय का अपना 'शिक्षक' अभिभावक संघ है जिससे बच्चे के लिए अनुदान से बच्चों को दोपहर का भोजन प्रदान किया जाता है संस्था के अंदर से विभिन्न स्वयंसेवी संस्थाओं से अनुरोध किया जाता है कि वे विद्यालय किसी एक जरूरत को पूरा करने का उत्तरदायित्व ले अर्थात् पीने के पानी की व्यवस्था, फर्नीचर, नवीन शिक्षण सामग्री, कम्प्यूटर इत्यादि। विद्यालय में छात्रों को नही होती परन्तु ग्रेड प्रदान किये जाते हैं।

उद्देश्य : बच्चों को अच्छी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराना तथा उन्हें औपचारिक शिक्षा व्यवस्था से जोड़ना। इस विद्यालय में ग्रामीण क्षेत्र के बच्चों पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

5.5.4 अजीम प्रेमजी फाउन्डेशन

प्रसिद्ध उद्योगपति एवं विप्रो के अध्ययन अजीम प्रेम जी ने अपनी इस संस्था के माध्यम से बंगलुरु के 'लर्निंग गारंटी योजना' प्रारम्भ की। यह योजना 23 नवम्बर को गुलबर्गा (कर्नाटक) में प्रारम्भ की गयी थी। इस योजना में उत्तरपूर्वी कर्नाटक के 7 जिलों के लगभग 9500 विद्यालयों को चुना गया था। इसी फाउन्डेशन ने सन् 2011 में बंगलुरु ने एक निजी विश्वविद्यालय की भी स्थापना की है जो शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता लाने के लिये प्रयासरत होगा।

5.6.5 प्रथम्

प्रायः स्वयंसेवी संस्थायें किसी एक व्यक्ति या छोटे समूह के द्वारा स्थापित होती हैं। प्रथम् शायद पहली संस्था है जो मुम्बई के म्यूनिसिपल कमिश्नर, UNICEF तथा कई देशों के गणमान्य व्यक्तियों द्वारा निर्मित पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट है। इसकी स्थापना 1994 में की गयी थी। अपने प्रारम्भिक वर्षों में प्रथम् ने मुम्बई शहर की मलिन बस्तियों में पूर्व-विद्यालयी शिक्षा देनी प्रारम्भ की थी। इस कार्य हेतु उन्होंने कोई पूर्व निर्धारित स्थान नहीं चुना अपितु कहीं भी घर में, मंदिर में दफ्तरों में जो स्थान मिला वहीं पर बच्चों को एकत्रित करके शिक्षा देनी प्रारम्भ की। इस कार्य हेतु कार्यकर्ताओं को चुना एवं प्रशिक्षित किया गया। देखते ही देखते प्रथम् बालकड़ियों की संख्या बढ़ती चली गयी। बाद में पूर्व विद्यालयी शिक्षा के साथ-साथ विद्यालय व जाने वाले सभी बच्चे तथा वे बच्चे जो शैक्षिक रूप से पिछड़ रहे थे तथा ड्रापआउट हो सकते थे, उन्हें भी इस योजना में सम्मिलित किया गया। इन बच्चों के माता-पिता प्रायः अशिक्षित थे अतः उन्हें भी शिक्षित करने के लिये बालसखी कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। इन विद्यालयों का उद्देश्य बच्चों को शिक्षा की मुख्यधारा (औपचारिक शिक्षा) में शामिल करना था।

सन् 1999 और 2001 के मध्य 19 शहरों में इसी प्रतिमान पर आधारित कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये। सन् 2000 में प्रथम् को 'ग्लोबल डेवलेपमेन्ट नेटवर्क अवार्ड' से सम्मानित किया गया है जो विश्व बैंक तथा जापान सरकार द्वारा सम्मिलित रूप से दिया जाता है।

बोध प्रश्न

प्र० 5 प्रथम संस्था किस शहर में प्रारम्भ हुई ।

.....

.....

प्र० 6 किस संस्था ने बंगरूल में लर्निंग गारंटी योजना प्रारम्भ की।

5.7 गैर-सरकारी संगठनों को प्रभावशाली बनाने हेतु सुझाव

पिछले 36 वर्षों से गैर-सरकारी संगठन किसी भी देश में विकास के महत्वपूर्ण अभिकरण सिद्ध हो रहे हैं। उनके कार्य के ढंग को सरकारी कार्य से अधिक बेहतर समझा जा रहा है। किन्तु अभी भी NGO's अपनी पूरी भूमिका को ठीक प्रकार समझ नहीं सके हैं।

- गैर-सरकारी संगठनों को अधिक प्रयोगात्मक रूख अपनाने का प्रयास करना चाहिये।
- गैर-सरकारी संगठनों के प्रयास गुणवत्ता के क्षेत्र में तो हो रहे हैं किन्तु भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में इन्हें संख्यात्मक विकास पर भी जोर देना चाहिये।
- गैर-सरकारी संगठन के कार्यकर्ता प्रायः स्वयंसेवी होते हैं उनमें सेवा भाव और लगन तो होता है परन्तु तकनीकी कुशलता का अनुभव होता है। इन कार्यकर्ताओं को पर्याप्त प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है।
- प्रक्रिया को अभिलेख के रूप (Process documentation) में प्रस्तुत करने की दिशा में अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।
- क्रियात्मक शोध (Action Research) पर भी अधिक ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।
- NGO को अपने कार्य के तथा सफलताओं के विषय में समाज एवं सरकार को अवगत कराते रहना चाहिये।
- NGO's के मध्य एक नेटवर्किंग होनी चाहिये ताकि वे एक दूसरे के साथ मिलकर सहयोग से बड़े कार्य कर सकें।
- अनेक NGO's मिलकर एक संसाधन का पूल तैयार कर सकते हैं।

5.8 सारांश

अब तक आप जान चुके हैं कि गैर सरकारी संगठन विशेष रूप से समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रयास करते हैं जिनकी तरफ सरकार का ध्यान नहीं जाता अथवा संसाधनों की कमी के कारण वह क्षेत्र उपेक्षित रह जाते हैं। गैर-सरकारी संगठनों का मुख्य सम्बन्ध सामाजिक न्याय, विकास और मानवाधिकारों से है। ये संगठन अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिये अनुदानों पर निर्भर रहते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात सभी को शिक्षित करने की विकट

समस्या देश के सम्मुख थी। अशिक्षा को दूर करने में विभिन्न स्वयं सेवी संगठनों ने सराहनीय कार्य किया जिनमें से आकांक्षा, वनश्री ट्रस्ट, पोथमकंदम विद्यालय, अजीज प्रेम जी फाउन्डेशन, प्रथम आदि प्रमुख हैं।

5.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. भारत जैसे जनतांत्रिक समाज में गैर सरकारी संगठनों की क्या उपादेयता है?
2. गैर-सरकारी संगठनों से क्या अभिप्राय है?
3. गैर-सरकारी संगठन शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति में क्या भूमिका निभा सकते हैं?
4. शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहे कुछ महत्वपूर्ण NGO के विषय में बताइये।

5.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. गैर सरकारी संगठनों का सम्बन्ध मुख्य रूप से सामाजिक न्याय, विकास और मानवाधिकारों से है।
2. गैर सरकारी संगठनों को अनुदान प्रायः समुदाय से व्यापारिक प्रतिष्ठानों या देशी। विदेशी सरकार या अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से मिलती हैं।
3. अनुच्छेद 45 में।
4. 6 – 14 वय वर्ग के बच्चों को
5. मुम्बई
6. अजीम प्रेम जी फाउन्डेशन

इकाई — 6 मानवाधिकार

संरचना

- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 उद्देश्य
- 6.3 मानव अधिकार
 - 6.3.1 मानव अधिकारों का वर्गीकरण
 - 6.3.2 मानव अधिकार का अधिकार
- 6.4 मानव अधिकार और भारतीय परिदृश्य
- 6.5 भारतीय संविधान में मानव अधिकार
- 6.6 भारत में मानवाधिकारों के संरक्षण के लिये कदम
 - 6.6.1 आयोग के कार्य एवं शक्तियाँ
 - 6.6.2 राज्य मानवाधिकार आयोग
- 6.7 अधिकारों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण
- 6.8 सारांश
- 6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.1 प्रस्तावना

प्रत्येक व्यक्ति राज्य से कुछ अधिकार प्राप्त करता है। वह इन अधिकारों को मानव परिवार के एक सदस्य के रूप में प्राप्त करता है। ऐसे अधिकारों को 'मानव-अधिकारों' की संज्ञा दी जाती है। मानव अधिकार की अवधारणा अति प्राचीन है। प्राचीन काल में इनको 'प्राकृतिक अधिकार' के नाम से पुकारा जाता था। 'मानव अधिकार' अपने इस नामकरण के लिये द्वितीय महायुद्ध के पश्चात बनने वाले अन्तर्राष्ट्रीय चार्टरों तथा सम्मेलनों के ऋणी हैं। इस नाम का प्रथम प्रयोग संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा पत्र या चार्टर में किया गया। यह घोषणा पत्र 25 जून 1945 को सेन फ्रांसिसको में जारी किया गया। यह चार्टर बाध्यकारी नहीं है। इसमें आदर्श को अभिव्यक्त किया गया है। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने दिसम्बर 1948 में 'मानव अधिकारों' की सार्वजनिक घोषणा की। यह घोषणा भी बाध्यकारी नहीं थी। 1965 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने मानव अधिकारों की देखभाल के लिए दो अनुबन्ध तैयार किये। प्रथम नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारों से सम्बन्धित तथा द्वितीय आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों पर तैयार किया गया। ये दोनों अनुबन्ध 1976 में लागू किये गये। 1981 तक अधिकांश राष्ट्र राज्यों ने इन अनुबन्धों को लागू करने के लिए कदम उठाने प्रारम्भ किये।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप परिचित हो जायेंगे—

- मानव अधिकार के अर्थ, वर्गीकरण एवं भारतीय परिदृश्य से,
- भारतीय संविधान में मानव अधिकार के स्वरूप से मानवाधिकारों के संरक्षण के लिये उठाये गये कदमों से,
- मानव अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय करण से,

6.3 मानव अधिकार

मानव अधिकारों का अभिप्राय उन सभी अधिकारों से है जो कि एक मानव होने के नाते व्यक्ति को चहुँमुखी विकास के लिए मानव कल्याण निमित्त नितांत आवश्यक है। मानव अधिकारों के अभाव में व्यक्तित्व विकास कदाचित संभव नहीं है बल्कि अगर हम यह कहें कि मानव अधिकारों के अभाव में मानव, मानव नहीं रह सकता या उसके जीवन सुरक्षा की कल्पना भी नहीं की जा सकती अर्थात् इनके बगैर मनुष्य का सुरक्षित जीवित रहना नामुमकिन है। तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

मानव अधिकारों की कोई भी सीमा नहीं है अर्थात् मानव अधिकार समय, स्थिति, परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। मानव अधिकार केवल प्रकृति प्रदत्त उपहार जैसे — हवा, पानी, प्रकाश आदि ही नहीं वरन उसमें सम्मान से जीने के साधन, सुरक्षा के उपाय, घोषणा के लिए अच्छी खाद्य सामग्री, उत्तम रहन-सहन के अवसरों के साथ-साथ वे सभी साधन मानव अधिकारों में निहित हैं जो कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के लिए बहुत ही आवश्यक और मूल है जैसे — रोटी, कपड़ा, मकान शिक्षा और संस्कृति आदि के अधिकार भी इस अधिकार में सम्मिलित है। व्यक्ति की किसी भी अवस्था में हम उनके अधिकारों को दुवारा या नकार नहीं सकते हैं। क्योंकि मानव अधिकारों का सम्बन्ध व्यक्ति के जीवन के हर क्षेत्र से है।

प्रत्येक मनुष्य का स्वाभाविक अधिकार है कि उसको सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर हमेशा न्याय मिले अर्थात् उसके साथ कभी भी किसी भी स्थिति में किसी भी स्थान पर किसी भी प्रकार से हानि या अन्याय न हो।

6.3.1 मानव अधिकारों का वर्गीकरण

1. मर्यादा एवं सम्मान का अधिकार
2. भेदहीन स्वतंत्र पात्रता का अधिकार
3. जीवन स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार
4. दासता उन्मूलन का अधिकार
5. अपमानजनक व्यवहार से प्रतिरक्षा का अधिकार

6. सर्वत्र कानून में समानता का अधिकार
7. कानून के समक्ष समान रूप से रक्षा का अधिकार
8. गोपनीयता के संरक्षण का अधिकार
9. न्यायालयों के समक्ष निष्पक्ष समानता का अधिकार
10. मौलिक अधिकारों के भंग होने पर न्यायालयों द्वारा संरक्षण पाने का अधिकार
11. राज्य की सीमा के अन्दर आवागमन और निवास की स्वतंत्रता का अधिकार
12. उत्पीड़न से बचने के लिए, देश छोड़ने या दूसरे देश में शरण लेने का अधिकार
13. राष्ट्रीयताका अधिकार
14. वयस्क स्त्री और पुरुष को बिना जाति, धर्म और राष्ट्रीयता के विवाह का अधिकार
15. स्त्री पुरुष को सम्मति से विवाह करने की स्वतंत्रता का अधिकार
16. स्वयं या दूसरों के साथ सम्पत्ति रखने का अधिकार
17. मत और विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार
18. शान्तिपूर्ण एकत्रित होने का अधिकार
19. सामाजिक सुरक्षा का अधिकार
20. समान काम के लिए समान वेतन का अधिकार
21. प्रत्येक व्यक्ति को उचित और अनुकूल पारिश्रमिक पाने का अधिकार
22. स्वस्थ एवं सुरक्षित रहने के लिए चिकित्सा का अधिकार
23. शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार
24. सांस्कृतिक जीवन की स्वतंत्रता का अधिकार
25. समाज के प्रति कर्तव्य पालन का अधिकार

6.3.2 मानव-अधिकार का अधिकार

मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो हमारी प्रकृति या स्वभाव में निहित हैं। इनके अभाव में अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकते हैं। मानव अधिकार और मौलिक स्वतंत्रताएं हमको पूर्णरूप से विकसित होने के लिए अवसर प्रदान करती हैं। साथ ही इनके द्वारा मानवीय गुणों, प्रतिमानों तथा चेतना का सदुपयोग किया जाता है। यह अधिकार मानवता पर आधारित है। जे.ई.एस.फॉसेट के अनुसार – “मानव अधिकार कभी कभी मौलिक अधिकार या मूल अधिकार हैं जिनको किसी व्यवस्थापिका द्वारा छीना नहीं जा सकता है। प्राकृतिक अधिकार मनुष्य तथा नारी दोनों से सम्बन्धित है। साथ ही वे उने स्वभाव के अनुकूल होते हैं।” मानव

अधिकारी की विधायन द्वारा सर्जना नहीं की जाती है वरन इनकी स्थिति स्वाभाविक होती है।

6.4 मानव अधिकार और भारतीय परिदृश्य

भारत में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन 1993 में हुआ था तथा मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम भी 1993 में पारित हुआ था। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि 1993 से पहले भारत में मानवाधिकार नाम की कोई चीज ही नहीं थी। और भारत सरकार का मानव अधिकारों की तरफ बिल्कुल भी ध्यान नहीं था। यह नहीं है अपितु यदि हम भारत के प्राचीन इतिहास पर दृष्टि डालें तो हमें ज्ञात होता है कि भारत में मानवाधिकार आरम्भ से ही रहे हैं।

प्राचीन भारत में धर्म के रूप में मानवाधिकारों की संकल्पना की गई थी अर्थात् प्राचीन हिन्दू सभ्यता में मानव अधिकार सम्बन्धित आधुनिक संकल्पना की जड़ें मौजूद थी। हमारे वेद, वेदान्त, उपनिषद, गीता आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थ भी मानव अधिकार की शिक्षा देते हैं। उदाहरणार्थ शुक्र नीति के इस श्लोक को देखें तो पता चलता है कि उस समय भी मानव अधिकार व्यापक रूप में भारत में मौजूद थे।

“अघनादाननुज्ञांतात्र गृहीयातु स्वामिताम्।

स्वशिशु शिक्षयेदन्य शिशु नाप्यंपराधिनम् ॥”

किसी गरीब व्यक्ति की अधिकारिक सम्पत्ति पर प्रभुत्व बिना उसकी अनुमति के नहीं करना चाहिए, अपने बच्चों पर शासन अवश्य करें किन्तु दूसरे के बच्चों को अपराध करने पर भी दण्ड नहीं देना चाहिए।

“अपशब्दाश्च नो वाच्या मिता भावाच्य केष्वपि ।

गोप्यं न गोपयेन्मित्रे तद्गोप्यं न प्रकाशयेत् ॥”

किसी व्यक्ति के लिए मित्र भाव में भी अपशब्दों का प्रयोग करना उचित नहीं है। मित्र से गोप्य विषय को न छिपाये और उसके गोप्य विषय को कहीं प्रकाशित भी न करें।

अर्थात् उपरोक्त श्लोकों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय पुरा इतिहास में वर्णित सृष्टि के आदि गुरु शुक्राचार्य और बृहस्पति जी ने भी मानवाधिकारों के विषय में उस समय के राजा-महाराजाओं और सामान्य व्यक्तियों को समय-समय पर भाषणों द्वारा या लेखों द्वारा शिक्षा दी है। जैन धर्म के 24वें तीर्थकार महावीर जैन ने भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर विशेष बल दिया है।

मध्यकालीन भारत में मानव अधिकार किसी न किसी रूप में विद्यमान थे। प्राचीन भारत के तीन मुख्य बिन्दु मानववाद, वसुधैव कुटुम्बकम् एवं धार्मिक सहिष्णुता भारतीय परम्परा में लगातार रही है। आधुनिक भारत में भी मानव अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए, कमजोर वर्गों के हितों के संरक्षण के लिए आयोगों का गठन किया जैसे - अल्पसंख्यक आयोग, पिछड़ा वर्ग आयोग, अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग आदि लेकिन सबसे उत्तम 12 अक्टूबर

1993 को राष्ट्रीय मानवीय आयोग का गठन किया गया है। जिसके पास इस सम्बन्ध में खोज एवं सिफारिशें करने का भी पूर्ण अधिकार सुरक्षित है।

अतः उपरोक्त विवेचन और उदाहरणों से हम यह कह सकते हैं कि भारतवर्ष में मानव अधिकारों की कल्पना राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के गठन के समय से ही नहीं अपितु भारतीय वेद-वेदान्तों के अनुसार प्राचीन काल से ही भारत में मौजूद रही है।

6.5 भारतीय संविधान में मानव अधिकार

यद्यपि भारतीय संविधान में व्यक्त रूप से मानव अधिकारों का उल्लेख नहीं है। लेकिन संविधान में बड़े पैमाने पर मानव अधिकारों को मौलिक अधिकारों एवं निर्देशक सिद्धान्तों के रूप में अपनाया गया है। मौलिक अधिकारों में सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों का समावेश है, निर्देशक सिद्धान्तों में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार सम्मिलित किये गये हैं। भारतीय संविधान में निहित कुछ मानव अधिकार निम्न हैं :-

1. मत रखने तथा उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार - अनुच्छेद 19(1) क
2. शान्तिपूर्ण सभा एवं संघ की स्वतंत्रता का अधिकार - अनुच्छेद 19(1) ख
3. आवागमन की स्वतंत्रता का अधिकार - अनुच्छेद 19(1) घ
4. व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता का अधिकार - अनुच्छेद 21
5. मनमानी गिरफ्तारी, निरुद्ध के विरुद्ध अधिकार - अनुच्छेद 22
6. विचार, अन्तःकरण एवं धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार - अनुच्छेद 25 (1)
7. सामाजिक सुरक्षा का अधिकार - अनुच्छेद 29 (1)
8. प्रभावशाली उपचार का अधिकार - अनुच्छेद 32
9. प्रत्येक का अपने तथा अपने परिवार के लिए उपयुक्त जीवन स्तर का अधिकार - अनुच्छेद 39 (क)
10. समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार - अनुच्छेद 39 (घ)
11. कार्य करने का अधिकार तथा कार्य की उचित तथा बेहतर दशायें - अनुच्छेद 41
12. उचित सामाजिक व्यवस्था का अधिकार - अनुच्छेद 38
13. उचित एवं बेहतर पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार - अनुच्छेद 43
14. विश्राम एवं खाली समय का अधिकार - अनुच्छेद 43
15. प्रारम्भिक एवं मौलिक चरणों में निशुल्क शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार - अनुच्छेद 45

बोध प्रश्न

प्र.1 शान्तिपूर्ण सभा एवं स्वतंत्रता का अधिकार संविधान के किस अनुच्छेद के अन्तर्गत निहित है।

उत्तर—

प्र.2 सामाजिक सुरक्षा का अधिकार संविधान में किस अनुच्छेद के अन्तर्गत निहित है?

उत्तर—.....

प्र.3 उचित एवं बेहतर पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार किस अनुच्छेद के अन्तर्गत निहित है?

उत्तर—.....

6.6 भारत में मानवाधिकारों के संरक्षण के लिये कदम

भारत 1966 के अन्तर्राष्ट्रीय अनुबन्धों का एक सदस्य है। भारत ने इनमें निम्नलिखित मानवाधिकारों के संरक्षण का दायित्व स्वयं लिया है। इसके लिए 'राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग' की स्थापना की गई है। इस आयोग के निम्नलिखित सदस्य होंगे।

- अ) कमीशन का अध्यक्ष — व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश रह चुका हो।
- ब) एक सदस्य — सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो या रह चुका हो।
- स) एक सदस्य — उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश हो या रह चुका हो।
- द) दो सदस्य — मानवाधिकार के मामलों का ज्ञान रखने वाले विशेषज्ञ हों।
- य) अल्पसंख्यकों के लिए राष्ट्रीय आयोग, अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिये राष्ट्रीय आयोग तथा महिलाओं के लिए राष्ट्रीय आयोग का अध्यक्ष।
- र) आयोग का महासचिव — यह आयोग का मुख्य कार्यकारी अधिकारी होगा।

इस आयोग का मुख्यालय दिल्ली में है। आयोग केन्द्र सरकार की अनुमति प्राप्त करके भारत में अन्य स्थानों पर भी अपने कार्यालय स्थापित कर सकता है।

उपयुक्त सदस्यों एवं अध्यक्ष की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति के द्वारा की जायेगी। राष्ट्रपति इनकी नियुक्ति एक समिति की सिफारिश पर करेगा। इस समिति के निम्नलिखित सदस्य होंगे -

- अ) भारत का प्रधानमंत्री - अध्यक्ष
- ब) लोकसभा का अध्यक्ष - सदस्य
- स) गृह मंत्रालय का मन्त्री - सदस्य
- द) लोकसभा के विपक्षी दल का नेता - सदस्य
- य) राज्यसभा के विपक्षी दल का नेता - सदस्य
- र) राज्य सभा का डिप्टी चेयरमैन - सदस्य

सर्वोच्च न्यायालय का आसीन जज या उच्च न्यायालय का आसीन मुख्य न्यायाधीश की सलाह पर नियुक्त किया जा सकता है। कमीशन का अध्यक्ष एवं उसके सदस्य का कार्यकाल नियुक्ति की तिथि से पाँच वर्ष होगा। सदस्य दोबारा भी बनाया जा सकता है। कोई भी सदस्य 70 वर्ष की आयु से अधिक का नहीं होगा अर्थात् वह 70 वर्ष की आयु तक कार्य कर सकता है।

6.6.1 आयोग के कार्य एवं शक्तियाँ

मानवाधिकार आयोग के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं यथा -

1. किसी व्यक्ति या आहत व्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत की गई याचिका पर तफतीश करना।
2. मानव अधिकारों के अतिक्रमण की शिकायत पर विचार करना।
3. मानव अधिकारों के उल्लंघन में सरकारी अफसर द्वारा बरती गई अवहेलना पर विचार करना।
4. किसी न्यायालय में मानवाधिकार सम्बन्धी मामले यदि लम्बित पड़े हों तो उस न्यायालय की अनुमति से उनमें हस्तक्षेप करना।
5. मानव अधिकारों का क्षेत्र में अनुसन्धान करना।
6. जनता को मानव अधिकारों के प्रति जागरूक बनाना। ऐसे प्रचार एवं प्रसार के लिये प्रकाशित सामग्री तैयार कराना तथा संचार के साधनों का उपयोग करना।
7. मानव अधिकारों से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय अनुबन्धों तथा अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों का अध्ययन करना।
8. संविधान द्वारा प्रदान किये संरक्षणों की पुनरीक्षा करना और उनको प्रभावी रूप से लागू करने के लिए उपयुक्त सुझाव प्रस्तुत करना।

6.6.2 राज्य मानवाधिकार आयोग

1993 के प्रोटेक्शन ऑफ ह्यूमन राइट्स एक्ट के अन्तर्गत भारत के राज्यों

में राज्य मानवाधिकार आयोग स्थापित करने की व्यवस्था की गई है। राज्य मानवाधिकार आयोग के निम्नलिखित सदस्य होंगे -

- अ) आयोग का अध्यक्ष जो किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश रह चुका हो।
- ब) एक सदस्य - उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो या रह चुका हो।
- स) एक सदस्य - राज्य का जिला जज हो या रह चुका हो।
- द) दो सदस्य - मानवाधिकारों का ज्ञान एवं व्यावहारिक अनुभव रखने वाले व्यक्ति।
- य) सेक्रेटरी - यह व्यक्ति राष्ट्रीय आयोग का मुख्य कार्यकारी अधिकारी होगा।

आयोग का मुख्यालय राज्य शासन द्वारा निर्धारित स्थान पर स्थापित किया जायेगा। आयोग के अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जायेगी। राज्यपाल समिति की सिफारिश पर इनको नियुक्त करेगा। इस समिति में निम्नलिखित व्यक्ति होंगे-

- अ) राज्य का मुख्यमंत्री - मुख्यमंत्री इस समिति का अध्यक्ष होता है।
- ब) विधान सभा का स्पीकर - सदस्य।
- स) गृह विभाग का मंत्री - सदस्य
- द) विधानसभा का विपक्षी दल का नेता - सदस्य।

जिस राज्य में विधान परिषद होगी। उसका अध्यक्ष तथा विधान परिषद में विपक्ष का नेता भी इस समिति के सदस्य होंगे। उच्च न्यायालय तथा जिला न्यायालय के आसीन जज उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से विचार विमर्श करने के पश्चात ही नियुक्त किये जा सकेंगे। इन सभी सदस्यों का कार्यकाल नियुक्ति की तिथि से 5 वर्ष होगा। परन्तु वे 70 वर्ष की अवस्था प्राप्त करने तक ही इस कार्य को कर सकेंगे।

राज्य सरकार मानवाधिकारों के उल्लंघन से सम्बन्धित मामलों को निबटाने के लिए उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सलाह से प्रत्येक जिले में मानवाधिकार न्यायालय स्थापित कर सकती है। यह न्यायालय कोर्ट ऑफ सेशन के नाम से पुकारा जा सकता है। प्रत्येक मानवाधिकार न्यायालय में राज्य सरकार, पब्लिक प्रॉसीक्यूटर नियुक्त करेगी जो इस कोर्ट में इन मामलों का संचालन करेगा। राज्य सरकार किसी वकील को, जो सात वर्ष या इससे अधिक वर्षों तक वकालत कर चुका है, भी इस कार्य के लिए नियुक्त कर सकती है।

जिस समय संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकारों का घोषणा-पत्र जारी किया, उस समय भारत की निर्मात्री सभा स्वतंत्र भारत के लिए संविधान-निर्माण का कार्य कर रही थी। संविधान निर्मात्री सभा ने इस घोषणा-पत्र पर ध्यान दिया और बहुत से मानवाधिकारों को भारतीय नागरिकों को मौलिक अधिकारों के रूप में प्रदान किया। उदाहरणार्थ -

1. संविधान विधि के समक्ष सभी को समान स्थिति देता है (धारा-14)।
2. संविधान आदेश देता है कि किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूल, वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं किया जायेगा। (धारा-15)
3. राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में सब नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी। (धारा - 16)
4. संविधान की धारा 19 से लेकर 22 तक स्वतन्त्र अधिकार का विवेचन किया गया है। इनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं -
 - क) वाक-स्वातन्त्र्य तथा अभिव्यक्ति-स्वतन्त्र्य।
 - ख) शान्तिपूर्वक तथा निरायुध सम्मेलन का अधिकार।
 - ग) संस्था या संघ बनाने का अधिकार।
 - घ) भारत राज्य-क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का अधिकार।
 - ङ) भारत राज्य क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने तथा बस जाने का अधिकार।
 - च) सम्पत्ति के अर्जन, धारण तथा व्ययन का अधिकार।
 - छ) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार।
5. प्रत्येक व्यक्ति को प्राण तथा दैहिक स्वाधीनता का संरक्षण।
6. चौदह वर्ष से कम आयु वाले किसी बालक को किसी कारखाने अथवा खान में नौकर न रखा जायेगा।
7. धारा 29 समस्त अल्पसंख्यक वर्गों को आश्वस्त करती है कि उन्हें अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृतियों को बनाये रखने का अधिकार होगा।

बोध प्रश्न -

प्र.4 राज्य मानवाधिकार आयोग का अध्यक्ष कौन हो सकता है।

उत्तर-.....
.....

प्र.5 संविधान की कौन सी धारा संविधान विधि के समक्ष सभी को समान स्थिति देता है।

उत्तर-.....
.....

प्र.6 संविधान की धारा 29 में उल्लिखित अधिकार का वर्णन कीजिए।

उत्तर-.....
.....

6.7 मानव अधिकारों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण

मानव अधिकारों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण पथम विश्व युद्ध के बाद स्थापित लीग आफ नेशन्स के माध्यम से शुरू हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई। संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा पत्र निम्नलिखित में निष्ठा व्यक्त की गई।

- अ) मौलिक अधिकारों में निष्ठा।
- ब) मानव की महत्ता में निष्ठा।
- स) मनुष्य तथा नारी के समान अधिकारों में आस्था।
- द) जीवन के उपयुक्त एवं अच्छे रहन-सहन के स्तर में निष्ठा।
- य) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा मानवता को प्राप्त करने के लिये मानव अधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं में आस्था।
- र) ये अधिकार एवं स्वतंत्रताएं बिना किसी भेद भाव के सभी को प्रदान करने पर

1948 में संयुक्त राष्ट्र के चार्टर की उक्त प्रस्तावना को प्राप्त करने के लिये मानवाधिकारों का घोषणा-पत्र जारी किया गया। इस घोषणा पत्र में प्रस्तावना के साथ 30 धाराएँ या अनुच्छेद हैं। इसकी प्रस्तावना में कहा गया है कि, "विश्व के सभी नागरिक बिना किसी भेदभाव के मानवाधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं के अधिकारी हैं"।

सार्वजनिक घोषणा में प्रस्तावना के साथ 30 अनुच्छेद हैं। प्रस्तावना में "मौलिक मानवाधिकारों, मानव की महत्ता तथा मनुष्य एवं स्त्री के समान अधिकारों की समानता में निष्ठा व्यक्त की गई है।" इस घोषणा पत्र के अनुच्छेद 1 व 2 सामान्य हैं और अनुच्छेद 3 से 21 नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारों तथा अनुच्छेद 22 व 27 आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों से सम्बन्धित हैं। अनुच्छेद 22 व 27 आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों से सम्बन्धित हैं। अनुच्छेद 28 से 30 उपसंहरात्मक हैं।

अनुच्छेद 1 — इसमें कहा गया है कि सभी मानव प्राणी स्वतंत्र उत्पन्न हुए हैं। अतः वे अधिकारों तथा महत्ता के क्षेत्र में समान हैं। उनमें विवेक तथा चेतना है। अतः उनको भ्रातृत्व भावना रखनी चाहिए।

अनुच्छेद 2 — प्रत्येक व्यक्ति समस्त अधिकारों तथा स्वतंत्रताओं को बिना किसी भेदभाव के प्राप्त करने का अधिकारी है।

अनुच्छेद 3 — जीवन तथा स्वतंत्रता का अधिकार।

अनुच्छेद 4 — दासता तथा दास व्यापार का निषेध।

अनुच्छेद 5 — अमानवीय व्यवहार तथा यातना का निषेध।

अनुच्छेद 6, 7, 8, 9, 10 व 11 — कानून के समक्ष समानता तथा विधिक

उपचारों के अधिकार।

अनुच्छेद 12 व 13 – घूमने-फिरने का अधिकार, किसी भी देश को छोड़ने का अधिकार तथा अपने देश को वापस आने का अधिकार।

अनुच्छेद 14 – विश्राम स्थल प्राप्त करने का अधिकार।

अनुच्छेद 15 व 16 – राष्ट्रियता का अधिकार।

अनुच्छेद 17 – सम्पत्ति रखने का अधिकार।

अनुच्छेद 18 – विचार, अन्तरात्मा तथा धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार।

अनुच्छेद 19 – अभिव्यक्ति तथा सम्मति प्रकट करने का अधिकार।

अनुच्छेद 20 व 21 – शान्तिपूर्ण ढंग से सभा व संघ बनाने का अधिकार।

अनुच्छेद 22 – सामाजिक सुरक्षा का अधिकार।

अनुच्छेद 23, 24 व 25 – कार्य करने का अधिकार, रोजगार प्राप्त करने के लिए स्वतंत्रतापूर्वक अवसर चयन करने का अधिकार आदि।

अनुच्छेद 26 – शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार।

अनुच्छेद 27 – विभिन्न कलाओं में आनन्द लेने का अधिकार तथा वैज्ञानिक विज्ञापनों में भाग लेना आदि।

अनुच्छेद 28 – इस घोषणा पत्र को पूर्णतः प्राप्त किया जा सकता है।

अनुच्छेद 29 – इसमें उन दायित्वों का विवेचन किया गया है जिनका व्यक्ति को अपने समुदाय के प्रति निर्वाह करना है।

अनुच्छेद 30 – इसमें कहा गया है क कोई भी राष्ट्र इन अधिकारों की विवेचना अपने दृष्टिकोण से नहीं करें।

उपर्युक्त घोषणा को ध्यानपूर्वक अध्ययन से पता चलता है कि यह सर्वव्यापी है और इसमें हुए हर प्रकार के मानवाधिकारों की घोषणा की गई है। इस ऐतिहासिक घोषणा के बाद महासभा ने इस सम्बन्ध में जो अन्य महत्वपूर्ण घोषणाएँ की हैं, वे इस प्रकार हैं।

- क) 1959 तथा 1991 की शिशु अधिकार घोषणाएँ।
- ख) 1960 की उपनिवेशों को स्वतंत्रता प्रदान करने सम्बन्धी घोषणा।
- ग) 1963 की रंगभेद के आधार पर सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने की घोषणा।
- घ) 1967 की महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव समाप्त करने की घोषणा।
- ङ) 1975 की वह घोषणा जिसके अन्तर्गत अमानवीय तथा दर्दनाक तौर पर दंडित अथवा अपमानजनक व्यवहार के पीड़ित लोगों को संरक्षण आता है।
- च) 1981 की धार्मिक विश्वास अथवा व्यवहार के आधार पर किये जाने वाले भेदभाव तथा असहनशीलता के सभी रूपों की समाप्ति।

संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक तथा सामाजिक परिषद ने 1946 में मानवाधिकार आयोग की स्थापना की। प्रारम्भ में इस कमीशन के 32 सदस्य थे। इस समय इसकी सदस्य संख्या 53 है। यह आयोग हजारों शिकायतें प्राप्त करता है। और यह सरकारों को उनके उत्तर देने के लिये कहता है। इसने मानवाधिकारों के उल्लंघनों को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

6.8 सारांश

मानव अधिकारों का अभिप्राय उन सभी अधिकारों से है जो कि एक मानव होने के नाते व्यक्ति के चहुँमुखी विकास के लिये मानव कल्याण निमित्त नितान्त आवश्यक है। भारत में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन 1993 में हुआ। भारतीय संविधान में मानव अधिकारों को मौलिक अधिकारों के रूप में अपनाया गया है। भारत 1966 के अन्तर्राष्ट्रीय अनुबन्धों का एक सदस्य है। भारत ने मानवाधिकारों के संरक्षण का दायित्व स्वयं लिया। राष्ट्रीय आयोग का मुख्यालय दिल्ली में है। राज्यों में भी राज्य मानवाधिकार आयोग स्थापित किये गये हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई। 1948 में संयुक्त राष्ट्र ने घोषणा पत्र जारी किया इसमें 30 धाराएँ हैं।

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

- उ. 1 अनुच्छेद 19 (1) ख
- उ. 2 अनुच्छेद 29 (1)
- उ. 3 अनुच्छेद 43
- उ. 4 जो किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश रह चुका हो।
- उ. 5 धारा 14
- उ. 6 धारा 29 समस्त अल्पसंख्यक वर्गों को आश्वस्त करती है उन्हें अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृतियों को बनाये रखने का अधिकार होगा।

इकाई-7 वैश्वीकरण

इकाई की रूपरेखा

- 7.1 प्रस्तावना
- 7.2 उद्देश्य
- 7.3 वैश्वीकरण की परिभाषा
- 7.4 भारतीय संदर्भ में वैश्वीकरण
- 7.5 वैश्वीकरण के प्रभाव
- 7.6 वैश्वीकरण एवं शिक्षा
- 7.7 वैश्वीकरण के शिक्षा पर धनात्मक प्रभाव
- 7.8 वैश्वीकरण के शिक्षा पर ऋणात्मक प्रभाव
- 7.9 वैश्वीकरण एवं शिक्षा की चुनौतियाँ
 - 7.9.1 बौद्धिक प्रतिस्पर्धा
 - 7.9.2 विकासात्मक अन्तर
 - 7.9.3 शिक्षा का महँगा होना
 - 7.9.4 अन्तर्राष्ट्रीय मानक
 - 7.9.5 तकनीक/ साधनों का अधिकतम उपयोग
- 7.10 सुझाव
- 7.11 सारांश
- 7.12 अभ्यास प्रश्न
- 7.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.1 प्रस्तावना

वैश्वीकरण का शाब्दिक अर्थ है स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं की विश्व स्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया। इसे एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है। जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज बनाते हैं तथा एक साथ कार्य करते हैं। यह प्रक्रिया आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक संयोजन है। वैश्वीकरण का उपयोग अक्सर आर्थिक वैश्वीकरण के सन्दर्भ में किया जाता है, अर्थात् व्यापार, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, पूंजी प्रवाह, प्रयास और प्रौद्योगिकी के प्रसार के माध्यम से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में एकीकरण। यजुर्वेद में कहा गया है कि -

“वेनस तत् पश्चन निहितम् गृह सद।

यत्र विश्व भवति एक नीडम्।।”

अर्थात् ज्ञानी पुरुष उस रहस्यपूर्ण चिरन्तन साथ को देखता है जहाँ समस्त विश्व एक परिवार हो जाता है। वैश्वीकरण आत्मा की एकता पर आधारित है। ईशोपनिषद में कहा गया है कि:

“यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मानि एवं अनुपश्यति।

सर्वभूतेषु चात्मानम् ततो न विचक्षितसति।।” —

ईशोपनिषद : 6

अर्थात् जो आत्मा में सब प्राणियों को देखता है और सब प्राणियों में आत्मा को, वह किसी संशय को प्राप्त नहीं होता।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थि —

- वैश्वीकरण के अर्थ एवं विभिन्न परिभाषाओं से अवगत हो सकेंगे।
- वैश्वीकरण का भारतीय समाज पर पड़ रहे प्रभाव से परिचित हो सकेंगे।
- वैश्वीकरण एवं शिक्षा में अन्तर्सम्बन्ध तथा उसके धनात्मक तथा ऋणात्मक प्रभावों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- वैश्वीकरण के युग में शिक्षा के समक्ष उत्पन्न चुनौतियों के विषय में जान सकेंगे।
- वैश्वीकरण के युग में शिक्षा के उद्देश्य क्या हो इस पर चर्चा कर सकेंगे।

7.3 वैश्वीकरण की परिभाषा

शब्द 'वैश्वीकरण का उपयोग अर्थशास्त्रियों के द्वारा 1920 में किया जाता रहा है। टॉम जी पामर— 'वैश्वीकरण' को "सीमाओं के पार विनिमय पर राज्य प्रतिबंधों का ह्रास या विलोपन और इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ उत्पादन और विनिमय का तीव्र एकीकृत और जटिल विश्व स्तरीय तंत्र" के रूप में परिभाषित करते हैं। यह अर्थशास्त्रियों के द्वारा दी गई सामान्य परिभाषा है, अक्सर श्रम विभाजन के विश्व स्तरीय विस्तार के रूप में अधिक साधारण रूप से परिभाषित की जाती है। टी० एच० एरिकसन के अनुसार — "एक और वैश्वीकरण की प्रक्रिया चल रही है तो दूसरी और स्थानीकरण की प्रक्रिया प्रभावशाली है। दोनों प्रक्रिया के आपसी सम्बन्ध का दूसरा नाम वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण है।" हर्मल ई० डेली का तर्क है कि कभी-कभी अंतर्राष्ट्रीयकरण और वैश्वीकरण शब्दों का उपयोग एक दूसरे के स्थान पर किया जाता है लेकिन औपचारिक रूप से इनमें मामूली अंतर है, शब्द "अंतर्राष्ट्रीयकरण" शब्द का उपयोग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, संबंध और रुचियों आदि के महत्व को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है अंतर्राष्ट्रीय का अर्थ है राष्ट्रों के बीच।

7.4 भारतीय सन्दर्भ में वैश्वीकरण

वैश्वीकरण का अर्थ विभिन्न सन्दर्भों में भिन्न-भिन्न होता है। भारत में उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की नीतियों (LPG model : L- Liberalization, P- Privatization, G- Globalization) में उसे विश्व की सबसे तीव्र गति से विकसित हो रही अर्थव्यवस्था के रूप में पहचान दिलायी है। आज भारतीय समाज का स्वरूप वैश्वीकरण से निर्धारित हो रहा है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में विभिन्न संस्कृतियों आपस में अन्तर्क्रिया करता है। विभिन्न राजनैतिक, व्यावसायिक और बौद्धिक तत्व आपस में मिलते हैं तथा समेकित स्वरूप को हवा करते हैं। वस्तुओं, व्यक्तियों, विचारों, पूंजी तथा सेवाओं का मुक्त प्रवाह होता है। विश्व के देशों के पारस्परिकता बढ़ रही है तथा भौगोलिक एवं सामाजिक सीमायें टूट रही हैं। देशों के मध्य दूरियाँ समाप्त हो रही हैं।

यद्यपि वैश्वीकरण ने भारत में सूचना एवं तकनीकी क्षेत्र, स्वास्थ्य एवं शिक्षा सेवाओं तथा जीवन स्तर को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। किन्तु यह भी देखा जा रहा है कि आर्थिक एवं सामाजिक विषमतायें वही हैं। समृद्ध धनी अधिक धनी होते जा रहे हैं जबकि गरीब व्यक्ति अधिक गरीब होता जा रहा है। सुविधा सम्पन्न एवं सुविधाहीन वर्ग के मध्य खाई बढ़ती जा रही है लोगों में वैश्वीकरण के प्रभाव को लेकर आशंका है। कुछ लोग इसका विरोध भी करते हैं।

बोध प्रश्न

प्र0 1 वैश्वीकरण की प्रक्रिया क्या है ?

.....
.....

प्र0 2 आधुनिक भारत की प्रमुख नीतियाँ क्या है ?

.....
.....

7.5 वैश्वीकरण के प्रभाव

वैश्वीकरण का आशय लोगों और विचारों के मुक्त प्रवाह से है ताकि कहीं भी हो रहे विकास का लाभ अन्य लोग भी उठा सके। वैश्वीकरण का अर्थ संस्कृति, सभ्यता, समाज का हर जगह होना है। अतः कहने का तात्पर्य यह है कि यह प्रत्येक स्थान पर अपना प्रभाव डालता है। इसके द्वारा पड़ने वाले प्रभाव को संक्षेप में अधोलिखित रूप से समझा जा सकता है :-

1. यह एक व्यापक प्रक्रिया है जो मानव के सांस्कृतिक जीवन के अनेक क्षेत्रों को प्रभावित कर रही है, जैसे- राजनीति, आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन आदि।

2. स्थानीकरण पर वैश्वीकरण का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, अब प्रश्न यह उठता है कि क्या यह स्थानीय संस्कृति को प्रभावित करेगा।
3. इसका प्रभाव स्थानीय संस्कृति, परम्परा, मूल्य और कला पर पड़ रहा है।
4. इसके द्वारा एक राष्ट्र की संस्कृति दूसरे राष्ट्र तक पहुँच रही है, जिससे एक प्रकार से सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का जन्म हो रहा है।
5. इससे एक वैश्वी समाज का उद्गम हो रहा है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार का जन्म उदारीकरण के फलस्वरूप हो रहा है।
6. वैश्वीकरण के प्रभाव के फलस्वरूप स्थानीय संस्कृति 'चुनौती और प्रत्युत्तर' की प्रक्रिया से गुजर रही है और यह शक्तिशाली होती जा रही है।
7. वैश्वीकरण के प्रभाव फलस्वरूप, अन्तर्राष्ट्रीयता का जन्म हो रहा है और पृथक अपने अन्त की ओर अग्रसर है।
8. वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप अनेक समाजों के बीच प्रतिस्पर्धा बढ़ती जा रही है तथा समानता व न्याय की पृष्ठभूमि तैयार हो रही है।
9. आज मानव मस्तिष्क का वैश्वीकरण हो रहा है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्पष्ट नजर आ रहा है।
10. शिक्षा और तकनीकी के क्षेत्र में भी इसके प्रभाव को अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

5.6 वैश्वीकरण एवं शिक्षा

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है और वह समाज में हो रहे किसी भी परिवर्तन से अछूता नहीं रह सकता। शिक्षा न केवल परिवर्तन से प्रभावित होती है बल्कि वह परिवर्तन को भी प्रभावित करती है। वैश्वीकरण आज के युग की आवश्यकता है। अतः यह भी आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा इस समय अपनी भूमिका को समझे। वैश्वीकरण के श्याम पक्षों (dark sides) को समझकर उन्हें दूर रखना तथा धवल पक्षों (bright side) को समझकर उन्हें अपनाने की प्रक्रिया तीव्र करना शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिये।

5.7 वैश्वीकरण के शिक्षा पर धनात्मक प्रभाव

1. शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों यथा सूचना एवं जनसंचार तकनीकी, अंतरिक्ष विज्ञान, औद्योगिक उत्पादन, इक्विलयर तकनीकी, जैव तकनीकी तथा जेनेटिक इंजीनियरिंग इत्यादि में नवीनतम खोजों एवं अनुसंधान के आधार पर भारत ने विश्व में एक सबसे बड़ी उच्च शिक्षा प्रणाली विकसित कर ली है।
2. उच्च शिक्षा एक बड़े बाजार के रूप में विकसित हो रहा है।
3. उच्च शिक्षा में भौगोलिक दूरियाँ समाप्त हो रही हैं। बहु-परिसर संस्थान

(multi campus institution), फ्रैंचाइज संस्थान, बहि-परिसर शिक्षा (off campus education), दूरस्थ शिक्षा, इण्टरनेट आधारित शिक्षा, विश्वविद्यालय (virtual universities) इसके कुछ ज्वलन्त उदाहरण हैं।

4. एक भली-भाँति शिक्षित विद्यार्थी के सामने अनगिनत संभावनायें हैं। एक सम्पूर्ण विश्व बाजार के रूप में है जहाँ वह अपनी योग्यताओं एवं कुशलताओं का समुचित उपयोग कर सकता है तथा अधिकतम प्रतिफल धन तथा संतुष्टि के रूप में प्राप्त कर सकता है।
5. तकनीकी शिक्षा, चिकित्सा शिक्षा, प्रबन्धन एवं व्यवसायिक शिक्षा के क्षेत्र में विश्वस्तरीय संसाधनों एवं सुविधाओं से युक्त संस्थानों की उपलब्धता के कारण आज विश्वभर के विद्यार्थी भारत में शिक्षा ग्रहण करने आ रहे हैं।
6. प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक के क्षेत्र में माँग बढ़ी है।

5.8 वैश्वीकरण के शिक्षा पर ऋणात्मक प्रभाव

आज हमें दो भिन्न भारत दिखायी देते हैं एक ओर चमकदार समृद्धशाली संस्कृति है दूसरी ओर गरीबी एवं निराशा की जिदंगी। एक ओर पंचसितारा होटलों की संस्कृति है तो दूसरी ओर गंदी बस्तियों की संख्या बढ़ती जा रही है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप भारतीय समाज में कुछ नकारात्मक प्रभाव देखे जा सकते हैं :-

1. वैश्वीकरण का प्रतिफल में समाज के सभी वर्गों की बराबर साझेदारी नहीं है। अमीर एवं गरीब के मध्य खाई बढ़ रही है।
2. विभिन्न संस्कृतियों के आगमन से भारतीय संस्कृति अस्थिर एवं विकृत होती जा रही है। युवा वर्ग आज अपनी जड़ों से दूर हो रहे हैं तथा पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता के दीवाने हो रहे हैं।
3. शिक्षा एक वस्तु बन गयी है जो बेची या खरीदी जा सकती है। विश्वस्तरीय संस्थानों की संख्या जरूर बढ़ी है किन्तु यहाँ छात्रों से प्रतिवर्ष लाखों रुपये का शुल्क लिया जाता है। स्पष्ट है कि केवल सम्पन्न वर्ग के विद्यार्थी ही यह उच्च विश्वस्तरीय शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। यह भारत के जनतांत्रिक मूल्यों के विपरीत है।
4. विश्वविद्यालय केवल सेवा प्रदान करने के केन्द्र बन गये हैं। ज्ञान का विकास तथा ज्ञान का मुक्त हस्तांतरण जो विश्वविद्यालयों की स्थापना का मुख्य कारण था, आज अपनी सार्थकता खो चुका है।
5. उच्च शिक्षा के विकास की दर जनसंख्या वृद्धि के अनुरूप नहीं है। आज भी केवल 6.7 प्रतिशत लोगों को ही उच्च शिक्षा की सुविधा उपलब्ध है।

बोध प्रश्न

प्र0 3 भारतीय संस्कृति अस्थिर एवं विकृत क्यों है

.....
.....

प्र0 4 आज कितने प्रतिशत लोगों को उच्च शिक्षा उपलब्ध है।

.....
.....

7.9 वैश्वीकरण एवं शिक्षा की चुनौतियाँ

ज्ञान का होना तथा उस ज्ञान को व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास हेतु उपयोग में लाने की योग्यता दो भिन्न पहलू हैं तथा दोनों ही आज के समय में महत्वपूर्ण हैं। वैश्वीकरण के फलस्वरूप प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालयी स्तर तक अनेक निजी एवं सरकारी संस्थानों की स्थापना हो रही है। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या हमारे ये संस्थान ऐसा वातावरण दे रहे हैं जो ऐसे व्यक्तियों के विकसित होने की पृष्ठभूमि तैयार कर सके जो विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धा में शामिल हो सके। आज वैश्वीकरण के फलस्वरूप शिक्षा में अनेक चुनौतियाँ उपस्थित हो रही हैं जिनका सामना यदि हमने नहीं किया तो हमारी शिक्षा व्यवस्था धाराशाही हो जायेगी। ये चुनौतियाँ निम्नवत् हैं :-

7.9.1 वैश्विक प्रतिस्पर्धा

वैश्विक प्रतिस्पर्धा हेतु विद्यार्थियों को तैयार करना आज हमारी शैक्षिक संस्थाओं के सामने एक बड़ी चुनौती है। शिक्षा की गुणवत्ता किस प्रकार बढ़ाई जाये कि वह वैश्विक रूप से प्रतिस्पर्धात्मक तथा स्थानीय रूप से सार्थक हो। विकसित होती हुयी तथा अधिगमशील समाजों के लिये शिक्षा के नये आयामों को तय करना भी एक चुनौती है।

7.9.2 विकासात्मक अन्तर

भारत में कई महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों की स्थापना का उद्देश्य स्थानीय एवं क्षेत्रीय असामन्जस्य को दूर करता रहा है। ये संस्थायें समाज के कमजोर वर्गों के लिये विकासात्मक कार्यक्रम चला रही हैं तथा लगातार आर्थिक समस्याओं से जूझ रहा है। इससे समाज का वह गरीब वर्ग और अधिक वंचित, अज्ञानी तथा असहाय होता जा रहा है। वैश्विक प्रतिस्पर्धा की दौड़ में इस प्रकार की संस्थाओं को बचाये रखना एक बड़ी चुनौती है।

7.9.3 शिक्षा का महंगा होना

शिक्षा और विशेषकर अच्छी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा आज निम्न तथा निम्न-

मध्यम वर्ग की पहुँच से बाहर है। योग्यता का विवरण सामान्य रूप से होता है इन वर्गों के विद्यार्थियों को अपनी योग्यता के विकास के लिये उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षण संस्थान उपलब्ध हों, यह आज के समय की आवश्यकता है। अन्यथा यह वर्ग उपेक्षित होगा तथा वर्ग संघर्ष की संभावना को नकारा नहीं जा सकता।

7.9.4 अन्तर्राष्ट्रीय मानक

आज जिस प्रकार तकनीकी प्रशिक्षित, कुशल कारीगर, उच्च शिक्षित व्यक्ति आसानी से विश्व व्यवसाय के बाजार में अपनी जगह बना रहे हैं, यह आवश्यक हो जाता है कि कोई एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था हो जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के मानक तैयार कर सके। कई बार विद्यार्थी विदेशी डिग्री की चाहत में किसी ऐसे संस्थान में प्रवेश ले लेते हैं जो अस्तित्व में ही नहीं होता अथवा उसकी डिग्री वैध नहीं होकर/यदि हमें विदेशी विद्यार्थियों को भी अपने देश के संस्थानों की ओर आकर्षित करना है तो हमें अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप ही शिक्षा व्यवस्था करनी होगी।

7.9.5 तकनीकी साधनों का अधिकतर उपयोग

इस समय तकनीकी विकास अपनी चरम सीमा पर है। भारत के सामने यह एक चुनौती है कि किस प्रकार इन तकनीकी सुविधाओं यथा कम्प्यूटर, इण्टरनेट, मोबाइल इत्यादि का अधिकतम प्रयोग करते हुये शिक्षा को सभी के लिए सुलभ बनाया जाये। शिक्षा की समान गुणवत्ता पूरे भारत में हो यह सुनिश्चित करने के लिये भी तकनीकी एवं जनसंचार साधनों का प्रयोग किया जा सकता है।

बोध प्रश्न

प्र0 1 विदेशी विद्यार्थियों को अपने शैक्षिक संस्थानों के प्रति आकृष्ट करने के लिये हमें क्या करना होगा ?

.....

प्र0 2 शिक्षा के सामने विभिन्न चुनौतियाँ क्यों हैं ?

.....

7.10 सुझाव

वैश्वीकरण के इस युग में हम अलग-अलग नहीं रह सकते हैं। आज वैश्वीकरण हमारे जीवन का पहला अनिवार्यता बन गयी है। इसलिये यह आवश्यक है कि हम अपने विद्यार्थियों को इस हेतु तैयार करें। इसके लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते हैं :

1. ग्रामीण क्षेत्रों का शहरीकरण किया जाये अर्थात् वहाँ पर थी वे सभी

सुविधायें उपलब्ध करायी जाये कि शहरी विद्यार्थियों को सुलभ हैं।

2. वैश्वीकरण से पूर्व विद्यार्थियों में राष्ट्रीयकरण की भावना का विकास किया जाये।
3. विद्यार्थियों को विश्व नागरिकता के लिये तैयार किया जाये। इस हेतु उन्हें विश्व की विभिन्न संस्कृतियों, लोगों, विचार-धाराओं से परिचित होने के अवसर प्रदान करने होंगे।
4. विद्यार्थियों को उन समस्त आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक तत्त्वों की पूर्ण जानकारी दी जाये जिसके कारण विश्व के समस्त देश एक दूसरे पर आश्रित हैं।
5. विद्यार्थियों में स्पष्ट एवं स्वतंत्र चिंतन, लेखन तथा स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने की क्षमता का विकास किया जाये।
6. उन्हें विश्व की उन सभी समस्याओं से परिचित कराया जाये जिससे अधिकतर राष्ट्र संबंधित है तथा इन समस्याओं के कल्याणकारी समाधान हेतु उन्हें चिंतन करने के लिये प्रोत्साहित किया जाये।
7. उन्हें समस्त राष्ट्रों की विशेषताओं, उपलब्धियों का आदर करना सिखाया जाये।
8. समस्त शैक्षिक संस्थाओं में आधुनिकतम तकनीकी सुविधायें उपलब्ध करायी जानी चाहिये। प्रयास हो कि ये सुविधायें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की हों।

शिक्षा का कार्य है व्यक्ति में वह योग्यता विकसित करना जिससे वह अपने वातावरण के साथ उस सीमा तक सामंजस्य स्थापित कर सके जो उसे समाज, राष्ट्र तथा अन्ततः विश्व का संतोष एवं आनन्द प्रदान करे।

7.11 सारांश

अब तक आप जान चुके हैं कि वैश्वीकरण का आशय लोगों और विचारों के मुक्त प्रवाह से है ताकि कहीं भी हो रहे विकास का प्रभाव अन्य लोग भी उठा सके। शिक्षा न केवल परिवर्तन से प्रभावित होती है बल्कि वह परिवर्तन को भी प्रभावित करती है। उच्च शिक्षा में भौगोलिक दूरियां समाप्त हो गई हैं। शिक्षा बड़े बाजार के रूप में विकसित हो रही है। वैश्वीकरण का शिक्षा पर धनात्मक एवं ऋणात्मक प्रमाण पड़ा है। वैश्वीकरण प्रतिस्पर्धाएँ शिक्षा का मँहगा होना अन्तर्राष्ट्रीय मानक, तकनीकी साधनों का अधिकतम प्रयोग जैसी चुनौतियाँ शिक्षा के समक्ष उपस्थिति हो रही हैं।

7.12 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. वैश्वीकरण से क्या तात्पर्य है? भारत में इसके प्रभावों की चर्चा कीजिये।
2. वैश्वीकरण के फलस्वरूप भारत की शिक्षा व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ रहा है? विस्तार में चर्चा करें।

3. वैश्वीकरण के दौर से किस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था होनी चाहिए?
4. वैश्वीकरण और शिक्षा पर निबन्ध लिखिये।
5. वैश्वीकरण के दुष्परिणाम बताइये।

7.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

- उ0 1- वैश्वीकरण की प्रक्रिया बेग विभिन्न संस्कृतियाँ आपस में अन्तक्रिया करती है।
2. उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण
 3. विभिन्न संस्कृतियों के आगमन से भारतीय संस्कृति अस्थिर एवं विकृत है।
 4. आत केवल 6.7 प्रतिशत लोगों को ही उच्च शिक्षा की सुविधा उपलब्ध है।
 5. हमें अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी।
 6. वैश्वीकरण के फलस्वरूप शिक्षा के सामने विभिन्न चुनौतियाँ हैं।

इकाई - 8 निजीकरण

संरचना

- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 उद्देश्य
- 8.3 निजीकरण का अर्थ
- 8.4 निजीकरण और शिक्षा
- 8.5 निजीकरण के लाभ
- 8.6 निजीकरण की हानियाँ
- 8.7 निजीकरण के लिए सुझाव
- 8.8 सारांश
- 8.9 अभ्यास प्रश्न
- 8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 8.11 संदर्भ ग्रन्थ

8.1 प्रस्तावना

निजीकरण का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। इसका इतिहास करीब 15-20 वर्ष का है। "Privatisation" शब्द 1960 में सर्वप्रथम प्रयुक्त किया गया। पीटर एफ० ड्र्यूकरी (Peter F. Drucker) ने सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग अपनी पुस्तक "The Age of Discontinuity" में किया। इसके दस वर्ष बाद मारग्रेट थैचर इंग्लैण्ड की प्रधानमंत्री बनी और उन्होंने उद्योग एवं व्यापार के क्षेत्र में इस विचार को व्यावहारिक रूप प्रदान किया। इसके बाद धीरे धीरे अन्य देशों में निजीकरण को स्वीकार करके साकार रूप प्रदान किया गया।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप परिचित हो जायेंगे।

- निजीकरण के अर्थ से
- शिक्षा और निजीकरण के सम्बन्धों से
- निजीकरण के लाभ एवं हानियाँ।

8.3 निजीकरण का अर्थ

जिन क्रियाओं या उद्यमों को पूर्व में सरकार द्वारा संचालित या प्रबन्धित किया जा रहा है, जब उनको किसी निजी कम्पनी या उद्यमी या संस्था को संचालित या प्रबन्धित करने के लिये सौंप दिया जाता है, इस हस्तान्तरण की प्रक्रिया को निजीकरण की प्रक्रिया कहते हैं। भारत में निजीकरण की प्रक्रिया अभी

कुछ वर्ष पूर्व से प्रारम्भ हुई है। सामान्य रूप से निजीकरण का आशय है — स्वामित्व में परिवर्तन अर्थात् सरकारी स्वामित्व के स्थान पर निजी व्यक्ति या कम्पनी या व्यवसायी या उद्यमी का स्वामित्व। प्रायः लोगों में यह अवधारणा बन गई है कि निजीकरण से निष्पादन में अनिवार्य रूप से सुधार होता है। इसके माध्यम से लागत में कमी और गुणवत्ता को उन्नत बनाया जाता है। वस्तुतः निजीकरण का मूलमंत्र है — प्रतिस्पर्धा। उसका मुख्य उद्देश्य होता है मुनाफा।

8.4 निजीकरण और शिक्षा—

शिक्षा का निजीकरण तथा शिक्षा का व्यावसायीकरण दो अलग अलग धारणाएँ हैं। शिक्षा के व्यावसायीकरण से अभिप्राय व्यवसाय तथा रोजगार के अधिकतम अवसर प्रदान करने के लिए विभिन्न व्यवसायों तथा उद्योगों से सम्बन्धित पाठ्यक्रमों में छात्रों को प्रवेश देना है। इससे छात्र, शास्त्रीय पाठ्यक्रमों के बजाय उन पाठ्यक्रमों में प्रवेश लेते हैं जो उन्हें आजीविका का अवसर देते हैं। बढ़ती जनसंख्या ने नौकरियों के अवसर बहुत कम कर दिये हैं। इसलिये बढ़ती बेकारी को रोकने के लिये स्व-रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना आवश्यक हो गया है।

निजीकरण की धारणा के पीछे जो भावना है वह है— कुछ सम्पन्न तथा मुनाफाखोर व्यक्तियों का शिक्षा के क्षेत्र में धनोपार्जन करना। पहले शिक्षा संस्थाओं की स्थापना धनी व्यक्तियों द्वारा धर्मार्थ कार्य समझ कर की जाती थी, विद्या दान की भावना उससे पीछे थी। कुछ समाजसेवी भी संस्थाओं की स्थापना कर जनसहयोगसे शिक्षण संस्थाओं का परिचालन करती थीं। धार्मिक संस्थायें, यथा आर्य समाज, धर्म समाज, ब्रह्म समाज, देव समाज, सनातन धर्म, इस्लाम, पारसी, जैन, सिक्ख समुदाय भी जनकल्याण हेतु शिक्षण संस्थाओं की स्थापना कर शिक्षा प्रसार का कार्य करते थे।

आज स्थिति बदल गयी है। भारत में निजीकरण का प्रश्न व्यापार तथा उद्योगों में प्रवेश कर चुका है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ दुनिया भर में बेरोकटोक व्यापार, उद्योग और कल-कारखानों का जाल बिछा रही हैं और सरकारों ने अपने तमाम बन्धनकारी नियमों को निरस्त कर उन्हें कुछ भी करने की छूट दे रखी है। शिक्षा के क्षेत्र में भी निजीकरण ने अपने पैर पसार लिये हैं। सरकारों ने शिक्षा के दायित्व का निर्वाह करने में असमर्थता प्रकट की है। शैक्षिक अवसरों में कमी के निवारण के लिए भारत सरकार ने शिक्षा में निजीकरण का सहारा लिया है। देखा जाये तो शिक्षा में निजीकरण कोई नया नहीं है। सन 1882 ई. में भारतीय शिक्षा आयोग ने शिक्षा के वास्तविक प्रचार प्रसार के लिए राजकीय प्रयासों के साथ साथ जनता के प्रयासों पर भी बल दिया। वर्तमान परिवेश में शिक्षा के निजीकरण से शिक्षा व्यवसाय में बढ़ोत्तरी हुई है। जिससे लोगों के मूल्यों में तीव्र गति से परिवर्तन आया है। जहाँ पहले शिक्षा सेवा परमार्थ के दृष्टिकोण से उपलब्ध कराई जाती थी परन्तु वहीं आज शिक्षा में निजीकरण से शिक्षा का उद्देश्य धनोपार्जन करना अधिक प्रतीत हो रहा है। परन्तु ऐसी स्थिति में आर्थिक स्थिति

से सम्पन्न लोगों डिग्रियों की खरीद फरोख्त कर रहे हैं। और शिक्षा मध्यम एवं निम्न वर्ग के लोगों के हाथों से दिन ब दिन दूर होती चली जा रही है। यहाँ तक कि अर्द्ध शिक्षा नीति में निजी उपक्रम को शिक्षा के काम में सहयोग देने का आमंत्रण दिया जाने लगा।

उद्यमियों ने भी बड़ी बड़ी फैक्ट्रियाँ लगाने के बजाय बड़े बड़े पांच सितारा स्कूलों की स्थापना पर ध्यान देना शुरू किया। अनिवासी भारतीयों की देश तथा संस्कृति के प्रति आस्था ने डालर तथा पौंड कमाने का रास्ता दिखाया। फलतः अंग्रेजी माध्यम के आवासीय विद्यालयों की संख्या में वृद्धि होने लगी। कुछ व्यावसायिक तथा वृत्तिक शिक्षा के संस्थान भी खुले, बड़ी बड़ी कम्पनियों ने भी प्रबन्धक विज्ञान तथा उसकी शाखाओं में पाठ्यक्रम आरम्भ किये। आल इण्डिया कौंसिल फार टेक्नीकल एजुकेशन द्वारा निरन्तर मान्यता देने से शिक्षा के इस उद्योग को बढ़ावा मिलने लगा।

कम्प्यूटर्स के विभिन्न पाठ्यक्रमों का संचालन भी ऐसी ही कम्पनियों द्वारा हो रहा है। शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद ने जिस उदारता के साथ बी.एड. पाठ्यक्रमों के लिये निजी संस्थाओं को वित्तहीन मान्यताएं प्रदान की है। वह स्पष्ट देखी जा सकती हैं।

विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद तथा इण्डियन कौंसिल फार सेकेण्ड्री एजुकेशन ने भी वित्त विहीन मान्यता देकर निजी क्षेत्र में विकास किया है।

बोध प्रश्न -

प्र.1 कौन सी कम्पनियाँ व्यापार, उद्योग और कल कारखानों का जाल बिछा रही है।

उत्तर—.....
.....
.....

प्र.2 किस संस्था ने बी.एड. पाठ्यक्रमों के लिये निजी संस्थाओं को वित्तविहीन मान्यता प्रदान की है?

उत्तर—.....
.....
.....

8.5 निजीकरण के लाभ

शिक्षा के निजीकरण से निम्नलिखित लाभ प्रकट हो रहे हैं -

1. शिक्षा का प्रसार हो रहा है।
2. जिन लोगों को प्रतियोगी परीक्षाओं में असफल होने के कारण प्रवेश नहीं मिल पाता, वे अधिक धन खर्च करके वांछित शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

3. देश का धन सकारात्मक कार्यों में लग रहा है।
4. बेरोजगारी किसी सीमा तक दूर हो रही है।
5. शिक्षण संस्थाओं की स्थापना से सम्बन्धित रोजगार, छात्रावास, कैंटीन सेवाएं, स्टेशनर्स, प्रिन्टर्स तथा पब्लिशर्स को विकास के अवसर मिल रहे हैं।
6. योग्य व्यक्तियों को अपनी प्रतिभा का विकास के अवसर मिल रहे हैं।

8.6 निजीकरण की हानियाँ

शिक्षा को उद्योग मान लेने से शिक्षा के प्रति सात्विक भाव समाप्त हो गया है। अतः शिक्षा के निजीकरण से निम्नलिखित हानियाँ हो रही हैं।

1. शिक्षा, व्यापार हो गयी है। उपभोक्ता तथा नियोजक दोनों इसी दृष्टि का विकास करते हैं।
2. निजीकरण के कारण वे लोग शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। जो निर्धनता के कारण प्रतिभा होते हुए भी प्रवेश नहीं ले पाते।
3. निजीकरण के कारण शिक्षा मंहगी हो गई है। पूर्व प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर कम से कम एक हजार रुपया प्रतिमाह औसतन शैक्षिक व्यय प्रति व्यक्ति आता है, जो सामान्य वेतनभोगी व्यक्ति के लिये समस्या है।
4. बड़े बड़े उद्योग पतियों ने शिक्षा संस्थाओं को सहयोगी उद्योग के रूप में स्थापित किया है।
5. शिक्षकों का शोषण होता है। उन्हें पूरा वेतन तथा शैक्षिक सुविधायें प्राप्त नहीं होती।
6. अधिकतम संस्थानों में योग्य शिक्षक मंडल नहीं होता।
7. इन संस्थाओं में शैक्षिक साधनों तथा सुविधाओं का अभाव होता है।
8. शैक्षिक तथा बौद्धिक विकास के अवसर कम हो रहे हैं।
9. एकाधिकारी प्रबन्ध के कारण शिक्षकों में तनाव रहता है।

निजीकरण के विपक्ष में लोगों का कहना है कि शिक्षा के निजीकरण से सरकार अपने शैक्षिक दायित्व से अलग होना चाहती है। साथ ही वह देश में नवीन आभिजात्य वर्ग की स्थापना करना चाहती है। जो भारतीयों को पुनः दो वर्गों में विभक्त कर सके — नवीन आभिजात्य वर्ग जो उत्तम प्रकार की सुख-सुविधाओं का भोग करने में समर्थ हो और दूसरा जो इन सुविधाओं से विहीन रहे। प्रथम वर्ग पैसे के बलबूते अपने समस्त कार्य करा सकता है। परन्तु दूसरा वर्ग क्षमताओं के होते हुए भी अपनी क्षमताओं का विकास नहीं कर पाता क्योंकि वह उस शिक्षा को प्राप्त करने में असमर्थ है।

बोध प्रश्न -

प्र. 3 शिक्षा क्यों मँहगी हो गयी है?

उत्तर-.....
.....
.....

प्र. 4 शिक्षकों का शोषण किस प्रकार होता है?

उत्तर-.....
.....
.....

प्र. 5 निजीकरण का विरोध लोग क्यों करते हैं?

उत्तर-.....
.....
.....

8.7 निजीकरण के लिए सुझाव

सरकारें निरन्तर बढ़ते बोझ की दुहाई देकर शिक्षा के दायित्व से मुँह मोड़ने के अवसरों को तलाश करती रहती है। यही कारण है कि हम अभी तक चौदह वर्ष तक आयु के बालकों के लिये अनिवार्य निःशुल्क एवं सार्वभौम शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर पाये। सभी को उच्च शिक्षा के समान अवसर नहीं उपलब्ध कराये पाये। ऐसी स्थिति में निःसन्देह निजीकरण ही एक ऐसा सहारा है जो शिक्षा को सार्वजनिक बना सकता है। निजीकरण में मुनाफाखोरी तथा आर्थिक शोषण पर नियंत्रण रखने के साथ साथ शैक्षिक स्तर के निर्माण तथा सर्वसुलभ बनाने के लिये इन सुझावों पर ध्यान देना आवश्यक है -

1. निजीकरण में मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति पर रोक लगाई जाये।
2. शिक्षा का धर्मार्थ स्वरूप विकसित हो।
3. मान्यता देते समय इस बात का ध्यान रखा जाये कि ऐसी संस्थाओं में प्रशासनिक विभाग, समाज, छात्रों तथा अध्यापकों का प्रतिनिधित्व हो। इन प्रतिनिधियों के सशक्त अधिकार हों।
4. शिक्षकों की सेवा शर्तों का संरक्षण सरकार द्वारा किया जाये।
5. प्रयोगशाला, वर्कशाप, खेल के मैदान, पुस्तकालय, कम्प्यूटर, लैब तथा अन्य सुविधायें हों।
6. शिक्षकों तथा अभिभवाकों का आर्थिक शोषण न हो।
7. निजीकरण द्वारा शिक्षा संस्थायें, संस्थाओं के रूप में चलाई जायें, न कि दुकानों के रूप में।
8. संस्थायें स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम तैयार करें।

9. प्रजातांत्रिकता की भावना विकसित की जाये।

अतः हमें विश्वास है कि यदि ये सुझाव अपनाये जाये तो निजीकरण शिक्षा के प्रसार में बाधक नहीं होगा।

8.8 सारांश

जो क्रियाएँ या पूर्व में सरकार द्वारा संचालित किये जाते हैं? जब उनको किसी निजी कम्पनी या संस्था को सौंप दिया जाता है तो इस हस्तान्तरण की प्रक्रिया को निजीकरण की प्रक्रिया कहा जाता है। शिक्षा का निजीकरण तथा शिक्षा का व्यवसायीकरण दो अलग अलग धारणाएँ हैं। वित्त विहीन संस्थाओं को मान्यता देकर निजीकरण की प्रक्रिया को त्वरित किया जा रहा है। शिक्षा के निजीकरण के फलस्वरूप शिक्षा का प्रसार हो रहा है एवं देश का धन सकारात्मक कार्यों में लगा रहा है। इसका दूसरा पक्ष यह है कि निजीकरण के फलस्वरूप शिक्षा व्यापार हो गयी है। तथा शिक्षा के मँहगी होने का कारण भी निजीकरण ही है।

किन्तु यदि स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम तैयार हो, शिक्षा का धर्मार्थ स्वरूप विकसित हो तो निजीकरण शिक्षा के प्रसार में सहयोग प्रदान करेगा।

8.9 अभ्यास प्रश्न

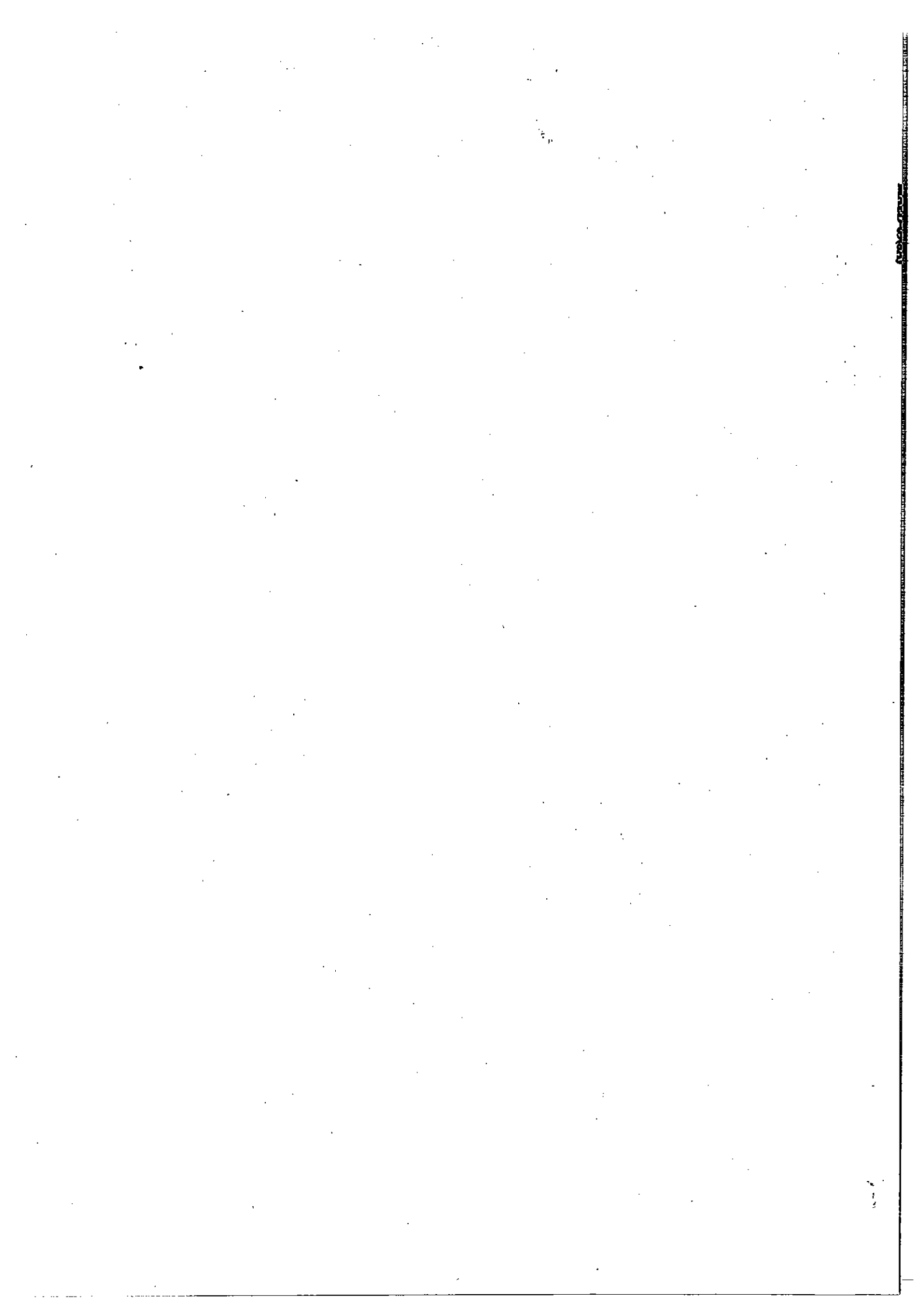
1. निजीकरण के स्वरूप की व्याख्या कीजिये।
2. निजीकरण से होने वाले लाभों तथा हानियों का विश्लेषण कीजिए।
3. निजीकरण 'शिक्षा के सार्वभौमीकरण' में सहायक है विवेचना कीजिये।

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

- उ.1 बहु राष्ट्रीय कम्पनियों
- उ. 2 राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद
- उ. 3 निजीकरण के फलस्वरूप
- उ. 4 शिक्षकों को पूरा वेतन तथा शैक्षिक सुविधायें न देकर।
- उ. 5 निजीकरण से सरकार अपने शैक्षिक दायित्व से अलग होना चाहती है।

8.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. पाठक, पी.डी. "भारतीय शिक्षा एवं उसकी समस्याएँ" विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा— 2007.
2. पाण्डेय, राम शकल, "उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक" विनोद पुस्तक, आगरा, 2006
3. गुप्ता, एस.पी. एवं गुप्ता अल्का, "भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।



MAED-09 शिक्षा में समसामयिक मुद्दे

खण्ड-1 विचारणीय मुद्दे

- इकाई-1 प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण
- इकाई-2 पाठ्यक्रम विकास
- इकाई-3 सूचना एवं संचार तकनीकी का उपयोग
- इकाई-4 गुणवत्ता उन्नयन

खण्ड-2 शैक्षिक प्रवृत्तियाँ

- इकाई-5 गैर सरकारी संगठनों की भूमिका
- इकाई-6 मानवाधिकार
- इकाई-7 वैश्वीकरण
- इकाई-8 निजीकरण

खण्ड-3 सामयिक शैक्षिक प्रत्यय - I

- इकाई-9 व्यवसायिक शिक्षा
- इकाई-10 अध्यापक शिक्षा
- इकाई-11 विशिष्ट शिक्षा
- इकाई-12 मूल्य शिक्षा

खण्ड-4 सामयिक शैक्षिक प्रत्यय - II.

- इकाई-13 स्वास्थ्य शिक्षा
- इकाई-14 जनसंख्या शिक्षा
- इकाई-15 पर्यावरण शिक्षा
- इकाई-16 शांति शिक्षा

खण्ड परिचय-3 : सामयिक शैक्षिक प्रत्यय-1

इकाई-9 व्यावसायिक शिक्षा में व्यक्ति को एक विशेष प्रशिक्षण प्रदान कर उस व्यावसाय के लिए आवश्यक कौशलों में दक्ष बनाया जाता है। व्यावसायिक शिक्षा के प्रसार को सही गति तभी प्रदान की जा सकती है कि जबकि इसके लिए जो निर्धारित धनराशि है वह इसकी आवश्यकतानुसार हो जिसके लिये उन विकल्पों का चयन करना चाहिये जिनसे धन की प्राप्ति हो। व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए अनेक सरकारी प्रशिक्षण संस्थान हैं जोकि इसका प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। इन संस्थाओं की कुशलता बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि उन्हें स्वायत्तता प्रदान करते हुए नियंत्रित किया जाये। साथ ही पाठ्यक्रम में नवीनीकरण, बुनियादी सुविधाओं की प्राप्ति जैसी बातों पर ध्यान दिया जाये। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) और अनेक समितियों ने पूर्व व्यावसायिक शिक्षा देने की बात पर बल दिया है जिससे नवीन तकनीक के माध्यम से पाठ्यक्रम पढ़ाया जा सके।

इकाई-10 शिक्षा प्रदान करने में अध्यापकों की भूमिका अग्रणी है। अध्यापक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य भी अध्यापक शिक्षा में ऐसे को सम्मिलित करना है जो उन मूल्यों को बढ़ाये जो भारतीय संस्कृति के प्रमुख अंग हैं व समाज में नये परिवर्तन लाने में सहायक हो। अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में अनेक कठिनाइयाँ हैं। इसलिये पूर्व प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में उन तत्वों को शामिल किया गया है जो प्रत्येक स्तर के अध्यापकों में अपेक्षित योग्यताओं व कौशलों का विकास कर सके।

अध्यापक शिक्षा के विकास के लिये अनेक राष्ट्रीय स्तर की एवं राज्य स्तरीय एजेन्सियों की स्थापना स्वतंत्रता के बाद की गयी है। इन एजेन्सियों ने अध्यापक शिक्षा में होने वाले सुधारों के बारे में अनेक उपयोगी सुझाव दिये हैं जो अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रम को प्रभावी बनाने में सहायक है। शिक्षा के प्रसार में जिस तरह अनेक समस्याएँ हैं फिर चाहे ये समस्याएँ अध्यापकों के चयन से सम्बन्धित हो, उनकी नीतियों से जुड़ी हो, प्रशासनिक हो या आर्थिक अपर्याप्ता से जुड़ी हो कहीं न कहीं अध्यापक शिक्षा के विस्तार में बाधा उत्पन्न कर देती है।

इकाई-11 प्रत्येक अध्यापक की कक्षा में कुछ विशिष्ट बालक होते हैं। इन विशिष्ट बालकों को उन शैक्षिक सुविधाओं द्वारा जो कि सामान्य बालकों को दी जाती है, पूर्णतया लाभान्वित नहीं किया जा सकता है। इनके लिए विशेष शिक्षा का आयोजन अनिवार्य है। अतः अध्यापक को यह ज्ञान होना चाहिए कि विशिष्ट बालक कौन हैं और उनके प्रति हमारे शैक्षिक कर्तव्य क्या है। उन्हीं कर्तव्यों के निर्वाह स्वरूप विशिष्ट शिक्षा को एक विस्तृत स्वरूप प्रदान किया गया है। विशिष्ट शिक्षा में विशिष्ट बालकों की आवश्यकताओं एवं समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उचित पाठ्यक्रम का निर्धारण आवश्यक है जिसमें पाठ्य सहगामी क्रियाएँ एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण शामिल हो।

इकाई-12 मूल्य परक शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति के समग्र और संतुलित व्यक्तित्व विकास जिससे वह नैतिक निर्णय की क्षमता जाग्रत कर सके। स्वतंत्रयोत्तर काल में विभिन्न आयोगों ने मूल्य शिक्षा पर बल दिया। विश्वविद्यालय आयोग (1984) ने अध्यात्मक परक नैतिक शिक्षा पर बल दिया। माध्यमिक आयोग (1952) ने धार्मिक और नैतिक शिक्षा देने पर बल दिया। आदर्शवाद ने मूल्यपरक शिक्षा की स्थापना पर विशेष बल दिया। यथार्थवाद ने वास्तविकता के धरातल पर नैतिक शिक्षा पर बल दिया। प्रकृतिवाद ने नैतिक शिक्षा के वैज्ञानिक पक्ष का उद्घाटन किया और प्रयोजनवाद नैतिक शिक्षा में उन नैतिक मूल्यों को महत्व देता है जो उपयोगितावाद की तुलना पर खरे उतरे। नैतिक शिक्षा प्रदान करने विभिन्न अभिकरण हैं। परिवार शिशु की प्रथम पाठशाला है। नैतिक मूल्यों का संरक्षण संप्रेषण और सृजन करना परिवार का प्रथम दायित्व है। विद्यालय में विभिन्न क्रियाओं के माध्यम से नैतिक शिक्षा प्रदान की जा सकती है।

इकाई 09 : व्यवसायिक शिक्षा

संरचना

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 उद्देश्य
- 9.3 व्यवसायिक शिक्षा का संप्रत्यय तथा अर्थ
- 9.4 व्यावसायिक शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त
- 9.5 व्यावसायिक शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- 9.6 व्यवसायिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में सम्मिलित पाठ्यक्रम
- 9.7 व्यावसायिक प्रशिक्षण से संबंधित कुछ सिफारिशें
- 9.8 व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा वित्त प्रबन्धन
- 9.9 व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थान
- 9.10 पूर्व-व्यावसायिक शिक्षा
- 9.11 पूर्व - व्यावसायिक योजना की विशेषताएं
- 9.12 व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा सीखने की विधि
- 9.13 सारांश
- 9.14 अभ्यास - कार्य
- 9.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 9.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना

व्यावसायिक शिक्षा या व्यवसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण को कैरियर या तकनीकी शिक्षा कहा जाता है, जो कि प्रशिक्षु को उन व्यवसायों के लिए तैयार करती है, जो मैन्युअल या व्यावहारिक गतिविधियों, पारंपरिक गैर शिक्षा पर आधारित हैं और पूरी तरह एक विशिष्ट गैर शिक्षण पर आधारित हैं और पूरी तरह से एक विशिष्ट व्यापार, व्यवसाय या व्यवसाय से सम्बन्धित नौकरियों के लिये शिक्षार्थियों को तैयार करती है। इसे कभी-कभी तकनीकी शिक्षा के रूप में संदर्भित किया जाता है, जिसमें शिक्षार्थी सीधे तकनीक या प्रौद्योगिकी को एक विशेष समूह में विशेषज्ञता विकसित करता है। भारत में

व्यावसायिक या प्राविधिक शिक्षा की परम्परा बहुत पुरानी हैं। किन्तु प्राचीन काल में पुश्तैनी व्यापार की शिक्षा बालक अधिकतर घर पर ही अपने माता-पिता से प्राप्त कर लेते थे। भारत में गरीबी, निरक्षरता और असंगठित क्षेत्र के वर्चस्व के कारण व्यावसायिक शिक्षा और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। इस इकाई में व्यावसायिक शिक्षा के संप्रत्यय सिद्धान्त, व्यावसायिक शिक्षा का इतिहास, व्यावसायिक शिक्षा में सम्मिलित पाठ्यक्रम व व्यावसायिक शिक्षा से सम्बन्धित सिफारिशों आदि का उल्लेख किया गया है।

9.2 प्रस्तावना

इस इकाई का अध्ययन करके आप इस योग्य हो जायेंगे कि -

- व्यावसायिक शिक्षा की संकल्पना समझ सकेंगे।
- व्यावसायिक शिक्षा के सिद्धान्तों को समझ सकेंगे।
- व्यावसायिक शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से अवगत हो सकेंगे।
- व्यावसायिक शिक्षा में सम्मिलित पाठ्यक्रम को जान सकेंगे।
- व्यावसायिक शिक्षा के लिए आयोगों द्वारा की गयी सिफारिशों की विवेचना कर सकेंगे।
- व्यावसायिक शिक्षा में वित्त प्रबन्धन की भूमिका समझ सकेंगे।
- व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थानों के कार्यों से परिचित हो सकेंगे।

9.3 व्यावसायिक शिक्षा का संप्रत्यय तथा अर्थ

व्यावसायिक शिक्षा की उत्पत्ति पूर्वकाल से चल रहे कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण से ही मानी जाती है। इस संप्रत्यय के अनुसार ऐसी कोई भी शिक्षा या प्रशिक्षण जो कार्यकर्ताओं को अपने कार्य में दक्ष बनाये वह व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत आता है। इसका आधार यह भी माना जाता है कि सभी मनुष्यों की क्षमतायें व रुचियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं, उनको पारम्परिक पाठ्यक्रम पढ़ाने की अपेक्षा यदि उनकी क्षमता व रुचि के अनुसार किसी व्यवसाय का प्रशिक्षण दिया जाये तो वह उनके लिये अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

व्यावसायिक शिक्षा का अर्थ यह भी माना जाता है कि यह वह शिक्षा है जो शारीरिक कार्य के लिये दी जाती है। यह प्रत्यय उन कार्यों पर केन्द्रित है, जिनमें

मानसिक दक्षता की अपेक्षा शारीरिक श्रम पर अधिक महत्व दिया जाता है। इस संप्रत्यय से ही वर्तमान समय की इस अवधारणा का जन्म माना जाता है, जिसके अन्तर्गत समाज के अपेक्षित वर्ग, शारीरिक रूप में अपंग, तथा वे बालक जो किन्हीं कारणों से बीच में छोड़ देते हैं उन्हें किसी न किसी प्रकार के व्यावसायिक प्रशिक्षण देने की बात कही जाती है।

तीसरे अर्थ के अनुसार व्यावसायिक शिक्षा ऐसी विशिष्ट विषयों की शिक्षा है जो कि व्यावसायिक और तकनीकी प्रगति के हों। यह शिक्षा अधिकतर माध्यमिक स्तर पर सामान्य शिक्षा के साथ जोड़कर ही दी जाती है। ऐसी व्यावसायिक शिक्षा सामान्य शिक्षा को विस्थापित नहीं करती है अपितु उसकी कमियों को दूर करती है। इस प्रकार की मिली जुली शिक्षा में सांस्कृतिक सामाजिक तथा व्यावसायिक तीनों पक्षों का विकास हो जाता है।

व्यावसायिक शिक्षा के एक अन्य अर्थ के अनुसार व्यावसायिक शिक्षा वह शिक्षा है जो हस्तशिल्प से संबंधित होती है। इस प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य अधिगमकर्ता को किसी एक विशिष्ट हस्तशिल्प में प्रशिक्षण देना होता है, जिसमें वह अपना जीवन यापन कर सकें। इस प्रकार की शिक्षा में शैक्षिक और सांस्कृतिक पक्ष की अपेक्षा भी की जाती है। इस प्रकार की शिक्षा आई०आई०टी० तथा पालीटेक्निक में दी जाती है।

इसके अतिरिक्त एक अन्य पहलू के अनुसार व्यावसायिक शिक्षा ऐसी शिक्षा है जो उत्पादक उद्देश्यों तथा समाजोपयोगी कार्यों के लिए दी जाये। जब कोई उत्पादक उपभोक्ता के प्रयोग के लिये बनाया जाता है, तो उस उत्पादन को उत्पादक कार्यों के लिए कहा जाता है। यह प्रत्यय आधुनिक प्रत्यय माना जाता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति को निरन्तर नई तकनीकों का ज्ञान व प्रशिक्षण दिया जाता है। जिससे उसके कार्य की उत्पादन क्षमता बढ़ सकें। बढ़ते हुए औद्योगिककरण के कारण इस प्रकार की शिक्षा का महत्व बढ़ता जा रहा है। यह संप्रत्यय वर्तमान समय के आधुनिक विचारधारा से मेल खाता है। आधुनिक विचारधारा के अनुसार व्यावसायिक शिक्षा से तात्पर्य "व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दी जाने वाली शिक्षा से है।

इस संप्रत्यय का आधार इस अवधारणा को भी माना जाता है कि वह सभी शिक्षा जो देश की जनसाधारण से जुड़ी हो उसका आकलन उसकी उपयोगिता से ही किया जा

सकता है। इस प्रकार की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य दक्ष कार्यकर्ता तथा उत्तम नागरिक का विकास करना होता है।

उपरोक्त सभी संप्रत्यय व्यावसायिक शिक्षा के विभिन्न पक्षों, अर्थों तथा उद्देश्यों को उजागर करते हैं। इन सभी प्रत्ययों का सर्वेक्षण करने पर ज्ञात होता है कि व्यावसायिक शिक्षा में यह परिवर्तन देश काल, सामाजिक स्थिति, आर्थिक विकास के कारण होते हैं।

सतत औद्योगिकरण तथा मशीनों के अधिक प्रयोग के कारण इन पर कार्य करने वाले देश व्यक्तियों की आवश्यकतायें भी बढ़ रही हैं। यही कारण है कि व्यावसायिक संस्थाओं की संख्या निरन्तर बढ़ रही है तथा व्यावसायिक शिक्षा का लगातार विस्तार हो रहा है।

9.4 व्यावसायिक शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त

शिक्षा के सिद्धान्त नीति निर्धारक प्रक्रिया तय करने में उपयोगी होते हैं। यह सभी सिद्धान्त पूर्व अनुभवों द्वारा निर्धारित तथा संतोषजनक एवं प्रभावी सिद्ध हुए हैं। निम्नांकित सिद्धान्त डॉ० चार्ल्स जो कि यू०एस०ए० में व्यावसायिक शिक्षा के समर्थक हैं द्वारा दिये गये हैं:-

1. व्यावसायिक शिक्षा तभी प्रभावपूर्ण होगी जब व्यावसायिक शिक्षा संस्थाओं का वातावरण कार्य करने वाली संस्थाओं के वातावरण से मेल खाता हो।
2. प्रभावी व्यावसायिक शिक्षा के लिये प्रशिक्षण उचित मशीनों तथा उपकरणों के साथ दिया जाना चाहिये।
3. यह आवश्यक है कि व्यावसायिक शिक्षा में प्रशिक्षार्थियों के मानसिक चिंतन व रचनात्मक प्रवृत्तियों का भी विकास किया जाये।
4. व्यावसायिक शिक्षा अथवा किसी व्यवसाय की शिक्षा केवल उसी चयनित ग्रुप को दी जानी चाहिए, जिसको उसकी आवश्यकता हो तथा वह उनके लिये उपयोगी हों।
5. व्यावसायिक शिक्षा प्रभावपूर्ण मानी जायेगी, जबकि प्रशिक्षार्थियों को अपनी योग्यताओं, रुचियों तथा प्रवृत्तियों के अनुसार व्यवसाय का चयन करने की स्वतन्त्रता दी जाये।
6. व्यावसायिक शिक्षा निर्देशक उचित शैक्षिक अहर्ताओं वाले पर्याप्त अनुभव युक्त तथा पूर्ण कौशल दक्ष होने चाहिए।

7. व्यावसायिक शिक्षा को व्यक्तिगत तथा सामाजिक रूप से प्रभावी बनाने के लिये आवश्यक है कि वह केवल प्रशिक्षण देने तक सीमित न रहे वरन् प्रशिक्षार्थियों को आजीविका भी उपलब्ध कराये।
8. व्यावसायिक शिक्षा में लचीलापन होना चाहिए जिससे कि वह उद्योगों में तथा बाजार में हो रहे परिवर्तनों के अनुसार नयी तकनीकों का भी प्रशिक्षण दे सकें।
9. व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत हर विशिष्ट व्यवसाय के अनुसार सैद्धान्तिक पक्ष पाठ्यवस्तु के अनुसार अवश्य पढ़ायी जानी चाहिए।
10. व्यावसायिक शिक्षा स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली होनी चाहिये।
11. व्यावसायिक शिक्षा के प्रशासन में भी लचीलापन होना चाहिए।
12. व्यावसायिक शिक्षा में यह प्रयास करना चाहिए कि प्रशिक्षार्थी को अधिक व्यय न करना पड़े।

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर लिखिए।

ख) उत्तरों की जांच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्र01 व्यावसायिक शिक्षा से क्या तात्पर्य है?

उ0
.....
.....

प्र02 व्यावसायिक शिक्षा के सिद्धान्त लिखिये?

उ0
.....
.....

9.5 व्यावसायिक शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि -

भारत में व्यावसायिक शिक्षा की परम्परा काफी पुरानी है। किन्तु पुश्तैनी व्यावसाय की शिक्षा बालक अधिकतर घर पर ही अपने माता-पिता से प्राप्त कर लेते थे। संगठित रूप में व्यावसायिक शिक्षा ब्रिटिश युग की देन है। व्यावसायिक शिक्षा के इतिहास को मुख्यतः दो चरणों में देखा जा सकता है-

1. स्वतन्त्रता पूर्व व्यावसायिक शिक्षा

2. स्वतन्त्र भारत में व्यावसायिक शिक्षा

स्वतन्त्रता पूर्व व्यावसायिक शिक्षा

भारत में व्यावसायिक शिक्षा का प्रारम्भ तब देखते हैं जब कुछ तत्कालीन कालेजों एवं विद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा एवं प्राविधिक शिक्षा देने के लिए विशेष विभाग खुले। सन् 1854 के वुड डिस्पैच के समय व्यावसायिक शिक्षा के विषय में स्वयं अंग्रेजों में मतभेद था। सन् 1857 में कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई में विश्वविद्यालय खुले जो इंजीनियरिंग एवं मेडिकल साइंस की भी परीक्षा लेते थे और सफल छात्रों को उपाधि देते थे।

सन् 1877-78 में 'दुर्भिक्ष आयोग' ने व्यावसायिक शिक्षा को बहुत महत्वपूर्ण बताया, किन्तु सरकार ने इसकी ओर फिर भी ध्यान नहीं दिया। इस समय तक कम्पनी का शासन समाप्त हो गया था और भारत सरकार का शासन सीधे ब्रिटिश सम्राट के अधीन हो गया था।

भारत सरकार ने सन् 1886 ई० में एक स्मृति पत्र तैयार कराया जो प्राविधिक शिक्षा के ही विषय में था। 1882 में नियुक्त हन्टर कमीशन ने भी सिफारिश की थी कि माध्यमिक शिक्षा की अन्तिम कक्षाओं में व्यावसायिक शिक्षा का भी प्रबन्ध किया जाये। सन् 1887 में राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने व्यावसायिक शिक्षा की मांग की थी।

सन् 1888 में प्रस्तुत शिक्षा-विवरण में भी इस शिक्षा पर ध्यान दिलाया गया था कि इसमें सिफारिश की गई थी कि माध्यमिक कक्षाओं में ड्राइंग और विज्ञान पढ़ाया जाये। सरकार की नीति थी कि टेकनिकल शिक्षा के लिये अलग से विद्यालय न खोले जाये और माध्यमिक शिक्षा के एक अंग के रूप में ही प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा दी जाये।

सन् 1904 के कर्जन शिक्षा-प्रस्ताव में व्यावसायिक शिक्षा के विषय में कई महत्वपूर्ण बातें थी। इसमें कहा गया था कि व्यावसायिक शिक्षा को देश की व्यावसायिक आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिये न कि केवल इंजीनियर ओवरसियर डॉक्टर, अध्यापक, मिस्त्री और कारीगर के सरकारी पदों के लिए तैयार करने चाहिये।

सन् 1921 से 1937 के बीच माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में कृषि को सम्मिलित किया गया। कानून की शिक्षा में भी प्रगति हुई लगभग सभी विश्वविद्यालयों में कानून का पृथक विभाग था। चिकित्सा की शिक्षा भी लोगों को आकर्षित कर रही थी। देशी चिकित्सा-पद्धति को भी प्रोत्साहन मिला। कॉमर्स की शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया

गया। कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, प्रयाग, पंजाब, ढाका तथा आगरा विश्वविद्यालय में कॉमर्स विभाग स्थापित हुए, जिनमें स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा का प्रबंध किया गया। इस काल में इंजीनियरिंग की शिक्षा में भी प्रगति हुई। छात्रों की संख्या ढाई गुनी हो गई और इंजीनियरिंग कालेजों की संख्या दूनी हो गई। इंजीनियरिंग कालेजों के पाठ्यक्रम की अवधि चार या पाँच वर्ष थी।

व्यावसायिक शिक्षा पर परामर्श के लिये भारत सरकार ने वुड एवं एबेट को 1937 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने को कहा। वुड ने यह विचार प्रकट किया था कि प्रारंभिक एवं माध्यमिक शिक्षा में कला, हस्ताकला कष्ठकला, कृषि पर अधिक बल दिया जाये। इससे छात्र व्यावसायिक शिक्षा में रूचि लेंगे। एबेट के अनुसार प्रान्त को स्थानीय आवश्यकता के अनुरूप व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिये।

सन् 1943ई0 में केन्द्रीय शिक्षा सलाकार समिति द्वारा नियुक्त कई उपसमितियों ने अपने क्षेत्र की शिक्षा में कुछ योजनाएँ प्रस्तुत की। सार्जेन्ट रिपोर्ट में टेकनिकल हाईस्कूल की स्थापना का उल्लेख किया गया। रिपोर्ट में व्यावसायिक शिक्षा के प्रत्येक पहलू पर विचार व्यक्त किया गया।

मार्च 1947 में एक अन्य समिति नियुक्त की गई जिसने देश की आवश्यकता की पूर्ति के लिये अनेक इंजीनियरों एवं प्राविधिक शिक्षा विशारदों की शिक्षा पर बल दिया। इस समिति को 'वैज्ञानिक जनशक्ति समिति' के नाम से पुकारा गया। उसी वर्ष पन्द्रह अगस्त को देश स्वतन्त्र हो गया।

स्वतंत्रत भारत में व्यावसायिक शिक्षा

व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध ब्रिटिश शासनकाल में भी था, किन्तु इस क्षेत्र में विशेष प्रगति नहीं हुई थी। स्वतन्त्र भारत में व्यावसायिक शिक्षा का विकास द्रुतगति से हुआ। कानून की शिक्षा में इण्टरमीडिएट के बाद पाँच वर्ष के पाठ्यक्रम लागू किये गये हैं।

चिकित्सा का क्षेत्र में भारतीय के लिए आकर्षक रहा है। चिकित्सा की शिक्षा दो स्तरों पर दी जाती है- एक डिप्लोमा स्तर पर दूसरा डिग्री स्तर पर। देश की मांग को पूरा करने के लिए नये मेडिकल कालेज खुल रहे हैं। भारत की राजधानी में एक अखिल भारतीय चिकित्सा-विज्ञान-संस्थान स्थापित किया गया है। जिसमें अनुसंधान की विशेष सुविधा है। देश में आयुर्वेदिक, यूनानी और होम्योपैथिक चिकित्सा-विधियों की शिक्षा देने के लिए अनेक संस्थाएँ हैं।

ललित कलाओं के शिक्षा की भी देश में व्यवस्था है। संस्थानों में इन कलाओं में पाठ्यक्रम तो है ही, इनके लिए पृथक संस्थाएँ भी हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् कृषि-शिक्षा के प्रसार का लक्ष्य रखा गया है। निजी क्षेत्र में नये मेडिकल कालेज, कृषि कालेज आदि की स्थापना की जायेगी। स्नातक स्तर के पंचवर्षीय नवीन पाठ्यक्रम को अधिकाधिक संस्थाओं में लागू किया जायेगा। नयी संस्थाओं में स्नातकोत्तर कार्य की व्यवस्था होगी और अनुसंधान कार्य में अधिक सुविधाएं प्रदान की जायेगी। इससे स्पष्ट होता है कि सरकार द्वारा भी व्यावसायिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा।

कोठारी आयोग (1964) के द्वारा इस बात की सिफारिश की गयी कि उच्च माध्यमिक शिक्षा में जाने वाले 50 प्रतिशत छात्रों को व्यावसायिक धारा में बांट दिया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986-92) ने पुनः इस लक्ष्य को 25 प्रतिशत कर दिया जिसे 2000 तक प्राप्त किया जाने का लक्ष्य निश्चित किया गया। लेकिन मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा संचालित एक सर्वेक्षण में इसे 4.8 प्रतिशत कर दिया गया।

यह स्थिति भारत में लगभग सभी राज्यों में गंभीर है। पश्चिम बंगाल देश के उन पहले कुछ राज्यों में से एक है जिसने उच्च माध्यमिक स्तर पर 1976 में एक राष्ट्रीय स्तर के निर्णय के बाद व्यावसायिक शिक्षा लागू करने के लिए गया था। यह पाँच क्षेत्रों- कृषि (चार पाठ्यक्रम), उद्योग (दो पाठ्यक्रम), तकनीकी (आठ पाठ्यक्रम) पैरामैडिकल (तीन पाठ्यक्रमों के साथ) और व्यापार व वाणिज्य (10 पाठ्यक्रम) में शुरू कर दिया गया। लेकिन दो शाखायें उद्योग और पैरामैडिकल सही ढंग से संचालित नहीं की जा सकी।

पश्चिम बंगाल उच्च माध्यमिक परिषद द्वारा 2002 में किये गये सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि मात्र 0.64 प्रतिशत उच्च माध्यमिक स्तर के छात्रों ने (386406 में से 2469) व्यावसायिक धारा को चुना। यह परिदृश्य बहुत अच्छा नहीं था। 2001 में यह 0.70 प्रतिशत तथा 2000 में 0.76 प्रतिशत था, यह वास्तव में कम हो रहा है। लेकिन वास्तव में व्यावसायिक शिक्षा की व्यवहार्य प्रणाली तथा आज के वैश्वीकृत दुनिया में जहाँ रोजगार के अवसर निरंतर बढ़ते जा रहे हैं, व्यावसायिक शिक्षा ने स्वरोजगार की आवश्यकता को बढ़ा दिया है।

इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए स्कूल शिक्षा समिति, 2001 में पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा श्री रंजू गोपाल मुखोपाध्याय की अध्यक्षता में स्थापित समिति से

राज्य से व्यावसायिक शिक्षा की संभावनाओं पर गौर करने के लिए कहा गया साथ ही समिति द्वारा एक अच्छी तरह से डिजाइन किया हुआ प्रस्ताव तैयार किया गया, जो स्कूल शिक्षा के विभिन्न चरणों के लिये उपयोगी तथा आकर्षक हों। यह प्रस्ताव विशेष रूप से कक्षा 8वीं तथा कक्षा 10वीं तक तथा 11वीं के लिये है।

कई राज्यों का दौरा तथा पंडित सुन्दरलाल शर्मा सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ वोकेशनल एजुकेशन से समन्वय के बाद समिति का मानना था कि लगभग सभी केन्द्र विभिन्न समस्याओं जैसे सफेद-कॉलर नौकरियों को प्राथमिकता, बुनियादी माल की अनुपलब्धता, गतिशीलता के लिए स्थान न होना शिक्षा के लिए उपयुक्त कार्यन्वयन का न होना आदि। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण खामियों में नियमित बाजार सर्वेक्षण प्रासंगिक अन्वयन, पूर्णकालीन योग्य शिक्षकों की कमी तथा संस्थान एवं छात्रों दोनों प्रकार स्थानीय आवश्यकताओं का समुचित मूल्यांकन किये बिना गलत पाठ्यक्रमों का चयन मुख्य समस्या है।

समिति द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा और अनुसंधान परिषद के हाल के दिशा निर्देशों के अनुरूप कार्य किया जा रहा है, जिसके अनुसार व्यावसायिक शिक्षा के कार्यक्रमों को उच्चतर माध्यमिक स्तर से शुरू किया जाना चाहिए। जबकि पूर्व व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को अनिवार्य शिक्षा के साथ प्रारम्भ किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त वैकल्पिक पूर्व व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को कक्षा 9 तथा 10 एवं अंत में व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को कक्षा 11 एवं 12 से प्रारम्भ किया जाना चाहिये।

बेरोजगारी की बढ़ती समस्या को ध्यान में रखते हुए योजना आयोग ने 2000 में दसवीं पंचवर्षीय योजना के लिए एक अलग कार्यालय व्यावसायिक शिक्षा पर गठित किया। विभिन्न आई0टी0आई0 संस्थानों को देश भर में खोला गया। व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ावा देने के दृष्टिकोण से वर्तमान परिदृश्य की प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए विभिन्न नये पाठ्यक्रम खोले गये।

9.6 व्यावसायिक शिक्षण पाठ्यक्रमों में सम्मिलित पाठ्यक्रम

1. टंकण
2. आशुलिपि
3. साचिविक प्रथाएँ
4. कम्प्यूटर ऑपरेटर और कार्यक्रम सहायक

5. आर्किटेक्चरल ड्राफ्टमैन
6. डेस्क टॉप पब्लिशिंग
7. इलेक्ट्रिकल तकनीशियन
8. इलेक्ट्रानिक्स (रेडियो/टी.वी./टैप रिकॉर्डर मैकेनिक)
9. रेफ्रिजेशन और एयर कंडीशनिंग
10. प्लम्बरिंग
11. पुस्तकालय सहायक
12. काटना / सिलाई व वस्त्र निर्माण
13. हेयर एण्ड स्किन केयर
14. फलों व सब्जियों का संरक्षण कार्यक्रम

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में उत्तर लिखे।

ख) उत्तरों की जांच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्र03 स्वतंत्रता से पूर्व व्यावसायिक शिक्षा के लिए किस आयोग ने संस्तुति दी?

30

.....

.....

.....

प्र04 व्यावसायिक प्रशिक्षण में सम्मिलित पाठ्यक्रमों का उल्लेख कीजिए।

30

.....

.....

.....

9.7 व्यावसायिक शिक्षण में संबंधित कुछ सिफारिशें

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग देश के शिक्षा पटल के एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में व्यावसायिक शिक्षा तथा प्रशिक्षण को मानता है। सरकार व्यावसायिक शिक्षा और

प्रशिक्षण की महत्वपूर्ण भूमिका से परिचित है, इसके लिए कुछ महत्वपूर्ण पहल किये गये हैं। उद्योग समूहों, शिक्षाविदों, समाज सेवकों आदि के सुझावों के अनुसार व्यावसायिक शिक्षा को पूरी तरह से मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अन्तर्गत रखा जाना चाहिए। वर्तमान समय में व्यावसायिक शिक्षा तथा प्रशिक्षण मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अन्तर्गत है।

व्यावसायिक शिक्षा तथा प्रशिक्षण को मुख्यधारा की शिक्षा को जोड़ने की आवश्यकता है, इसके निम्न कदम उठाये जा सकते हैं।

1. सामान्य शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में व्यावसायिक शिक्षा प्रशिक्षण को बनाये रखना चाहिए, जिससे एक स्तर के बाद छात्र की मुख्यधारा की शिक्षा में लौटने की संभावना बनी रहे।
2. प्रशिक्षण संस्थानों और पॉलिटेक्निक में विभिन्न शैक्षिक योग्यताओं के छात्रों के लिए पाठ्यक्रम में अलग-अलग धारायें होना चाहिए।
3. कुछ निश्चित व्यवसायों से सम्बन्धित आवश्यकताओं की झलक प्रवेश आवश्यकताओं में परिलक्षित होनी चाहिए। साथ ही कुछ छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा धारा में बहुआयामी प्रवेश तथा निकासी के विकल्पों की भी अनुमति दी जानी चाहिए।
4. कुछ पाठ्यक्रम जो प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर किसी विशेष कौशल प्रशिक्षण से सम्बन्धित हैं उन्हें सभी स्कूलों में शुरू किया जाना चाहिए।
5. व्यावसायिक शिक्षा के कुछ पाठ्यक्रमों को विभिन्न साक्षरता तथा प्रौढ़ शिक्षा योजनाओं में उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
6. वे योजनायें जो कि जीवन पर्यन्त कौशल उन्नयन के लिए हैं। उनसे संबंधित अल्पकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों को भी प्रारम्भ किया जाना चाहिए।
7. व्यावसायिक शिक्षा में बहुआयामी कौशल वाले लोगों के लिए एक अलग वर्ग बनाने में प्रावधान होना चाहिए।

9.8 व्यावसायिक शिक्षा तथा वित्त प्रबंधन

सरकार को व्यावसायिक शिक्षा के विकास के लिए आवंटन के माध्यम से और अधिक संसाधनों को आवंटित करने की आवश्यकता है। प्रति व्यक्ति व्यय के रूप में व्यावसायिक शिक्षा सामान्य शिक्षा से ज्यादा महंगी होती है। लेकिन सामान्य माध्यमिक

शिक्षा की तुलना में व्यावसायिक शिक्षा पर सार्वजनिक खर्च की गई राशि अत्यंत कम है। विनिर्माण और सेवाओं में कुशल श्रमशक्ति की मांग को देखते हुए सरकार को शिक्षा पर अपने कुल सार्वजनिक खर्च को कम से कम 10-15 प्रतिशत व्यावसायिक शिक्षा पर खर्च करने का लक्ष्य रखना चाहिए। व्यावसायिक शिक्षा तथा प्रशिक्षण आधुनिकीकरण योजना के वित्तपोषण के लिए अतिरिक्त धन जुटाने के लिए कुछ निम्न विकल्प दिये जा सकते हैं-

- छात्र ऋण योजनाओं के साथ युग्मित फीस वृद्धि को लागू करना। इसके साथ ही व्यावसायिक शिक्षा तथा प्रशिक्षण संस्थानों को बाजार की जरूरतों को अनुरूप और उत्तरदायी बनाया जाये।
- नियोक्ताओं पर उपकर के माध्यम से कोष को बढ़ाया जाये (उदाहरण के लिए, सिंगापुर के समान सभी कर्मचारियों के वेतन से 2 प्रतिशत उपकर लिया जा सकता है।
- कम्पनियों को सार्वजनिक व्यावसायिक शिक्षा और कार्यक्रमों के वित्तपोषण के लिए अनिवार्य बनाना।

9.9 व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थान

व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थाओं को किसी भी देश के विकास के लिए रीढ़ की हड्डी माना जाता है। अतः मौजूदा संस्थागत संरचना को मजबूत करना अनिवार्य है। वर्तमान में औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (आई0टी0आई0) तथा औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्रों (आई0सी0टी0) में निम्न स्तर के प्रशिक्षकों, लचीलेपन के अभाव, पुरानी बुनियादी सुविधाओं आदि समस्याओं के लिये जाने जाते हैं। अतः मौजूद संस्थानों में सुधार के लिए कुछ उपाय अपनाये जा सकते हैं।

1. कार्यात्मक स्वायत्तता का विस्तार किया जाना चाहिए। आई0टी0आई0 को और अधिक शक्ति देकर मजबूत करने का प्रयास करना चाहिए। प्रशिक्षण कार्यक्रम बेहतर स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनुकूलित होने चाहिए।
2. आंतरिक और बाह्य कार्य कुशलता के संकेत को प्रस्तावित राष्ट्रीय संस्थान के द्वारा विकसित कर अच्छा प्रदर्शन करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
3. मॉड्यूल साक्षरता, संचार कौशल, उद्यमशीलता तथा अन्य सामान्य कौशल जो कि कार्यस्थल की आवश्यकताओं के लिए प्रासंगिक हैं, उन्हें सभी पाठ्यक्रमों में प्रारम्भ किया जाना चाहिए।

4. विभिन्न पाठ्यक्रमों में विशेषज्ञता के विभिन्न स्तरों के लिए अलग-अलग धारार्यें प्रारम्भ की जानी चाहिए।
5. छात्रों को अपने डिग्री/डिप्लोमा के भाग के रूप में उपकरणों, व्यापार संघों की सदस्यता आदि की पेशकश पर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
6. उद्योग तथा व्यापार भागीदारी को न सिर्फ इंटरनेशिप के स्तर पर बल्कि परीक्षाओं तथा सेवानियमनों के समय भी बढ़ाया जाना चाहिए।
7. पाठ्यक्रम की लगातार निगरानी कर उसे नवीनीकृत करते रहना चाहिए।
8. कौशल तथा पाठ्यक्रमों की समय-समय पर समीक्षा की जानी चाहिए तथा साथ ही साथ वर्तमान में चलाये जा रहे कौशलों की संख्या में वृद्धि किये जाने की भी आवश्यकता है।
9. शिक्षण अंग्रेजी तथा साथ-साथ स्थानीय भाषाओं में भी आयोजित किया जाना चाहिए।
10. बुनियादी सुविधाओं के नियमित रूप से उन्नत किया जाना चाहिए।
11. शिक्षण की गुणवत्ता से भी काफी सुधार किया जाना चाहिए।

9.10 पूर्व - व्यावसायिक शिक्षा

व्यावसायिक शिक्षा के साथ-साथ कुछ स्थितियों में पूर्व-व्यावसायिक शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा के पूर्वाभ्यास के रूप में काम करती हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 और विभिन्न समितियों की सिफारिश के प्रावधानों के अनुसरण में, सी0बी0एस0ई0 ने शैक्षणिक सत्र 1995-96 से अपनी योजना में व्यावसायिक शिक्षा का कक्षा 9 में प्रवाधान किया है।

पूर्व व्यावसायिक शिक्षा के उद्देश्य निम्न हैं :-

1. कक्षा 9 तथा 10 के छात्रों को विषय कौशल में सरल प्रशिक्षण प्रदान करना।
2. उत्पादकता बढ़ाने के लिए व्यावसायिक हितों और अभिवृत्तियों को विकसित करना तथा व्यावसायिक वरीयताओं के लिए आत्मखोज की अनुमति देना।
3. छात्रों की सुगमता के लिए उच्च स्तर व्यावसायिक पाठ्यक्रम का चयन।
4. अकादमिक शिक्षा के एक वांछित आयाम के रूप में कार्य अनुभव में भाग लेने के लिए छात्रों को तैयार करना।

5. कार्य से सम्बन्धित संस्कृतिक निर्माण करना।

9.11 पूर्व - व्यावसायिक योजना की विशेषतायें

पूर्व-व्यावसायिक योजना की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं -

1. पूर्व-व्यावसायिक शिक्षा कार्य अनुभव के स्थान पर प्रस्तुत की जा सकती है।
2. प्रति सप्ताह कम से कम 6 कालांश पूर्व व्यावसायिक शिक्षा के लिए आवंटित किये जायेंगे।
3. पूर्व-व्यावसायिक शिक्षा को उन स्कूलों में ही शुरू किया जाये। जहाँ पर व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को संचालित किया जा रहा है। साथ ही जहाँ चयनित पूर्व व्यावसायिक शिक्षा के लिए नियमित मूलभूत सुविधायें उपलब्ध हैं।
4. पूर्व-व्यावसायिक शिक्षा के निम्न माध्यमिक स्तर पूर्व हो जाने पर उत्तीर्ण अभ्यर्थियों को संबंधित विषय पाठ्यक्रम में कौशल हासिल हो जाना चाहिये।
5. पूर्व-व्यावसायिक शिक्षा चयनित स्कूलों में ही एक प्रायोगिक आधार पर देने की पेशकश की जानी चाहिये। एक पूर्व व्यावसायिक पाठ्यक्रम शुरू करने से पूर्व अनुमोदन ले लेना चाहिए।
6. मूल्यांकन की योजना कार्य अनुभव के समान होनी चाहिए। कक्षा 9 तथा 10 में मूल्यांकन स्कूल के द्वारा किया जायेगा। स्कूल के द्वारा दिये गये 10वीं कक्षा के ग्रेड्स को बोर्ड के प्रमाणपत्र पर संबंधित पाठ्यक्रम के शीर्षक के साथ प्रस्तुत किया जायेगा।

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में उत्तर लिखे।

ख) उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्र05 राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने व्यावसायिक शिक्षा के बारे में क्या संस्तुतियां दी है?

30

.....
.....
.....

30

.....

.....

9.1.2 व्यावसायिक शिक्षा तथा सीखने की विधि

पाठ्यक्रम के तकनीकी तथा व्यावसायिक पहलुओं के संवर्धन को उन परिवर्तनों को साथ में लेने की आवश्यकता है, जिसके माध्यम से युवा सीख रहे हैं। सीखने के लिए नये दृष्टिकोण का विकास ही पाठ्यक्रम में परिवर्तन का आधार है। मुख्य केन्द्र एक व्यावसायिक परिवार या कौशल की विशेष श्रृंखला नहीं है, वरन् युवा लोग, उनके संभावित भविष्य, उनकी अवसर परिवर्तन करने की क्षमता का सामना करना है। इसीलिये ज्यादा बल सीखने की विधियों गतिविधियों तथा पाठ्यवस्तु पर दिया जाता है।

नई तकनीक के साथ सुपरिचय सुनिश्चित करने के साथ ही हमें छात्रों पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। अगर हम उन्हें केवल विशिष्ट तकनीक में प्रशिक्षित करेंगे तो नई तकनीक की मांग न होने पर नुकसान में रहेंगे। वही अगर हम उन्हें अधिक परिपक्व तथा लचीले व्यक्तित्व के विकास के लिये प्रेरित करें तो उनके लिए अस्तित्व को बनाये रखने की अधिक संभावना विद्यमान रहेगी।

छात्र को अपने विकास अथवा समझने की वर्तमान स्थिति से सक्रिय रूप से अवगत रहना चाहिए। शिक्षक के संबंध में छात्र एक निष्क्रिय श्रोता नहीं रह सकता और न ही उसकी भूमिका निष्क्रिय होनी चाहिए। यह शिक्षक का कार्य होगा कि सीखने की परिस्थितियों तथा विधियों को डिजाइन कर उन्हें प्रोत्साहित करें। छात्रों के साथ विचार-विमर्श के लिये भी पहल करें। साथ ही शिक्षा के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए वे दोनों (छात्र तथा शिक्षक) मिलकर छात्र के लक्ष्य निश्चित करें।

TVEI तकनीक - टी.वी.ई.आई. तकनीक एक नये पाठ्यक्रम पटल के रूप में व्यावसायिक शिक्षा में कार्यान्वित की गयी है जो कि छात्रों को और अधिक सीखने के लिए तथा और अधिक जिम्मेदारी लेने के आधार पर आधारित है। एनफील्ड टी.वी.ई.आई. की संरचना में छात्र अपने समय का 20 प्रतिशत न्यूनतम कोर कार्यक्रम में तथा 10 प्रतिशत तकनीकी / व्यावसायिक विकल्पों में बिताये। इनका मुख्य सिद्धान्त एक छात्र की मदद कर स्वायत्त व टास्क के रूप में विकसित करने में है। TVEI योजना

पाँच प्रमुख शिक्षण उद्देश्यों पर आधारित है जिसमें छात्रों को प्रोत्साहित किया जायेगा ताकि वे योग्य बन सकें-

1. अनूकूलन
2. प्रतिक्रियाओं के पूर्वानुमान
3. सूचना एकत्र करना
4. रणनीति का निर्माण, संचालन तथा मूल्यांकन
5. प्रभावपूर्ण संवाद

इस योजना की निम्न विशेषतायें हैं -

1. पाठ्यक्रम में सैद्धान्तिक सीखने पर जोर देने में परिवर्तन कर कौशल को सीखने पर जोर दिया जाये। साथ ही यह परिवर्तन शिक्षा के उत्पाद से संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को सीखने में सम्मिलित करने का विकास किया जाये।
2. प्रक्रियाओं अथवा कौशल का अध्ययन अभ्यास के माध्यम से किया जाये कक्षी की आवश्यकताओं को अनुभवों के माध्यम से सीखने का दृष्टिकोण होना चाहिए। जहाँ छात्रों को दक्षता विकसित करने के अवसर उपलब्ध होंगे। छात्रों को दैनिक जीवन से संबंधित क्रियाओं के माध्यम से तथा अनुरूपण एवं भूमिका निर्वाह के रूप में अनुभव दिये जायेंगे। छात्रों की शिक्षा में व्यावसायिक तथा उनके हित के केन्द्र बिन्दु चाहिये लम्बे समय से व्यावसायिक जागरूकता शिक्षा की परिधि तक ही सीमित है। इस प्रकार के बदलाव छात्रों में न केवल पूर्व व्यावसायिक शिक्षा की तैयारी को बढ़ाता देने वाले होंगे बल्कि साथ ही स्कूली शिक्षा छात्रों की प्रेरणा वृद्धि के लिए भी अधिक प्रासंगिक होगी।
3. छात्रों को अपने अध्ययन में अधिक सक्रिय तथा जिम्मेदार भूमिका निभानी चाहिये। यह अनुबंधन की प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। अनुबंधन दोनों पक्षों के मध्य एक दूसरे में परस्पर आदान-प्रदान कर किया जा सकता है।
4. एक अनुबंध पाठ्यक्रम में विद्यालय छात्रों को यह अवसर देता है कि वे क्या अध्ययन करेंगे तथा वे उस अध्ययन को कैसे पूर्ण करेंगे। छात्र इसके बदले में प्रेरणा वृद्धि, स्वयं पर विश्वास तथा स्वतंत्रता के रूप में विचार विमर्श प्रदान करते हैं। इस प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका अहम है। छात्रों के शिक्षण अनुभवों

को व्यवस्थित करने उन्हें उचित मार्गदर्शन देकर उनकी शिक्षा को अधिक प्रभावशाली ढंग से पूर्ण करने के लिए शिक्षक को ट्यूटर तथा उपदेशक की भूमिका निभानी पड़ती है। विचार-विमर्श की प्रक्रिया में एक छात्र स्कूल प्रणाली है। इन विषयों का स्वासहायता अध्ययन के माध्यम से अध्ययन किया जा सकता है।

5. इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक ऐसे पूर्ण साधन सम्पन्न कक्ष की आवश्यकता होगी जो श्रव्य-दृश्य संसाधन, कम्प्यूटर हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर (कुछ विशेष प्रकार के) आदि से सम्पन्न हो जिनके माध्यम से प्रभावपूर्ण कम्प्यूटर सहायक अध्ययन को संचालित कर सके। कैरियर सूचना बैंक, पुस्तकों का विशाल संग्रह, सूचना पैक चार्ट तथा अन्य साधन एवं स्वअध्ययन सामग्री आदि की आवश्यकता है। इन सभी साधनों को विशेष रूप से निर्मित करना चाहिये। जिससे छात्र अपने अध्ययन में उसी प्रकार प्रगति कर सके जैसे दृश्य शिक्षा पाठ्यक्रम में अंतर मात्र इतना होगा कि इसमें छात्रों को सलाह देने के लिए शिक्षक होंगे। इस प्रकार के साधन सम्पन्न कक्षों को छात्रों को स्वयं सेवा शैक्षिक कार्यशाला के रूप में प्रयोग करना चाहिये।
6. छात्रों को कक्षा में आने पर शिक्षक के साथ विचार विमर्श कर अध्ययन लक्ष्य के पाठ को पूर्ण करना चाहिये। शिक्षक तथा छात्र द्वारा निश्चित किये गये लक्ष्य को छात्रों को योजना प्रपत्र पर अंकित किया जाना चाहिये। छात्र क्योंकि अपने अध्ययन के लिए अधिक उत्तरदायी है अतः उन्हें अपने अध्ययन में अधिक सक्रियता तथा उत्तरदायित्व निभाना चाहिये। उनके लिये यह आवश्यक है कि वे उनके द्वारा पूर्ण किये जा रहे लक्ष्य के उद्देश्य से परिचित हों इसके लिये एक चेकलिस्ट में छात्र द्वारा प्राप्त किये गये उद्देश्यों को नोट करना चाहिए। इस प्रक्रिया के लिए कक्षा में कम छात्र होने चाहिए। क्योंकि अधिक छात्रों में यह सम्भव नहीं होगा।

बोध प्रश्न :

- क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में उत्तर लिखे।
- ख) उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्र07 व्यावसायिक शिक्षा में सीखने की नवीन विधियों की आवश्यकता बताइये?

प्र08 टी.वी.ई.आई. तकनीक क्या है?

उ0

9.13 सारांश

व्यावसायिक शिक्षा में व्यक्ति को एक विशेष प्रशिक्षण प्रदान कर उस व्यावसाय के लिए आवश्यक कौशलों में दक्ष बनाया जाता है। यह प्रशिक्षु को उस व्यवसाय के लिये तैयार करने वाली शिक्षा होती है। व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करते समय कुछ सामान्य सिद्धान्तों का पालन उसकी उपयोगिता बढ़ाने के लिए आवश्यक है। व्यावसायिक शिक्षा के इतिहास पर दृष्टि डाले तो पाते हैं कि स्वतंत्रता से पूर्व भी अनेक समितियों ने व्यावसायिक शिक्षा पर बल दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् व्यावसायिक शिक्षा का विकास द्रुतगति से हुआ। पंचवर्षीय योजनाओं में व्यावसायिक शिक्षा के प्रसार के लक्ष्य को रखा गया। व्यावसायिक शिक्षा के प्रसार को सही गति तभी प्रदान की जा सकती है कि जबकि इसके लिए जो निर्धारित धनराशि है वह इसकी आवश्यकतानुसार हो। जिसके लिये उन विकल्पों का चयन करना चाहिये जिनसे धन की प्राप्ति हो। व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए अनेक सरकारी प्रशिक्षण संस्थान हैं जोकि इसका प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। इन संस्थाओं की कुशलता बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि उन्हें स्वायत्तता प्रदान करते हुए नियंत्रित किया जाये। साथ ही पाठ्यक्रम में नवीनीकरण, बुनियादी सुविधाओं की प्राप्ति जैसी बातों पर ध्यान दिया जाये। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) और अनेक समितियों ने पूर्व व्यावसायिक शिक्षा देने की बात पर दिया है जिससे नवीन तकनीक के माध्यम से पाठ्यक्रम पढ़ाया जा सके।

9.14 अभ्यास कार्य

9. व्यावसायिक शिक्षा की संकल्पना लिखिये? व्यावसायिक शिक्षा देते समय किन सिद्धान्तों का ध्यान रखना चाहिये।
10. व्यावसायिक शिक्षा के लिए क्या-क्या प्रयास किये गये हैं? ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में लिखिये।

11. व्यावसायिक शिक्षा में वित्त प्रबंधन की महत्ता बतलाइए।
12. व्यावसायिक शिक्षा देने में प्रशिक्षण संस्थानों को किन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये?
13. पूर्व-व्यावसायिक शिक्षा की विशेषतायें बताइये व इसके सापेक्षित महत्व की विवेचना कीजिए।
14. TVEI तकनीक पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

9.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. व्यावसायिक शिक्षा वह शिक्षा है जो प्रशिक्षु को उन व्यवसायों के लिये तैयार करती है जोकि किसी विशिष्ट व्यापार, व्यवसाय के लिये तैयार करती है।
2. उचित वातावरण तैयार हो, प्रभावी उपकरण हो, व्यक्ति की योग्यतानुसार व्यावसाय का चयन हो लचीलापन हो, कम व्यय वायला हो आदि।
3. स्वतन्त्रता से पूर्व वुड डिस्पैच (1854) में व्यावसायिक शिक्षा की संस्तुति की थी।
4. व्यावसायिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में शामिल समस्त पाठ्यक्रम का अवलोकन करें।
5. राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने शिक्षा में व्यावसायिक शिक्षा तथा प्रशिक्षण को महत्त्वपूर्ण माना है। प्रशिक्षण प्रदान करते समय प्रशिक्षार्थियों को नवीन पाठ्यक्रम प्रदान करने की बात पर जोर दिया है।
6. व्यावसायिक शिक्षा में वित्तीय प्रबंधन की परम आवश्यकता है। प्रति व्यक्ति पर व्यावसायिक प्रशिक्षण देने में जो व्यय होता है वह सामान्य शिक्षा से ज्यादा है। इसलिए इसके प्रबन्धन की योजना बनाने और उसे कार्यान्वित करने की बात पर बल दिया जाता है।
7. व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करते समय इस बात पर बल दिया जाता है कि प्रशिक्षकों के द्वारा होने वाले परिवर्तनों के अनुसार नवीन पाठ्यक्रम पढ़ाया जाये। नयी-नयी तकनीक के विकास के परिणामस्वरूप पाठ्यक्रम में नवीन परिवर्तन आ रहे हैं इसलिये नवीन सीखने की विधियों को आवश्यकता है।
8. टी.वी.ई.आई. तकनीक का अध्ययन करें?

9.15 कुछ उपयोगी वस्तुयें

- गुप्ता एस० पी०, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें, शारदा प्रकाशन, इलाहाबाद।
- उपाध्याय प्रतिभा, भारतीय शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ शारदा प्रकाशन, इलाहाबाद।

Sing UK : Vocational Education,

इकाई 10 : अध्यापक शिक्षा

संरचना

- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 उद्देश्य
- 10.3 अध्यापक शिक्षा
- 10.4 अध्यापक शिक्षा, के उद्देश्य
- 10.5 अध्यापक शिक्षा के लिये आधारभूत धारणाएं
- 10.6 भारत में अध्यापक-शिक्षा का इतिहास और विकास
 - 10.6.1 प्राचीन और मध्यकालीन शिक्षा
 - 10.6.2 आधुनिक काल में शिक्षा
- 10.7 अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम
- 10.8 अध्यापक शिक्षा की कठिनाइयाँ
- 10.9 अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में गुणात्मक सुधार के उपाय
- 10.10 अध्यापक-शिक्षा की संरचना
- 10.11 अध्यापक शिक्षा के साधनों की भूमिका
 - 10.11.1 राष्ट्र स्तरीय साधन
 - 10.11.2 राज्य स्तरीय साधन
- 10.12 अध्यापक शिक्षा की प्रमुख समस्यायें
- 10.13 सारांश
- 10.14 अ गस - कार्य
- 10.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 10.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.1 प्रस्तावना

इस इकाई में अध्यापक-शिक्षा के विभिन्न पहलुओं को लिया गया है। अध्यापक, शैक्षणिक कार्यक्रमों के कार्यान्वयन और शिक्षा के आयोजन में एक प्रमुख साधन है। अध्यापक न केवल अपने छात्रों को शिक्षा प्रदान करता है? बल्कि अनेक

तरीकों से अपने छात्रों का चरित्र निर्माण भी करता है। अध्यापकों से सभी स्तरों पर अनुसंधान करने या उसकी प्रोन्नति, प्रयोग और नवनिर्माण की आशा की जाती है। विस्तार और समाज सेवा में अध्यापकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। उन्हें विधिक प्रकार की सेवाओं और कार्यकलापों के प्रबन्धों में भाग लेना होता है। अध्यापक की इस महती भूमिका के कारण अध्यापक-शिक्षा में सुधार की बात कही गयी है। इस इकाई में अध्यापक शिक्षा के उद्देश्य, आवश्यकता, पाठ्यक्रम व समस्याओं आदि को ध्यान में रखकर निर्माण किया गया जिनका अध्ययन आप करेंगे।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करके आप इस योग्य हो जाएंगे कि-

- अध्यापक शिक्षा की संकल्पना समझ सकेंगे।
- अध्यापक शिक्षा के उद्देश्य व महत्व से परिचित हो सकेंगे।
- अध्यापक शिक्षा के विकासात्मक स्वरूप को समझ सकेंगे।
- विभिन्न स्तरों पर अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम से परिचित हो सकेंगे।
- अध्यापक शिक्षा में राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय साधनों की भूमिका की विवेचना कर सकेंगे।
- अध्यापक शिक्षा के आने वाली समस्याओं की विवेचना कर सकेंगे।

10.3 अध्यापक शिक्षा

हमारे देश में प्राचीन काल से ही अध्यापकों का बहुत आदर रहा है। हजारों की संख्या में अध्यापकों का आदर उनके छात्रों के द्वारा किया जा रहा है। फिर भी, कुछ दशकों के दौरान अध्यापकों की स्थिति में गिरावट आई है। इसके कारणों का पता लगाना है। उनकी सेवा शर्तों में गिरावट, एकाकीपन, शिक्षा पद्धति का असाधारण विस्तार, अध्यापक प्रशिक्षण का निम्न स्तर आदि।

भारत में अब अध्यापकों की भूमिका में परिवर्तन आ रहा है। अध्यापक शिक्षा नामक एक नया प्रत्यय विकसित हुआ है। इस प्रत्यय में इस बात पर अधिक बल दिया गया कि अध्यापकों को केवल प्रशिक्षित ही नहीं बल्कि शिक्षित भी होना चाहिए। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि अध्यापक प्रशिक्षण के सम्बन्ध में अधिक मजबूत और व्यापक

विचार उभरकर सामने आये। राधा कृष्णन आयोग (1948) जो मुख्य रूप से विश्वविद्यालयीय शिक्षा से सम्बन्धित था, ने अध्यापक शिक्षा पर पुनर्विचार किया और कहा कि अध्यापक शिक्षा में गुणात्मक और मात्रात्मक सुधार की आवश्यकता है।

10.4 अध्यापक शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा का मुख्य उत्तरदायित्व विद्यार्थी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना है। साथ ही एक सुयोग्य नागरिक बनाना भी इनका कर्तव्य है जिससे लोगों में प्रजातांत्रिक धर्मनिरपेक्ष, सामाजिक मूल्यों का विकास हो। अतः अध्यापक शिक्षा में भी इन मूल्यों का समावेश होना आवश्यक है। NCTE ने अध्यापक शिक्षा के निम्न उद्देश्य बताये-

1. गांधीवादी मूल्यों जैसे, अहिंसा, सत्यता, आत्म-संयम, आत्मज्ञान एवं कार्य की महानता जैसे मूल्यों पर बल देना है।
2. समुदाय में एक सामाजिक परिवर्तनकर्ता के रूप में कार्य करना।
3. यह समुदाय के नेता के रूप में ही नहीं बल्कि बड़े समुदाय को दिशा प्रदान करना है।
4. समुदाय एवं स्कूल के बीच मध्यस्थ का कार्य करना।
5. वातावरण सम्बन्धी श्रोतों को संरक्षण प्रदान करना एवं ऐतिहासिक वस्तुओं एवं दूसरी वस्तुओं को संरक्षित करता है।
6. बड़े होते बच्चों के शैक्षिक, सामाजिक, भावात्मक एवं व्यक्तिगत समस्याओं के प्रति ज्ञानात्मक दृष्टिकोण रखना है।
7. भारतीय संदर्भ में विद्यार्थी शिक्षण के उद्देश्यों को समझने में सहायता प्रदान करना है एवं स्कूल को प्रजातांत्रिक, एकांकी, सामाजिक समाज को विकसित करने के उद्देश्यों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।
8. सीखने एवं शिक्षण में मानवीय सिद्धान्तों के द्वारा शिक्षण में योग्यता विकसित करना है।
9. समझने की योग्यता, रुचि, दृष्टिकोण एवं कौशल आदि को विकसित है जोकि उसे इस योग्य बनाती है जिसकी वह बच्चों के विकास को संरक्षित करना।
10. वार्तालाप, कौशलात्मक योग्यताओं को मानवीय सम्बन्धों के लिये विकसित करना।

11. पढ़ाये जाने वाले विषय की नवीन प्रवृत्तियों का ज्ञान देना एवं शिक्षण तकनीकियों का ज्ञान प्रदान करना।
12. अन्वेषणात्मक एवं क्रियात्मक अनुसंधान करना।

10.5 अध्यापक शिक्षा का आधारभूत धारणाएं

अध्यापक शिक्षा का आधारभूत धारणाएं निम्नलिखित हैं :-

1. अध्यापक शिक्षा मनुष्य निर्माण प्रक्रिया को निश्चित करती है क्योंकि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास करना है।
2. अध्यापक शिक्षा का तारतम्य पक्ष इस बात पर बल देता है कि अध्यापक शिक्षा को पाठ्यक्रम के इन स्तरों पर रखेगा-प्राथमिक स्तर माध्यमिक स्तर, विश्वविद्यालय स्तर।
3. अध्यापक शिक्षा इस बात पर बल देती है कि प्रत्येक स्तर पर अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम का निरूपण बच्चों के विकास एवं देश के उद्देश्यों के संदर्भ में करना चाहिए।
4. अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम को प्रत्येक स्तर पर आगे की ओर बढ़ाना चाहिये।
5. सभी स्तरों पर अध्यापक शिक्षा को निम्नलिखित भागों पर बल देना चाहिए।
 - (अ) प्रशिक्षण सम्बन्धी पाठ्यवस्तु
 - (ब) समुदाय के साथ कार्य
 - (स) विषयवस्तु एवं विधि सम्बन्धित पाठ्यवस्तु एवं अभ्यास शिक्षण पाठ्यवस्तु।
6. संपूर्ण अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में समुदाय के साथ कार्य करते हुए परिवर्तन होने चाहिये।
7. अध्यापक शिक्षा तभी प्रभावशाली होगा जबकि मौखिक अनुभवों को दृश्य पुस्तकों एवं कौशल अनुभवों द्वारा पुनर्बलन प्रदान किया जाये।
8. अध्यापक शिक्षा एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया होने के कारण उसे तीन विशेषताओं की आवश्यकता है जैसे, लचीलापन, मानवीयता एवं अन्तः अनुशासन

10.6 भारत में अध्यापक शिक्षा का इतिहास और विकास

भारत में अध्यापक शिक्षा का रूप उतना ही प्राचीन है जितनी की भारतीय शिक्षा। भारत ऐतिहासिक रूप से ही शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी रहा है। भारत में अध्यापक शिक्षा के विकास को निम्न रूप में बाँट सकते हैं :-

10.6.1 प्राचीन और मध्यकालीन शिक्षा

प्राचीन काल में अध्यापकों को समाज में बहुत उच्च स्थान प्राप्त था। भारतीय सभ्यता के प्रारम्भिक काल में शिक्षा व्यवस्था पूर्णतः वेदों से सम्बन्धित थी। समाज के चार वर्णों में से केवल ब्राह्मण वर्ग ही समाज को शिक्षित बनाने का कार्य करता था। वे ज्ञानार्जन तथा ज्ञान प्रदान करना अपना प्रमुख कर्तव्य समझते थे।

इस प्रकार समुदाय का वह भाग जो शिक्षा प्राप्त करना चाहता था, उसको शिक्षा प्रदान करना शिक्षा शास्त्रियों के कर्तव्यों के अन्तर्गत था। क्योंकि उस समय शिक्षा जाति व्यवस्था पर आधारित थी। हर जाति अपने व्यवसाय के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित थी। शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होता था। छात्र को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये शिक्षक के एक-एक शब्द पर आश्रित रहना पड़ता था। ऐसे साक्ष्य नहीं मिले हैं जो इंगित करें कि अध्यापक प्रशिक्षण की कोई औपचारिक व्यवस्था थी।

मध्य कालीन समय में, कुरान में शिक्षा प्रदान करना एक प्रमुख कर्तव्य था। इस काल के दौरान अध्यापक शिक्षण की कोई औपचारिक व्यवस्था नहीं थी। शैक्षिक संस्थायें 'मदरसों' के रूप में थी और केवल मौलवी ही अध्यापक के रूप में कार्य करते थे। इस समय शिक्षा प्रमुख धार्मिक थी। मौलवी, मुकलीस और मदरसों के अध्यापक के रूप में कार्य करते थे। औपचारिक शिक्षा की आवश्यकता न ही महसूस की गयी और न ही पहचानी गयी। किसी भी पद की नियुक्ति के लिये कोई व्यावसायिक प्रशिक्षण आवश्यक नहीं समझा गया। प्रायः पुराने अध्यापकों का अनुकरण करके ही नये अध्यापक बन जाते थे। इस काल के दौरान शिक्षण, औषधि, साहित्य, कला और संगीत, कलाओं का व्यवसायों के समान स्थापित किये गये। इस प्रकार के व्यवसायों की नियमित शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए संस्थायें नहीं थीं।

10.6.2 आधुनिक काल में शिक्षा

पश्चिमी ताकतों के प्रभाव को भारतीय शिक्षा को प्रभावित किया। ब्रिटिश कम्पनी के प्रभाव ने शिक्षा व्यवस्था को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में प्रभावित किया।

सर्वप्रथम डैनिस मिशनरीज ने एक औपचारिक प्रशिक्षण केन्द्र शेरामपुर में स्थापित किया। ये मिशनरीज व्यक्तिगत संस्थायें थीं। इस प्रकार की तीन और संस्थाओं (व्यक्तिगत) के खुलने पर इनको नार्मल विद्यालय कहा गया। शिक्षक प्रशिक्षण के लिये खोले गये इन विद्यालयों की मद्रास, बम्बई और कलकत्ता में एक-एक संस्थायें खोली गयी।

प्रारम्भिक ब्रिटिश काल में भारतीय विद्यालयों में कोई अध्यापक शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी। एन्ड्रूज बैल ने 1787 में मद्रास में प्राइमरी स्तर पर इस व्यवस्था को स्थापित किया। इन्हीं स्थानों पर अप्रेन्टीशिप व्यवस्था भी स्थापित की गयी। लैनकास्ट्रीयन व्यवस्था को 1819 में शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए बंगाल के 'कलकत्ता' स्कूल समाज' में शुरू किया गया। थामस मुनरो ने 1826 में शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र में योजनाबद्ध प्रयास किया।

वुड डिस्पैच (1854) में शिक्षकों के प्रशिक्षण और शिक्षा के महत्व पर बल दिया। वुड डिस्पैच की रिपोर्ट ने अनुदान देने के लिये एक नये सिद्धान्त को जन्म दिया। अनुदान देने का आधार किसी स्कूल में प्रशिक्षित शिक्षकों की मात्रा को माना गया। जिसके कारण प्रशिक्षित अध्यापकों की मांग बढ़ी। जिसके परिणामस्वरूप देश में नार्मल स्कूलों की संख्या में बढ़ोत्तरी हो गयी।

हार्टोग कमीशन (1882) ने प्राथमिक शिक्षा में सुधार तथा शिक्षकों के लिये प्रशिक्षण विद्यालयों की व्यवस्था पर बल दिया। लेकिन माध्यमिक प्रशिक्षण संस्थाओं की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया।

विश्वविद्यालय ऐक्ट 1904 ने माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षण विद्यालयों के लिये संस्तुतियाँ दी, कुछ प्रशिक्षण कालेज और खोले गये, इन विद्यालयों के लिये प्रदर्शन स्कूल खोले गये और इस पर बल दिया गया। 1906 में एक प्रशिक्षण विद्यालय बम्बई में खोला गया।

हर्टर कमीशन, जिसे भारतीय शिक्षा आयोग (1882) के नाम से भी जाना जाता है, की स्थापना भारतीय शिक्षा में सुधार के लिये किया गया। इस कमीशन ने शिक्षक प्रशिक्षक की गुणात्मक को बढ़ाने के लिये एक परीक्षा कार्यान्वित करने की सलाह दी। जिसमें उत्तीर्ण होने वाले ही माध्यमिक स्तर पर शिक्षक बनने के लिये योग्य होंगे। स्नातकों के लिए भी अलग प्रशिक्षण स्कूलों की व्यवस्था पर बल दिया और परास्नातक के लिये स्कूलों की अलग व्यवस्था होनी चाहिये।

सैडलर आयोग (1919) कलकत्ता विश्वविद्यालय के सुधार के लिये नियुक्त किया गया। इस आयोग ने माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के व्यावसायिक प्रशिक्षण की भूमिका पर बल दिया।

सार्जेण्ट कमीशन (1944) ने विकास का सूत्र 'शिक्षा व्यवस्था' में सुधार की योजना को माना। इसमें भी अध्यापक शिक्षा पर बल दिया गया।

स्वतन्त्रता के पश्चात् विभिन्न आयोगों की स्थापना समय-समय पर की गयी। 1984 में, भारत सरकार ने, सर्वप्रथम डा० राधाकृष्णन, की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय आयोग का गठन किया गया। यह आयोग मुख्य रूप से विश्वविद्यालय शिक्षा से सम्बन्धित था। लेकिन इसमें अध्यापक प्रशिक्षण के बारे में कुछ संस्तुतियाँ दी गयी हैं।

1952 में माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन किया गया जिसके अध्यक्ष डा० ए० एल० मुदालियर थे। इस कमीशन की रिपोर्ट में कहा गया कि अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में सुधार ही शिक्षा में सुधार की कुंजी है। इसलिये प्रशिक्षण का सुधार आवश्यक है। कमीशन ने मजबूती से प्रशिक्षण कालेजों में कार्यदशाओं के सुधार की संस्तुति की और अध्यापकों को सामाजिक स्तर को उठाने की कोशिश की।

डा० डी० एस० कोठारी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964-66) ने साफ-साफ व्यावसायिक शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था की कमियों को दिखाया इस आयोग ने अपनी व्यापक रिपोर्ट भारत में शिक्षा व्यवस्था के उच्चीकरण पर दी। इस आयोग ने सर्वप्रथम पूरी शिक्षा व्यवस्था की जांच की ओर और इसके अन्तर्गत कमियों को पहचानने की कोशिश की। अध्यापक शिक्षा की कमियों को जानकर इसमें अध्यापक प्रशिक्षण पर बल दिया गया। इसमें अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम की गुणवत्ता में सुधार पर बल दिया। साथ ही अध्यापक प्रशिक्षण से शैक्षिक जीवन के अलगाव को हटाया जाये।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में भी अध्यापक शिक्षा के बारे में बताया। जिसमें अध्यापक शिक्षा में सुधार के लिए विश्वविद्यालय स्तर पर अनुसंधानों पर बल दिया। साथ ही सेवारत अध्यापक प्रशिक्षण पर विशेष बल दिया।

इस प्रकार अध्यापक शिक्षा में लगातार निरन्तर सुधार होते जा रहे हैं।

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये रिक्त स्थानों पर अपने उत्तर लिखे।

ख) उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्र01 अध्यापक शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य लिखिये।

30

.....
.....
.....

प्र02 अध्यापक शिक्षा किन मूलभूत धारणाओं पर आधारित है?

30

.....
.....
.....

प्र03 प्राचीन और मध्यकाल में अध्यापक शिक्षा का स्वरूप कैसा था?

30

.....
.....
.....

प्र04 स्वतंत्रता पूर्व अध्यापक शिक्षा के लिये क्या प्रयास हुये थे?

30

.....
.....
.....

10.7 अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम

संविधान में सबको बराबर शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया गया है। इसलिये यह आवश्यक है कि प्रशिक्षण प्रदान करने वाले कालेजों को इस बात की जानकारी होनी चाहिये कि उन्हें प्रशिक्षकों को क्या ज्ञान देना है। जिससे संपूर्ण समाज को संविधान में दिये गये प्रावधानों का उचित लाभ मिल सके। कोठारी कमीशन ने भी शिक्षकों की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिये इस बात पर बल दिया है कि अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम में उन सभी बातों का समावेश होना चाहिए जोकि अच्छे अध्यापक बना सके। इसलिये शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों की भूमिका शिक्षा प्रदान करने में महत्वपूर्ण है।

10.8 अध्यापक शिक्षा की कठिनाइयाँ

अध्यापकीय शिक्षा में निम्न कठिनाइयाँ हैं-

1. अध्यापकीय शिक्षा कार्यक्रम बहुत अल्प समय के लिये होता है।
2. अध्यापकीय शिक्षा में शिक्षा की विधि पर अधिक बल दिया जाता है। विषयवस्तु पर ध्यान नहीं दिया जाता है।
3. अध्यापकीय शिक्षा में सैद्धान्तिक पक्ष पर बल दिया गया है।
4. इसका स्वरूप भारतीय संगठनों के अनुरूप नहीं है।
5. यह आधुनिक शिक्षा पर आधारित व लोचपूर्ण नहीं है।
6. इसके प्रयोगात्मक कार्य अपूर्ण होते हैं।
7. अधिकतर अध्यापकीय महाविद्यालयों का प्रशिक्षक वर्ग पूरी तरह से परिपक्व नहीं है।

10.9 अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में गुणात्मक सुधार के उपाय

कोठारी आयोग ने कहा कि योग्यता 'गुण' शिक्षक प्रशिक्षक कार्यक्रम की जान है और इसकी कमी से अध्यापक शिक्षा न केवल एक वित्तीय बर्बादी होगी, वरन् यह शैक्षिक स्तर में गिरावट का बहुत ही महत्वपूर्ण कारण बन जायेगा। आयोग ने इस सम्बन्ध में निम्न उपाय बताये-

1. विषय का पूर्ण नियोजित समायोजन या विश्वविद्यालयों का स्नातकोत्तर महाविद्यालयों के सहयोग से शिक्षण के मूल तत्त्वों के बारे में गहन अध्ययन करना।
2. विश्वविद्यालयों में सामान्य तथा व्यावसायिक शिक्षा पाठ्यक्रमों को आरम्भ किया जायेगा।
3. शिक्षा में अनुसंधान के विकास द्वारा व्यावसायिक शिक्षा को भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप की जाये।
4. शिक्षा के तकनीक में ऐसा सुधार किया जाये जिससे कि स्व-अध्ययन तथा वाद-विवाद को पूरा स्थान मिल सके।
5. शिक्षण अभ्यास में सुधार किया जाये, और इसे व्यापक कार्यक्रमों तथा कार्यक्रम का विकास किया जाये।

7. विकासशील शिक्षा पद्धति में शिक्षक के बहुमुखी जिम्मेदारियों को ध्यान में रखते हुए हर स्तर पर शिक्षा पाठ्यक्रम तथा कार्यक्रम में सुधार किया जाए।

10.10 अध्यापक शिक्षा की संरचना

अध्यापकीय शिक्षा के उचित पाठ्यक्रम का स्वरूप बहुआयामी है। अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम के आयाम इस प्रकार हैं :-

(अ) भारत में अध्यापक शिक्षा के सिद्धान्त

1. भारत में शिक्षा का उद्देश्य एवं कार्य (भारत के राष्ट्रीय उद्देश्यों जोकि प्रजातंत्र और नियोजित विकास पर आधारित है के अनुरूप।
2. भारत में अध्यापक शिक्षा के उद्देश्य एवं कार्य

(ब) भारत में अध्यापक कार्य कौशल का विकास करना।

1. व्यक्तिगत एवं सामाजिक कौशल का विकास करना
2. व्यावसायिक कौशल का विकास करना
3. प्रत्यय सम्बन्धी कौशल का विकास करना।

(स) भारत में अध्यापकों को पहचानना

1. सामान्य शिक्षा या आधारित ज्ञान प्रदान करना।
2. विशेष प्रशिक्षण या शैक्षिक सामर्थ्य का विकास करना।

ने विभिन्न स्तरों पर अध्यापक शिक्षा की संरचना कैसी हो उसके बारे में बताया।

पूर्व प्राथमिक स्तर पर

प्रशिक्षार्थियों को निम्न ज्ञान प्राप्त करना चाहिये -

1. पूर्व बाल्यावस्था में दी जाने वाली शिक्षा के सैद्धान्तिक व व्यावहारिक पक्ष का ज्ञान।
2. वृद्धि और विकास के नियमों का ज्ञान।
3. भारतीय परिवेश में बच्चों को शिक्षित करने की कला।
4. बदलते परिवेश में अध्यापक भूमिका का ज्ञान।
5. घर और स्कूल के बीच सामंजस्य स्थापित करने की कला।

6. श्रव्य - दृश्य सामग्री का प्रयोग करने की कला।
7. विभिन्न प्रकार के शैक्षिक अनुभव विभिन्न क्रियाओं / गतिविधियों के माध्यम से प्रदान करना।
8. सही संचार करने की कला का ज्ञान।
9. बच्चों की शारीरिक व भावात्मक स्वास्थ्य के बीच उचित सामंजस्य।
10. बच्चों का संपूर्ण विकास करना।

प्राथमिक स्तर पर

प्राथमिक स्तर के लिये दिया जाने वाला प्रशिक्षण पूर्ण प्राथमिक स्तर के प्रशिक्षण से भिन्न है। इसमें निम्न कौशलों के विकास का प्रयास किया जाना चाहिए -

1. मातृ भाषा का ज्ञान देना व हिन्दी भाषा का ज्ञान देने का कौशल।
2. गणित व पर्यावरणीय शिक्षा प्रदान करने का कौशल (शारीरिक विज्ञान व सामाजिक अध्ययन भी सम्मिलित)।
3. विभिन्न शैक्षिक अनुभवों को संगठित कर प्रदान करने का कौशल।
4. वृद्धि व विकास के मनोवैज्ञानिक तथ्यों का ज्ञान।
5. संज्ञानात्मक व अभिवृत्तात्मक पक्षों वाली गतिविधियों का ज्ञान।
6. स्वास्थ्य, स्वच्छता व मनोरंजन प्रदान करने वाली गतिविधियों का ज्ञान।
7. व्यक्तित्व विकास में घर व समाज की भूमिका का ज्ञान।
8. क्रियात्मक अनुसंधान का ज्ञान।
9. सामाजिक परिवर्तन में स्कूल व अध्यापक की भूमिका का ज्ञान।

मध्यामिक स्तर पर

माध्यमिक स्तर के लिये दिया जाने वाला प्रशिक्षण में निम्न योग्यताओं व कौशलों पर बल दिया जाना चाहिए :-

1. विषयों को दक्षतापूर्वक पढ़ाने की योग्यता।
2. बच्चों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास करने की योग्यता।
3. 11 - 17 साल की उम्र में होने वाले परिवर्तनों के मनोवैज्ञानिक पहलुओं का

4. संज्ञानात्मक मनोदैहिक व अभिवृत्त्यात्मक पहलुओं की जानकारी।
5. स्वास्थ्य, सफाई और मनोरंजन प्रदान करने वाली गतिविधियों की जानकारी।
6. गृह और समुदाय का व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव।
7. क्रियात्मक अनुसंधान का ज्ञान।
8. सामाजिक परिवर्तन लाने में अध्यापक व स्कूल की भूमिका का ज्ञान।
9. बच्चों को शैक्षिक, व्यावसायिक व व्यक्तिगत निर्देशन प्रदान करने का कौशल।

अध्यापक शिक्षा का व्यापक पाठ्यक्रम, अध्यापक के सर्वांगीण विकास के लिए उन समस्त पाठ्यक्रमों को अपने में समाहित करता है जिससे अध्यापकों में उपरोक्त योग्यताओं व कौशलों का विकास हो।

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये रिक्त स्थानों पर अपने उत्तर लिखे।

ख) उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्र05 अध्यापक - शिक्षा आने वाली कठिनाइयों को लिखिए।

30

.....

.....

.....

प्र06 अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता में कैसे सुधार कर सकते हैं?

30

.....

.....

.....

प्र07 एन.सी.टी.ई. द्वारा पाठ्यक्रम संरचना किन-किन स्तरों के लिये दिया गया है?

30

.....

.....

.....

10.11 अध्यापक शिक्षा के साधनों की भूमिका

किसी भी जनतांत्रिक देश का विकास वहाँ के शिक्षकों के स्तर पर निर्भर करता है। भारत में अध्यापक शिक्षा विकास की अनेक अवस्थाओं को पार कर चुका है। स्वतंत्रता के बाद अनेक आयोगों तथा समितियों का गठन अध्यापक शिक्षा के विकास के लिए किया गया है। अध्यापक शिक्षा में विभिन्न साधनों की भूमिका को दो स्तरों पर बाँच सकते हैं -

- 1) राष्ट्रीय स्तर के साधन
 - i) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (U.G.C.)
 - ii) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (N.C.E.R.T.)
 - iii) राष्ट्रीय अध्यापक - शिक्षा परिषद् (N.C.T.E.)
 - iv) उच्च अध्ययन शिक्षा केन्द्र (C.A.S.E.)
- 2) राज्य स्तरीय साधन
 - i) राज्य अध्यापक शिक्षा बोर्ड (S.B.T.E.)
 - ii) विश्वविद्यालय शिक्षा विभाग (U.D.E.)
 - iii) दूरगामी अध्यापक शिक्षा (D.T.E.)
 - iv) ग्रीष्म कालीन संस्थान (S.I.E.)
 - v) शिक्षा महाविद्यालय (C.T.E.)

10.11.1 राष्ट्रीय स्तर के साधन

i) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

इस आयोग का आविर्भाव 28 दिसम्बर 1953 में हुआ, परन्तु 1956 में यह स्वायत्त संस्था, बन गयी। इसका अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष होता है। इसका कार्यालय दिल्ली में है। विश्वविद्यालयों के विकास एवं संचालन हेतु आर्थिक सहायता प्रदान करना, नये विश्वविद्यालय की स्थापना के लिये परामर्श देना, उच्च स्तरीय अनुसंधान कार्यों और शिक्षण कार्यों को बढ़ावा देना और इसके लिये आर्थिक सहायता प्रदान करना आदि इसके प्रमुख कार्य हैं। इस आयोग ने अध्यापक-शिक्षा की समिति गठित की है। इसका कार्य

शिक्षा के शोध कार्यों में सुधार तथा शिक्षा स्तर को उन्नत करना है। इसमें सात सदस्यों का कार्यकाल दो वर्ष का होता है। इसका कार्य प्रतिभाओं का समुचित सदुपयोग, शिक्षा को नयी तकनीकी से अवगत कराना है। पर्यावरण, जनसंख्या सम्बन्धी शिक्षा देना और प्रबन्ध का प्रशिक्षण देना भी इसका कार्य है।

ii) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद

इस परिषद की स्थापना सन् 1961 में हुयी। इसके पाँच क्षेत्रीय संस्थान - अजमेर, भुवनेश्वर, भोपाल तथा शिलांग में है। इसका मुख्यालय दिल्ली में है जिसके कई विभाग हैं। शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर का संगठन है। प्राथमिक और माध्यमिक स्तर की शिक्षा में सुधार हेतु शोध करना, सेवारत शिक्षक और पूर्व सेवा शिक्षकों को नेतृत्व प्रदान करना, उत्तम प्रकार की अनुदेशन सामग्री का प्रकाशन करना आदि इसके कार्य क्षेत्र में आते हैं।

एन.सी.ई.आर.टी. में अध्यापक शिक्षा विभाग भी है। प्राथमिक स्तर के अध्यापक-शिक्षा के लिये सुझाव देना, प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर के लिये विद्यालय अनुभव हैण्ड बुक, अध्यापकों हेतु विज्ञान-शिक्षण तथा हिन्दी मातृ-भाषा की शिक्षण विधियों पर अध्ययन सामग्री तैयार करना, प्राथमिक, माध्यमिक तथा विद्यालय की शिक्षा पर शोध कार्यों का बढ़ावा देना, अभिविन्यास, पाठ्यक्रमों की व्यवस्था जैसे कार्यों का सम्पादन इस विभाग द्वारा किया जाता है।

iii) राष्ट्रीय अध्यापक-शिक्षा परिषद्

भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा या 1992 में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् की स्थापना इस उद्देश्य से की गयी कि यह परिषद् अध्यापक शिक्षा से सम्बन्धित सभी प्रकार की समस्याओं के बारे में केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों को परामर्श प्रदान करेगी।

यह पूर्ण स्वायत्ता प्राप्त संस्था है। सभी स्तरों, केन्द्रीय तथा राज्य, प्राथमिक स्तर तथा महाविद्यालय स्तर की अध्यापक शिक्षा व्यवस्था का निरीक्षण कर आवश्यक सुधार देना, अनुदान क्रियाओं का निरीक्षण करना, पाठ्यक्रम, स्टाफ, साधनों, सुविधाओं के संदर्भ में राष्ट्रीय स्तर का निर्धारण करना, अन्तर्राज्यीय स्तरों के लिये परीक्षण, मूल्यांकन करना व नये विकास एवं प्रसार का अवलोकन आदि करना इसके प्रमुख कार्य हैं।

किया गया है। जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं-

अध्यापक शिक्षा

- बी०एड० दूरस्थ शिक्षा
- अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम की रूपरेखा
- अध्यापकों की सामाजिक तथा व्यावसायिक उत्तरदायित्व भूमिका
- भावी कार्यक्रम में अध्यापक-शिक्षा का पाठ्यक्रम, अध्यापक शिक्षा पर राष्ट्रीय सेमिनार का आयोजन प्राथमिक-स्तर के लिये अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम का विकास आदि इसके कार्य क्षेत्र में है।

10.11.2 राज्य स्तरीय साधन

i) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

कोठारी आयोग ने (1966) ने राज्य अध्यापक शिक्षा बोर्ड की स्थापना का सुझाव दिया। इस कार्य द्वारा राज्य स्तर के अध्यापक-शिक्षा का समुचित विकास करना और शिक्षा की व्यवस्था एवं प्रशासन राज्य द्वारा ही किया जाता है। मध्य प्रदेश में (1967); गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, जम्मू-काश्मीर, मणीपुर, तमिलनाडु में (1973) इन बोर्डों की स्थापना की गयी थी।

राज्य अध्यापक - शिक्षा बोर्ड के प्रमुख कार्य निम्नांकित हैं -

प्रशिक्षण संस्थानों के स्तर का निर्धारण

अध्यापक-शिक्षा के पाठ्यक्रम, परीक्षा प्रणाली आदि में सुधार

प्रशिक्षण संस्थाओं के मानदण्डों का निर्धारण व निरीक्षण

संस्थाओं को परामर्श सुविधा प्रदान करना।

अध्यापक-शिक्षा में गुणात्मक तथा परिमाणात्मक विकास हेतु योजनायें तैयार करना।

प्रत्येक स्तर के लिये अध्यापक-शिक्षा के प्रशिक्षण की व्यवस्था तथा अनुदान की सुविधा।

विश्वविद्यालय तथा राज्य की प्रशिक्षण संस्थाओं की भावना विकसित करना।

इन बोर्डों का कार्य अध्यापक-शिक्षा के सभी स्तरों पर तथा सभी पक्षों में सुधार

विकास करना है।

ii) विश्वविद्यालय शिक्षा विभाग

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा विश्वविद्यालयों के शिक्षा - विभागों को अनुदान दिया जाता है। शिक्षा के विकास एवं प्रसार हेतु उच्च स्तर पर प्रशिक्षण देना अत्यन्त आवश्यक एवं प्रसार विश्वविद्यालय के शिक्षा एम0 ए0 (शिक्षा) की उपाधियाँ प्रदान की जाती है। सर्वप्रथम कलकत्ता विश्वविद्यालय में (1917) में शिक्षा विभाग की स्थापना की गयी।

विश्वविद्यालय के शिक्षा-विभागों के कार्य निम्नलिखित हैं :-

- परास्नातक तथा शिक्षा में शोध कार्यों का विकास करना।
- अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
- अध्यापक-शिक्षा हेतु ठोस कार्यक्रमों को सुविधायें प्रदान करना तथा शिक्षा के शोध कार्यक्रमों का विकास करना।
- भाषा-प्रयोगशाला का विकास करना तथा अनुदेशन-सामग्री का विकास करना।
- वृहद्-महाविद्यालयों का विकास करना जिसमें चार वर्ष के कार्यक्रम की व्यवस्था की जाए।

विश्वविद्यालय स्तर के शिक्षा-विभागों द्वारा अन्तः अनुशासनीय कार्यक्रम को बढ़ावा देना चाहिये जिससे अध्यापक-शिक्षा की आवश्यकताओं की भी पूर्ति की जा सके।

iii) ग्रीष्म कालीन संस्थान

महाविद्यालयों के अध्यापकों की भारत एसोसियेशन की आठवीं बैठक शिमला में जून 1965 में जून 1965 में हुई थी जिसका मुख्य लक्ष्य अप्रशिक्षित अध्यापकों को प्रशिक्षित करने का था। उसमें बड़ी संख्या में माध्यमिक स्तर पर अप्रशिक्षित अध्यापक सेवारत थे। इस बैठक में सन् 1975 तक सभी अध्यापकों को ग्रीष्मकालीन संस्थाओं द्वारा प्रशिक्षण प्रदान करने पर बल दिया गया इस योजना की प्रमुख विशेषतायें निम्न थीं-

- ग्रीष्मकालीन पाठ्यक्रम संस्थान द्वारा बी0एड0 प्रशिक्षण की सम्पूर्ण अवधि 14 माह रखी गयी।
- ग्रीष्मकालीन संस्थान की व्यवस्था प्रशिक्षण संस्थाओं द्वारा की जाएगी और उन

शिक्षकों को प्रवेश दिया जायेगा जिन्होंने पाँच वर्ष से अधिक शिक्षण कार्य किया है।

- शिक्षक को दो ग्रीष्मकालीन संस्थान करने होंगे और मध्य के 10 माह में निरीक्षण कार्य का शिक्षण अभ्यास किया जाएगा।
- ग्रीष्मकालीन संस्थान प्रवेश लेने वाले अध्यापकों को दो ग्रीष्म के चार माह हेतु छात्रवृत्ति 300 रु0 प्रति माह दिये गये थे।
- ग्रीष्मकालीन संस्थान की व्यवस्था द्वारा वे शिक्षक अपने विद्यालयों में शिक्षण कार्य भी करते रहते थे और ग्रीष्म के दो माह में इन संस्थानों सप्ताह में जाकर अध्ययन करते थे।
- प्रत्येक सप्ताह में 30 घण्टे शिक्षण किया जाता था, 16 सप्ताह के कार्यकाल में 180 घण्टे शिक्षण की व्यवस्था की गयी, इसके अतिरिक्त खेलकूद पुस्तकालय की सुविधा भी दी जाती थी।

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये रिक्त स्थानों पर अपने उत्तर लिखे।

ख) उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र08 अध्यापक शिक्षा प्रदान करने वाली एजेन्सियों के नाम लिखिए।

30

.....

प्र09 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रमुख कार्य लिखे।

30

.....

प्र010 एन.सी.टी.ई. की स्थापना क्यों हुयी?

30

.....

10.12 अध्यापक शिक्षा की प्रमुख समस्यायें

भारत में अध्यापक शिक्षा से जुड़ी समस्यायें हैं। देश के विकास में शिक्षा की अहम भूमिका है एवं उत्तम शिक्षा कार्यक्रम का निर्धारण ही अध्यापक शिक्षा से जुड़ी समस्याओं को दूर कर सकता है। यद्यपि अध्यापक शिक्षा से जुड़ी समस्याओं का स्वरूप जटिल है। किन्तु देश के विकास के लिए इनका समाधान आवश्यक है।

अध्यापक शिक्षा से जुड़ी समस्याओं का स्वरूप निम्न है -

1. **सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक अध्ययन के पाठ्यक्रम में कृतिमता:-** विभिन्न स्तरों पर पढ़ाये जाने वाले पाठ्यक्रम में उचित विषयवस्तु के अभाव ने पाठ्यक्रम में सैद्धान्तिक पक्ष को ज्यादा मुखरित किया है। किसी विशेष विषय में सैद्धान्तिक पाठ्य विषय का प्रयोगात्मक कार्य में कोई स्पष्ट जोड़ नहीं है और सिद्धान्त विषयों का प्रयोगात्मक कार्य में गहन प्रयोग है और इसमें पुनरावृत्ति एवं पुनः संरचना की आवश्यकता है।
2. **अप्रभावी शिक्षण विधियाँ :-** हमारे देश में अध्यापक नवीन विधियाँ अपनाने को इच्छुक नहीं हैं। व्याख्यान एवं त्रुटिलेख आधुनिक कक्षा व्यवहार के लिए उत्सुक नहीं हैं। बहुत सी स्थिति में व्याख्याता जड़ एक स्वर एवं अप्रेरणीय होते हैं जिससे अध्यापक द्वारा पढ़ाये गये विषय की महत्ता कम हो जाती है।
3. **व्यावसायिक अभिवृत्ति के विकास पर कम बल :-** अध्यापक शिक्षा में व्यावसायिक अभिवृत्ति के विकास पर कम बल दिया जाता है। जो अच्छे अध्यापक-शिक्षा कार्यक्रम के लिये आवश्यक है। सामुदायिक जीवन द्वारा सही प्रजातांत्रिक अभिवृत्ति निर्मित करने का प्रयास नष्ट हो गया है।
4. **विद्या अभ्यास पर दबाव नहीं :-** अध्यापक शिक्षा प्राथमिक एवं माध्यमिक दोनों स्तर पर विद्यालय एवं विद्यालयी शिक्षा के नवीन विकास से अलग हो गयी है। विद्यालयों में अपनायी गयी शिक्षण की विधियाँ, उनका पाठ्यक्रम एवं विभिन्न अन्य आवश्यकतायें, अध्यापक शिक्षा विभागों द्वारा समर्पित एवं वास्तविक रूप में कार्यान्वित विधियों, पाठ्यक्रमों एवं आवश्यकताओं से भिन्न है।

5. **सुविधाओं का अभाव :-** अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में लगे अधिकांश महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में आवश्यक प्रयोगिक विद्यालय, प्रयोगशाला, पुस्तकालय एवं अन्य उपकरणों की कोई सुविधा नहीं है। जो इस कार्यक्रम को प्रभावित करते हैं।
6. **अपर्याप्त वित्तीय प्रबन्धन :-** आज भी प्रदेश में अध्यापक-शिक्षा संचालन छात्र - अध्यापकों द्वारा दिये गये शुल्क से होता है। प्रदेश द्वारा प्रदान की गयी धनराशि अत्यंत कम है। जिसके कारण इनका स्तर अत्यंत खराब है।
7. **विषय अध्यापकों की मांग एवं पूर्ति में सामंजस्य का अभाव :-** प्रदेश में अध्यापक शिक्षा विभागों के आरम्भ करने में कोई नियंत्रण नहीं है। दूसरी ओर अध्यापक शिक्षा विभागों के पास कोई आंकड़े नहीं है जिनके आधार पर वे वांछनीय संख्या में अपनी संस्थाओं में प्रवेश कर सके। वांछनीय अध्यापकों की संख्या एवं तैयार अध्यापकों की संख्या में सामंजस्य का अभाव है।
8. **अध्यापक - प्रशिक्षण के व्यावसायिक विकास हेतु उचित प्रबन्ध की कमी :-** अध्यापक - प्रशिक्षकों के व्यावसायिक विकास के लिये बहुत कम प्रेरणा प्रदान की जाती है। जिसके कारण समर संस्थायें जोकि यू.जी.सी. एवं एन.सी.ई.आर.टी. की सहायता द्वारा नियोजित की जाती है। वे भी अच्छे अध्यापक प्रशिक्षक बनाने के योग्य नहीं हैं। उनमें से बहुत से कार्यक्रम अव्यवस्थित ढंग से नियोजित किये गये जो अध्यापक-प्रशिक्षक के विकास को प्रभावित करता है।
9. **क्रिया की आवश्यकता :-** समस्या - कथन का परीक्षण इस बात को व्यक्त करता है कि क्या चाहिये या क्या आवश्यक है जोकि एक बड़ी एवं नियोजित क्रिया है एवं जिनको मूल्यांकन की पद्धति में जोड़ दिया जाना चाहिये।
10. **अध्यापक-शिक्षा में प्रयोगात्मक अनुसंधान की अपर्याप्ता:-** अध्यापक शिक्षा में जो अनुसंधान होते हैं वे उस स्तर के नहीं हैं जोकि होना चाहिये। अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम को किसी व्यवस्थित अनुसंधान द्वारा उचित ढंग से अध्ययन नहीं किया गया। परिणामस्वरूप वांछनीय सुधारों का ज्ञान व क्रियान्वयन नहीं हो सका।

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये रिक्त स्थानों पर अपने उत्तर लिखिये।

ख) उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र011 अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में अपर्याप्त वित्तीय प्रबन्धन कैसे इसे प्रभावित करता है?

30

.....
.....
.....

10.13 सारांश

शिक्षा प्रदान करने में अध्यापकों की भूमिका अग्रणी है। इसलिये अध्यापक शिक्षा की बात पर बल दिया गया है। अध्यापक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य भी अध्यापक - शिक्षा में ऐसे को सम्मिलित करना है जो उन मूल्यों को बढ़ाये जो भारतीय संस्कृति के प्रमुख अंग हैं व समाज में नये परिवर्तन लाने में सहायक हो। भारत में प्राचीन काल से अध्यापकों का स्थान महत्वपूर्ण रहा है यद्यपि उस समय शिक्षकों के लिये अलग से किसी भी प्रकार की अध्यापक शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी। किन्तु अनुसरण प्रणाली का प्रचलन था। स्वतंत्रता से पूर्व ब्रिटिश शासन व्यवस्था में अनेक प्रयास व संस्तुतियाँ अध्यापक शिक्षा के लिये की गयीं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, माध्यमिक शिक्षा आयोग कोठारी कमीशन व नयी शिक्षा नीति में अध्यापक शिक्षा के विकास के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिये।

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में अनेक कठिनाइयाँ हैं। इसलिये पूर्व प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में उन तत्वों को शामिल किया गया है। जो प्रत्येक स्तर के अध्यापकों में अपेक्षित योग्यताओं व कौशलों का विकास कर सके।

अध्यापक शिक्षा के विकास के लिये अनेक राष्ट्रीय स्तर की एवं राज्य स्तरीय एजेन्सियों की स्थापना स्वतंत्रता के बाद की गयी है। इन एजेन्सियों ने अध्यापक शिक्षा में होने वाले सुधारों के बारे में अनेक उपयोगी सुझाव दिये हैं जो अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रम को प्रभावी बनाने में सहायक है। शिक्षा के प्रसार में जिस तरह अनेक समस्याएँ हैं। फिर चाहे ये समस्याएँ अध्यापकों के चयन से सम्बन्धित हो, उनकी नीतियों से जुड़ी

हो, प्रशासनिक हो या आर्थिक अपर्याप्ता से जुड़ी हो कहीं न कहीं अध्यापक शिक्षा के विस्तार में बाधा उत्पन्न कर देती है।

10.14 अभ्यास कार्य

1. अध्यापक शिक्षा की संकल्पना लिखे व अध्यापक शिक्षा के उद्देश्यों की विस्तार से विवेचना करें।
2. भारत में अध्यापक शिक्षा के विकास का उल्लेख करें।
3. स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अध्यापक शिक्षा के विकास के लिये क्या-क्या प्रयास किये गये?
4. विभिन्न स्तरों पर अध्यापक शिक्षा किन-किन कौशलों व योग्यताओं का विकास करती है, इसके बारे में लिखें।
5. अध्यापक शिक्षा प्रदान करने में विभिन्न एजेन्सियों के योगदान का उल्लेख करें।
6. अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली प्रमुख समस्याओं का उल्लेख कीजिए।

10.15 अभ्यास कार्य

1. गांधीवादी मूल्यों की स्थापना करना, स्कूल व समुदाय के बीच सामंजस्य बनाये रखना, सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में, नवीन मूल्यों की स्थापना करना व अन्वेषणात्मक प्रवृत्ति को बढ़ावा देना।
2. मानव के सर्वांगीण विकास पर बल, विभिन्न स्तरों के पाठ्यक्रम में सामंजस्य बनाये रखना, समुदाय की सहभागिता पर बल, अध्यापक को निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया मानना।
3. प्राचीन और मध्यकालीन युग में अध्यापक शिक्षा की अलग से कोई व्यवस्था नहीं थी। नये शिक्षक पुराने शिक्षकों का अनुकरण करके ही सीखते थे।
4. वुड डिस्पैच (1854), हण्टर कमीशन (1882), विश्वविद्यालय ऐक्ट (1904), सैडलर आयोग (1919), सार्जेण्ट कमीशन (1944), आदि ने अध्यापक शिक्षा के लिये सुझाव दिये।
5. अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम का अल्प समय, सैद्धान्तिक पक्ष पर जोर, भारतीय संगठनों के अनुरूप ना होना, प्रयोगात्मक कार्य की अपर्याप्ता व प्रशिक्षण वर्ग का अपरिपक्व होना।

6. विश्वविद्यालय व महाविद्यालयों में सामंजस्य, भारतीय परिवेश के अनुसार अनुसंधान पर बल, शिक्षण विधियों में सुधार तथा पाठ्यक्रम में सुधार।
7. पूर्व प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय शिक्षा तक।
8. राष्ट्रीय व राज्य स्तर की सभी एजेन्सियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं।
9. विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करना, अनुसंधान कार्यों को बढ़ावा देना और शिक्षण कार्यों को बढ़ावा देना।
10. अध्यापक शिक्षा से सम्बन्धित समस्त समस्याओं को जानने व सुधार हेतु केन्द्र व राज्य सरकारों को परामर्श प्रदान करना।
11. अपर्याप्त वित्तीय सहायता नये प्रशिक्षण संस्थाओं के खोलने में बाधा खड़ी करता है। साथ ही नवीन विधियों व पाठ्यक्रम को क्रियान्वयन व प्रशिक्षण प्रदान करने में बाधा डालते हैं।

10.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

भट्टाचार्य जी०सी० अध्यापक शिक्षा हमारे प्रकाशन अग्रवाल पब्लिकेशन।

रावत एम० सी०, अध्यापक व्यवहार हमारे प्रकाशन अग्रवाल पब्लिकेशन।

गुप्ता एस० पी०, भारतीय शिक्षण का इतिहास एवं विकास एवं समस्याएँ।

इकाई 11 : विशिष्ट शिक्षा

संरचना

- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 उद्देश्य
- 11.3 विशिष्ट शिक्षा का संप्रत्यय
- 11.4 विशिष्ट शिक्षा का विकास
- 11.5 विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकताएँ
- 11.6 विशिष्ट बालकों का वर्गीकरण
 - शारीरिक रूप से बाधित बालक
 - श्रवण बाधित बालक
 - वाणी बाधित बालक
 - दृष्टिबाधित बालक
 - अस्थि बाधित बालक
- 11.8 मानसिक रूप से भिन्न बालक
 - प्रतिभाशाली बालक
 - सृजनात्मक बालक
 - मानसिक मंदित बालक
- 11.9 शैक्षिक रूप से भिन्न बालक
 - पिछड़े बालक
 - अधिगम निर्योग्य बालक
- 11.10 सामाजिक रूप से भिन्न बालक
 - बाल अपराधी
 - वंचित बालक
 - समस्यात्मक बालक
- 11.11 सारांश
- 11.12 अभ्यास - कार्य
- 11.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 11.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.1 प्रस्तावना

भारतीय संविधान में शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर सभी को उपलब्ध कराने का प्राविधान है। कोठारी आयोग (1966) ने प्राथमिक शिक्षा की व्यापकता पर संस्तुति की और बालकों के विशिष्ट शिक्षा व्यवस्था को महत्व दिया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में यह दृढ़तापूर्वक कहा कि जहाँ तक सम्भव हो शारीरिक रूप से अपंग बाधित तथा अन्य असमथी बालकों की शिक्षा सामान्य बालकों के साथ होनी चाहिए। गम्भीर रूप से बाधितों को विशिष्ट शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश दिया जाए। अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा के अंतर्गत बाधितों को शिक्षा को मुख्य धारा में सम्मिलित करने के परिणाम स्वरूप विशिष्ट शिक्षा का विकास अधिक तीव्रता से हुआ है। विशिष्ट शिक्षा, शिक्षा का एक वैकल्पिक रूप है। विशिष्ट शिक्षा से तात्पर्य विशिष्ट अनुदेशन का प्रारूप व कार्यक्रम विकसित करना जो शारीरिक, मानसिक, सामाजिक रूप से विशिष्ट बालकों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। यह सामान्य बालकों के शिक्षा-कार्यक्रमों के अतिरिक्त संसाधन भी होते हैं। इन्हें शिक्षा की मुख्य धारा तथा समन्वित शिक्षा भी कहते हैं।

11.2 प्रस्तावना

1. विशिष्ट शिक्षा के द्वारा छात्र विशिष्ट शिक्षा के प्रत्यय तथा प्रारूप के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2. विशिष्ट शिक्षा के द्वारा शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक रूप से विशिष्ट बालकों की आवश्यकताओं को समझ सकेंगे।
3. विशिष्ट शिक्षा के द्वारा छात्र विशिष्ट शिक्षा की विभिन्न अनुदेशनात्मक प्रक्रिया का विश्लेषण कर सकेंगे।
4. विशिष्ट शिक्षा के द्वारा छात्र विशिष्ट बालकों की समस्याओं के समाधान एवं सामाजिक स्थितियों में समायोजन के लिए सुझाव दे सकेंगे।
5. विशिष्ट शिक्षा के द्वारा प्रत्येक छात्र समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित होकर देश के उत्थान में योगदान दे सकेंगे।

11.3 विशिष्ट शिक्षा का संप्रत्यय

विशिष्ट शिक्षा के अर्थ को विलक्षण बालकों की विशिष्ट आवश्यकता, योग्यता तथा अनेक व्यक्तिगत शिक्षा प्रणाली के रूप में देखा जा सकता है। विशिष्ट शिक्षा के

स्वरूप को क्या, कहाँ कैसे आदि जैसे शब्दों में भी देखा जा सकता है।

विशिष्ट शिक्षा

विशिष्ट शिक्षा को पाठ्यक्रम के आधार पर कई बार सामान्य शिक्षा से पृथक किया जाता है। उदाहरणार्थ स्वयं सहायता में चातुर्य और निपुणता को शिक्षण हेतु 'ब्रेल' भाषा को पढ़ने व लिखने का प्रशिक्षण दृष्टि बाधित बालकों के लिए पाठ्यक्रम का महत्वपूर्ण अंग है। विशिष्ट शिक्षा का पाठ्यक्रम सामान्य पाठ्यक्रम से भिन्न है क्योंकि इसे वैयक्तिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए बनाया जाता है विशिष्ट शिक्षा का स्वरूप सामान्य शिक्षा से भिन्न है, इसलिये इसे सहजता से पहचाना जा सकता है। जबकि सामान्य शिक्षा का शिक्षण सामान्य कक्षाओं में होता है। विशिष्ट शिक्षा संसाधन युक्त कक्षाओं, विशेष शिक्षा संस्थाओं या आवासीय शिक्षण केन्द्रों में दी जाती है। विशिष्ट शिक्षा की पद्धति सामान्य शिक्षा की पद्धति से भिन्न है। विशिष्ट शिक्षा के अन्तर्गत, शिक्षाविद् छात्रों को समझाने के लिए सांकेतिक भाषा का प्रयोग कर सकता है। अन्य क्षेत्र में शिक्षाविद मन्दबुद्धि छात्रों को शिक्षण हेतु कार्य विश्लेषण और कुशल प्रशिक्षण का प्रयोग कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य अधिगम / आयोग्य बालक की शिक्षा के लिए प्रक्रिया - प्रशिक्षण और बर्हुमुखी संचालित प्राविधियों का प्रयोग कर सकते हैं।

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थान में लिखो।

ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र01 विशिष्ट शिक्षा से आप क्या समझते हैं?

30

.....

.....

11.4 विशिष्ट शिक्षा का विकास

19वीं शताब्दी में अमेरिका तथा यूरोप में अपंग बालकों की विशिष्ट शिक्षा हेतु क्रमबद्ध प्रयास प्रारम्भ हुए। फ्राँस के इटार्ड को विशिष्ट शिक्षा के इतिहास के अग्रणी मानते हैं। इटार्ड प्रथम व्यक्ति थे। जिन्होंने विशिष्ट शिक्षा अपंग बालकों के लिये प्रारम्भ की। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में विक्टर नामक 11 या 12 वर्षीय जंगली बालक की शिक्षा के बारे में इटार्ड ने निश्चय कर लिया। उन्होंने बालक के व्यवहार को

नायकीय विधि से व्यवस्थित शिक्षण के द्वारा सुधार दिया, इटार्ड अनुदेशनात्मक विधियों के जन्मदाता थे। वह प्रथम वाणी विशेषज्ञ, बधिरों के चेहरे के भाव से शिक्षा को देने वाले तथा मानसिक मन्दितों और शारीरिक रूप से बाधितों की विशिष्ट शिक्षा के जन्मदाता समझे जाते हैं।

संगिनत मानसिक मन्दित बालकों के महान शिक्षक के रूप में जाने जाते हैं। इटार्ड के कार्यों से प्रेरणा पाकर, उन्होंने 1837 में पेरिस में मानसिक मन्दितों के लिए एक शिक्षण संस्था की स्थापना की। बालक के सामान्य रूप से शारीरिक, आत्मिक तथा नैतिक विकास को उन्नतिशील बनाना मुख्य रूप से उनके शिक्षण का उद्देश्य था। 'उनके द्वारा विकसित प्रविधियां तथा संसाधन कालान्तर में मॉटेसरी विधि के आधार बन गये।

दृष्टि विहीन बालकों की शिक्षा के इतिहास में लुइस ब्रेल का महान योगदान है। बचपन में दुर्घटना होने के कारण दृष्टि विहीन हो गये। दृष्टि बाधित बालकों की पढ़ाई व लिखाई के लिये एक क्रान्तिकारी आयाम का विकास किया। ब्रेल विधि दृष्टि बाधितों के लिए वरदान है तथा शिक्षण के क्षेत्र में यह आज भी सब से प्रभावशाली विधि के रूप में प्रचलित है।

19वीं शताब्दी के मध्य इटार्ड एवं सेग्विन तथा उनके उत्तराधिकारियों के द्वारा ज्ञान सम्बन्धी शोध अध्ययन तथा विचारों ने विशिष्ट शिक्षा के क्षेत्र को आज तक की परिस्थितियों में पहुँचा दिया। आज की विशिष्ट शिक्षा का स्वरूप उन्हीं विशेषज्ञों के कार्यों पर आधारित है जो निम्नलिखित हैं-

1. मानसिक मन्दित बालकों के लिए वैयक्तिक अनुदेशन प्रदान करना।
2. मानसिक मन्दित बालकों के लिए बनाई गई विशिष्ट कार्यों की सावधानी पूर्वक रूपरेखा बनाना।
3. प्रोत्साहन पर बल देना।
4. बालक के वातावरण की उचित व्यवस्था करना।
5. ठीक कार्य के लिये तुरन्त पुनर्बर्लन देना।
6. विभिन्न कार्य क्षेत्र की प्रतिभाओं का विकास करना।
7. प्रत्येक के शिक्षण में जितना सम्भव हो अधिक से अधिक विश्वास की भावना का विकास करना।

8. इस स्तर तक के बालक के सुधार की सम्भावना के प्रति प्रयास करना।

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थान में लिखो।

ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र03 विशिष्ट शिक्षा के प्रारम्भिक विकास का स्वरूप कैसा था?

उ0

.....

.....

11.5 विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकताएं

जब बालकों ने वैयक्तिक भिन्नताएँ इस सीमा तक पायी जाती हैं कि उन्हें विशिष्ट बालकों की श्रेणी में रखना आवश्यक हो जाता है तब ये बालक सामान्य शिक्षण पद्धतियों एवं शिक्षा व्यवस्था से लाभान्वित नहीं हो पाते हैं। एक प्रजातान्त्रिक प्रणाली वाले राष्ट्र में जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को योग्यताओं व क्षमताओं का अधिकतम विकास मानवीय अधिकार माना जाता है। राष्ट्र समाज व अभिभावकों का यह कर्तव्य हो जाता है कि विभिन्न विशिष्टताओं वाले बालकों व्यक्तियों के लिए विशेष शिक्षा की व्यवस्था की जाये।

निम्नलिखित विशिष्ट आवश्यकतायें भी विशिष्ट शिक्षा के संगठन एवं प्रसार को बल प्रदान करती हैं-

1. विशिष्ट बालक सामान्य स्कूलों की सामान्य कक्षाओं से लाभ नहीं उठा पाते हैं। अतः उनके लिए विशेष शिक्षण विधियों, पाठ्यक्रमों एवं शिक्षकों की आवश्यकता होती है। यदि उनकी ओर ध्यान न दिया जाए तो वे समस्यात्मक बालक बन जाते हैं और वे स्वयं परिवार तथा समाज को हानि पहुँचाते हैं। इसीलिए विशिष्ट बालकों के लिए विशिष्ट शिक्षा की व्यवस्था एक अनिवार्य आवश्यकता बन जाती है।
2. विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता मानसिक व शारीरिक विकलांग बालकों को भी होती है क्योंकि वे परिवार व समाज में समायोजित होने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। यदि इन बालकों पर ध्यान न दिया जाए तो ये बालक कुण्ठा एवं

भगनाशा से ग्रसित होकर मानसिक दृष्टि से बीमार हो जायेंगे और समाज के ऊपर बोझ बन जायेंगे। उचित शिक्षा प्रदान करने के द्वारा उन्हें समाज का उपयोगी सदस्य बनाया जा सकता है।

3. विशिष्ट शिक्षा से अभिभावकों, शिक्षकों एवं शैक्षिक प्रबन्धकों को विशिष्ट बालकों की समस्याओं को समझने में सहायता मिलती है। इसके द्वारा विशिष्ट बालक समाज से सही ढंग से समायोजन स्थापित कर लेते हैं।
4. विशिष्ट बालक अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं के अनुसार विकास कर सके इसके लिए विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता होती है। विशिष्ट शिक्षा के द्वारा हम बालकों को समायोजित, उत्पादक एवं आत्म-निर्भर बना सकते हैं।

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थान में लिखो।

ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र03 शिक्षा जगत में विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता क्यों है?

उ0

.....

.....

.....

11.6 विशिष्ट बालकों का वर्गीकरण

विभिन्न लेखकों एवं विद्वानों ने विशिष्ट बालकों को उनकी विशिष्टता की प्रकृति व क्षेत्र के आधार पर अलग-अलग तरह से वर्गीकृत किया है। मनोविज्ञान तथा शिक्षा के क्षेत्र में व्यावहारिक उपयोग के लिए समस्त प्रकार से विशिष्ट बालकों को चार मुख्य वर्गों में रखा जा सकता है।

विशिष्ट बालकों का वर्गीकरण

शारीरिक रूप से विशिष्ट बालक	मानसिक रूप से विशिष्ट बालक	शैक्षिक रूप से विशिष्ट बालक	सामाजिक रूप से विशिष्ट बालक
<ul style="list-style-type: none"> ● श्रवण बाधित ● वाणी बाधित ● दृष्टि बाधित ● अस्थि बाधित 	<ul style="list-style-type: none"> ● प्रतिभाशाली ● सृजनात्मक 	<ul style="list-style-type: none"> ● पिछड़े बालक ● अधिगम ● निर्योग्य बालक 	<ul style="list-style-type: none"> ● बाल अपराधी ● वंचित बालक ● समस्यात्मक बालक

क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थान में लिखो।

ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र04 विशिष्ट बालकों को वर्गीकृत करने के चार मुख्य आधार कौन से हैं?

उ0

.....

.....

11.7 शारीरिक रूप से बाधित बालक

इस श्रेणी में वे सभी बालक आते हैं जिनमें किसी भी प्रकार की ऐसी शारीरिक अक्षमता एवं अयोग्यताएँ होती हैं जिनके कारण वे सामान्य बालकों के समान शिक्षण विधियों का लाभ नहीं उठा पाते एवं अन्य आयोग्यताएँ प्रायः इन बालकों के अन्य क्षेत्रों में विकास में भी उत्पन्न करती हैं। अतः उन्हें शिक्षित करने व स्वावलम्बी बनाने के लिए विशेष प्राविधियों व सहायक यन्त्रों के उपयोग से शिक्षा देने व निर्देशन प्रदान करने की आवश्यकता होती है।

शारीरिक रूप से विकलांग बालक को दो उपवर्गों में रखा जा सकता है-

1. सांवेदिक रूप से विकलांग बालक - जैसे श्रवण बाधित बालक, वाणी बाधित बालक, दृष्टि बाधित बालक।
2. गतीय रूप से विकलांग बालक - जैसे शरीर के किसी अंग को पोलियो, लकवा, अनियमित रक्तचाप, दुर्घटना या लम्बी बीमारी के पूर्ण या अनियन्त्रित व अनियमित कर देती है।

सांवेदिक रूप से विकलांग बालक

1. श्रवण बाधित बालक - वे समस्त बालक जिन्हें सुनने के सम्बन्ध में कोई कठिनाई है श्रवण बाधित बालक कहलाते हैं। ध्वनि का प्रसार 1 से 30 डेसिबल्स होता है। 130 डी0बी0 के ऊपर की ध्वनि दर्द की संवेदना देती है। ध्वनि के परिसर के अनुसार श्रवण बाधित बालकों को चार भागों में बाँटा जा सकता है-

स्त	श्रवण बाधित के प्रकार	डी0बी0 स्तर	बाधित प्रतिशत
1.	कम बाधित बालक	35 से 51 डी0बी0 तक	40 प्रतिशत
2.	मन्द बाधित बालक	55 से 69 डी0बी0 तक	40 से 50 प्रतिशत
3.	गम्भीर बाधित बालक	70 से 89 डी0बी0 तक	50 से 75 प्रतिशत
4.	पूर्ण/गहन बाधित बालक	90 से 100 डी0बी0 तक	100 प्रतिशत

श्रवण बाधितों के लक्षण

श्रवण बाधित बालकों के व्यवहारिक लक्षण निम्नलिखित हैं-

1. व्यवहार में एकाग्रता नहीं होती है।
2. ऐसे बालक गतिविधियों के बारे में और कार्यों के प्रति अधिक सजग रहते हैं तथा ध्वनि पर ध्यान नहीं दे पाते हैं।
3. अध्यापकों की गतिविधि और उसके हाव-भाव पर ध्यान देते हैं।
4. एक ओर को अपना सिर झुका करके सुनने का प्रयास करते हैं।
5. प्रश्नों को बार-बार दोहराने के लिए अध्यापक से कहते हैं।
6. समान ध्वनी के शब्दों में उन्हें अक्सर भ्रम होता है।
7. बिना जानकारी के भी वार्ता के बीच में निरर्थक बोल पड़ते हैं।
8. शाब्दिक निर्देशनों को समझने में और अनुसरण करने में कठिनाई होती है।
9. कक्षा में ध्वनि के स्रोत नहीं जान पाते।
10. शब्दों के सही उच्चारण में उसे कठिनाई होती है।
11. बिना जानकारी के भी कुछ बोलते रहते हैं।
12. बहुत धीरे बोलते हैं।

श्रवण बाधित बालकों की शिक्षा

श्रवण बाधित बालकों की शिक्षा को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है। जो इस प्रकार है-

1. **सम्प्रेषण तकनीकी** - श्रवण बाधित बालक के सम्बन्ध में जो सबसे बड़ी कठिनाई है वह सम्प्रेषण के सम्बन्ध में है। अतः उसे भली प्रकार शिक्षित करने के लिए कुछ विशेष सम्प्रेषण तकनीकी अपनायी जानी चाहिए। कुछ सम्प्रेषण तकनीकी निम्नलिखित है-

- (अ) चिन्ह भाषा
- (ब) ओष्ठ पठन
- (स) संकेत भाषा
- (द) स्पर्श विधि
- (य) गति विधि
- (र) प्रवर्धक प्रयोग

2. शिक्षण तकनीकी

श्रवण बाधित बालकों के लिए अग्रलिखित शिक्षण तकनीकी अपनायी जानी चाहिए-

1. शिक्षण विषय-वस्तु को सहायक सामग्री की सहायता से पढ़ाया जाना चाहिए। इनके लिए सहायक आकृतियाँ, चित्र, संकेत शब्द, मॉडल मानचित्र, इशारे आदि सामग्री का प्रयोग की जा सकती है।
2. श्रवण बाधित बालक को एक नोट लेने वाला व्यक्ति प्रदान किया जाना चाहिए।
3. श्रवण बाधित बालकों के लिए एक विशेष अध्यापक, जो प्रशिक्षण प्राप्त हो को ही नियुक्त किया जाना चाहिए।
4. श्रवण बाधित बालकों की अधिगम कमियों की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। यह देखना चाहिए कि वे शब्दों को ठीक लिखते और बोलते हैं अथवा नहीं।
5. आजकल श्रवण बाधित बालक के शिक्षण के लिए कम्प्यूटर का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग कम्प्यूटर सहायता प्राप्त अनुदेशन के लिए भी किया जाता है।

3. पृथक कक्षाएँ

कुछ श्रवण बाधित बालक ऐसे होते हैं जो जन्म से कुछ वर्षों बाद बाधा से पीड़ित होते हैं तथा जो भाषा ज्ञान प्राप्त कर चुके होते हैं। इन बालकों की अधिगम कमियाँ को पृथक कक्षाएँ आयोजित करके दूर किया जा सकता है।

4. पृथक विद्यालय

जो बालक जन्म से श्रवण बाधित हैं अथवा बाधिर हैं, उन्हें सामान्य बालकों के साथ बैठाकर शिक्षा नहीं दी जा सकती है। अतः उनके लिए पृथक विद्यालय बनाये जाने

चाहिए जहाँ बाधियों के शिक्षित करने सम्बन्धी सभी उपकरण, सामग्री, सुविधा और प्रशिक्षित अध्यापक की व्यवस्था है।

5. प्रगतिक्रम

श्रवण बाधित बालक की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य उसे सामान्य शिक्षा की धारा में लाना है। यदि वह एक पृथक विद्यालय में अथवा पृथक कक्षा में पढ़ता है तो उसकी शैक्षिक प्रगति इस पर निर्भर करती है कि वह कब तक इस योग्य हो जाता है कि सामान्य कक्षा में बैठकर लाभान्वित हो सके। अतः कुछ विषयों जिन्हें वह सामान्य बालकों के साथ पढ़ सकता है यथा-कला, शारीरिक प्रशिक्षण में उसे सामान्य कक्षा में बैठाया जाय जिससे वह मुख्य धारा में आ सके।

6. शैक्षिक और व्यवसायिक निर्देशन

श्रवण बाधितों बालकों को अभिरूचि, अभियोग्यता को ध्यान में रखकर उन्हें शैक्षिक निर्देशन दिया जाना चाहिए। ऐसे बालकों के व्यवसाय की योजना पूर्व में बनाना अनिवार्य है। अतः प्रिंटिंग, कलात्मक कार्य, शोधकार्य हिसाब - किताब का कार्य भी श्रवण बाधित बालक भली प्रकार कर सकते हैं।

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थान में लिखो।

ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र05 विशिष्ट बालकों को वर्गीकृत करने के चार मुख्य आधार कौन से हैं?

उ0

.....
.....
.....

वाणी बाधित बालक

वाणी बाधित वे बालक हैं जो मुख की आवाज, बोले गये शब्दों में तालमेल, तथा शब्दों को संयोजित करने में कठिनाई का सामना करते हैं।

जॉन जिसेनसन के अनुसार जब कोई बालक बोलता है और श्रोता को दृष्टि से समुचित सम्प्रेषण नहीं होता है ध्यान देने पर भी स्पष्ट नहीं हो तब वाणी बाधित अथवा भाषा का दोष मानते हैं।

वाणी बाधित बालकों के लक्षण

विशिष्ट शिक्षा

वाणी बाधित बालक के मुख्य व्यवहारिक लक्षण इस प्रकार है -

1. बोलते समय हकलाते हैं। धारा प्रवाह बोलने में उन्हें कठिनाई होती है, रूक-रूक करके बोलते हैं।
2. बोलने में या कक्षा में उत्तर देने में समस्या होती है।
3. वाणी बाधित बालक के स्तर का विस्तार असामान्य होता है एवं उनकी आयु के अनुकूल नहीं होता।
4. बोलते समय उन्हें बहुत ही एकाग्र होना पड़ता है।
5. सम्प्रेषण में बाधा उत्पन्न होती है। बोलने वाले सुनने वाले दोनों को कठिनाई होती है।

वाणी बाधित बालकों हेतु शिक्षा प्राविधान

- दृश्य-श्रव्य सामग्री का उपयोग
- व्यवहार रूपान्तर तकनीकी
- भाषा प्रयोगशाला

वाणी बाधित बालकों हेतु कक्षा प्रबन्धन

वाणी बाधित बालकों के शिक्षण में किसी भी आयाम को प्रयोग किया जाये एक कक्षा शिक्षक की अपने कक्षा प्रबन्ध में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

- (1) कक्षा का वातावरण अधिक प्रजातांत्रिक होना चाहिए।
- (2) शिक्षक को इस प्रकार के बालकों को ध्यानपूर्वक सुनने पर बल देना चाहिए।
- (3) इस प्रकार के बालकों को सम्प्रेषण तथा बोलने का समुचित अवसर देना चाहिए।
- (4) शिक्षक को सामूहिक उच्चारण प्रविधि प्रयोग करना चाहिए।
- (5) इस प्रकार के बालकों को आगे बैठाने की व्यवस्था करनी चाहिए।
- (6) शिक्षक को ऐसी परिस्थितियों को उत्पन्न करना चाहिए जिनमें यह बालक अपने को असमर्थ न समझे।

वाणी बाधित बालकों हेतु विद्यालय

वाणी बाधित बालकों के लिए विशिष्ट विद्यालय अधिक प्रभावशाली होते हैं।

जब इन विद्यालयों में वाणी यन्त्रों की सुविधा उपलब्ध हो मुख्य धारा के कौशलों का ही उपयोग करना होता है। विशिष्ट शिक्षण तथा वाणी क्षेपी के विशेषज्ञ की अहम भूमिका होती है। वेविस्टर तथा मैक कोनल (1987) ने यह सुझाव दिया कि इस प्रकार के बालकों को स्वाभाविक सन्दर्भ में भाषा का शिक्षण किया जाये। बालकों को पढ़ने पर और शब्दों व वाक्यों के स्वरूप पर अधिक बल देना चाहिए।

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थान में लिखो।

ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र06 वाणी बाधित बालकों हेतु कक्षा प्रबन्धन किस प्रकार किया जा सकता है?

उ0

दृष्टि बाधित बालक

दृष्टि बाधित बालक वे बालक होते हैं जो ठीक प्रकार से देख पाने में असमर्थ होते हैं। शैक्षिक दृष्टि से चक्षुहीनता एक ऐसा दृष्टि विकार है जिसके परिणामस्वरूप दृश्य-सामग्री के प्रयोग से शिक्षण आंशिक रूप से भी सम्भव न हो पाता है।

दृष्टि बाधित बालकों का वर्गीकरण

दृष्टि बाधित बालकों को प्रमुख रूप से दो वर्गों में विभाजित किया है।

- (1) आंशिक रूप से दृष्टि बाधित बालक
- (2) गम्भीर रूप से दृष्टि बाधित बालक

आंशिक रूप से दृष्टि बाधित बालक वह है जो यद्यपि दृष्टि से सम्भीरतापूर्वक असमर्थ है तथापि वह पढ़ सकते हैं इनकी दृष्टि क्षमता (20 से 70) तक होती है।

दृष्टि बाधित बालकों के लक्षण

दृष्टि बाधित बालकों के कुछ प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं-

- (1) पलकों पर खुर्जली होना और सूजन होना।
- (2) आँखे तिरछी होना।

- (3) प्रकाश के प्रति क्रियाशील होता है।
- (4) सिर की अवस्था असामान्य रहती है।
- (5) प्रकाश के प्रति अनावश्यक रूप से संवेदनशील रहना।
- (6) पढ़ने तथा लिखने की समस्या रहना।
 - (अ) श्याम पट्ट पर लिखे हुए को नहीं पढ़ा पाता है।
 - (ब) पाठ्यवस्तु को पास रखकर ही पढ़ता है।
 - (स) वाक्यों के ऊपर व नीचे का चयन कर लेता है।
 - (द) पढ़ते समय वर्तनी तथा अक्षरों में भ्रम होता है।

दृष्टि बाधित बालकों के लिए प्राविधान

शैक्षिक माध्यम - एक औसत बालक के लिए किताब 10 या 12 अंक के टंकन में होती है। पर आंशिक देखने वाले बालकों के लिए 18 या 24 अंक के टंकन में होती है। प्रिन्ट साफ तथा विस्तृत होना चाहिए।

रोशनी - प्राकृतिक तथा बनावटी दोनों प्रकार की रोशनी सभी बालकों के लिए महत्व रखती है। यह कम देखने वाले बालकों के लिए और भी अधिक महत्व रखती है। ऐसे बालकों के लिए हर स्थान रोशनीयुक्त होना चाहिए। कक्षी की छतें सफेद तथा दीवारें हल्के रंग में रंगी होनी चाहिए तथा उनमें चमक नहीं होनी चाहिए। भूरे तथा गहरे बोर्ड में परावर्तन अधिक होता है। अतः उनका प्रयोग करना चाहिए।

फर्नीचर - एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जा सकने वाला फर्नीचर अधिक अच्छा होता है। इन्हें बालक किसी भी स्थान पर ले जाकर बैठ सकते हैं।

शिक्षा की मुख्य धारा में कक्षा प्रबन्धन

दृष्टि बाधित बालकों हेतु धनात्मक पाठ्यक्रम का उपयोग किया जाय जिससे उन्हें सीखने में सहायता मिलती है और उनके लिये सुविधाजनक होता है। अतिरिक्त पाठ्यक्रम का उपयोग न किया जाय। कौशलों के विकास से सीखने में सरलता होती है। धनात्मक पाठ्यक्रम के मुख्य क्षेत्र निम्नलिखित होते हैं-

- (1) ब्रेल लिपि प्रणाली का उपयोग करना।
- (2) सहायक सामग्री का उपयोग करना।

- (3) चलने फिरने का प्रशिक्षण देना।
- (4) सामाजिक कौशलों का विकास करना।
- (5) कौशलों का विकास करना।
- (6) इन्द्रियों का प्रशिक्षण देना।

सामाजिक कौशल का विकास

दृष्टि बाधित बालकों ने सामाजिक कौशल का भी अभाव होता है। सामाजिक रूप से अच्छे व्यवहारों के लिये प्रोत्साहित किया जाये और शाब्दिक अभिप्रेरणा भी दी जाय। उन्हें अपेक्षित सामान्य व्यवहारों का प्रशिक्षण दिया जाय। कक्षा में बोलने का अवसर दिया जाये जिससे उनमें आत्म विश्वास का विकास होगा।

इन्द्रियों का प्रशिक्षण

बहुइन्द्रिय सहायक सामग्री का उपयोग करने से दृष्टि बाधितों को लाभ होता है। इससे इन्द्रियाँ प्रशिक्षित होती हैं तथा कौशलों का विकास होता है।

बोध प्रश्न :

- क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थान में लिखो।
- ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र07 दृष्टि बाधित बालकों का वर्गीकरण किस प्रकार किया गया है?

उ0

.....

.....

.....

गतीय रूप से विकलांग बालक

अस्थि बाधित बालक

अस्थि बाधित उन बालकों को कहते हैं जिनकी किसी एक या अधिक अस्थियों में कोई दोष आ गया हो या क्षतिग्रस्त हो गई हो जिससे वह सामान्य बालकों की भाँति शारीरिक अभ्यास करने में असमर्थ हो गया हो ऐसे बालकों की मॉसपेशियों तथा जोड़ों अथवा अस्थियों में किसी कारण दोष आ जाता है।

अस्थि बाधित बालकों का वर्गीकरण

अंगों की असमर्थता के आधार पर तीन वर्गों में अस्थि बाधितों को बाँटा गया

है-

(1) नीचे के अंगों की असमर्थता (2) ऊपरी अंगों की असमर्थता (3) कुछ अंगों का न होना।

अस्थि बाधित बालकों हेतु शैक्षिक प्रविधान

अस्थि बाधित बालकों को शिक्षित करने हेतु कुछ विशेष प्रविधान करना और कुछ विशेष सुविधाएँ देना अनिवार्य है-

विशेष कक्षा

कुछ अस्थि बाधित बालक ऐसे होते हैं जो सामान्य बालकों के साथ बैठकर सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर सकते। ऐसे बालकों के लिए विशेष कक्षाओं का आयोजन किया जाता है। उसी विद्यालय में अलग कक्ष में बैठकर कुछ प्रशिक्षित शिक्षक इन बालकों को पढ़ाते हैं। विशेष कक्षा में कुछ समय बैठने के पश्चात् ये नियमित कक्षा में बैठ सकते हैं।

अतिरिक्त कक्षा

इस प्रकार के विद्यार्थियों को सामान्य कक्षाओं के साथ-साथ कुछ अतिरिक्त ध्यान देने की आवश्यकता होती है अतः ऐसे अस्थि बाधित बालकों के लिए स्कूल के उपरान्त अथवा छुट्टियों के दिनों में भी थोड़े समय के लिए कक्षाओं का आयोजन करना चाहिए। इस प्रकार अध्यापक बालकों की व्यक्तिगत सामाजिक तथा संवेगात्मक समस्याओं को समझ कर उन्हें हल कर सकेगा।

विशेष विद्यालय

विशेष विद्यालय मुख्यतः विकलांग बालकों के लिये ही बनाये जाते हैं। निम्नलिखित विशेष सुविधाओं की इन विशेष विद्यालयों में व्यवस्था होनी चाहिए।

1. शारीरिक उपचार कुछ होना चाहिए। यहाँ चिकित्सक तथा आवश्यक दवाइयाँ होनी चाहिए।
2. बालकों की शारीरिक बाधिता को ध्यान में हुए व्यायामशाला होनी चाहिए। जो बालकों का मनोरंजन करने के साथ उनका उपचार भी कर सके।
3. अधिकतर कक्षाएँ धरातल पर आयोजित हो।

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थान में लिखो।

ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र08 गतीय रूप से बाधित बालक कितने प्रकार के होते हैं?

30

.....

.....

.....

11.8 मानसिक रूप से भिन्न बालक

प्रतिभासम्पन्न बालक, सामान्य बालकों से किसी न किसी प्रतिभा अथवा गुण में श्रेष्ठ होते हैं।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने प्रतिभाशाली बालकों को उनकी बुद्धि लब्धि के आधार पर परिभाषित किया है और उनके लिए बुद्धि लब्धि (I.Q.) के विभिन्न स्तर निर्धारित किये हैं। उदाहरणार्थ टर्मन ने अपने गूढ़ अध्ययन के आधार पर 140 बुद्धि लब्धि को प्रतिभाशाली बालक की निम्नतम बुद्धि लब्धि सीमा बताया है। कुछ मनोविज्ञान शास्त्री बालक 120 से 140 तक की उच्च बुद्धि लब्धि वाले बालकों को प्रतिभाशाली बालक मानते हैं। जबकि कुछ अन्य विद्वान प्रतिभाशाली बालकों को सांख्यिकीय दृष्टि से परिभाषित करते हैं। उनके अनुसार किसी बुद्धि परीक्षण पर प्राप्त अंकों के आधार पर उच्चतम 2 से 3 प्रतिशत तक बालक प्रतिभाशाली बालक होते हैं।

टरमैन तथा ओडेन के अनुसार - “प्रतिभासम्पन्न बालक शारीरिक गठन, सामाजिक समायोजन व्यक्तित्व के लक्षणों, विद्यालय, उपलब्धि, खेल की सूचनाओं और रूचियों की बहुरूपता में सामान्य बालकों से बहुत श्रेष्ठ होते हैं।”

परीक्षण के आधार पर	शिक्षक निरीक्षण के आधार पर		अभिलेखों के आधार पर
1. बुद्धि परीक्षण	कक्षागत व्यवहार का निरीक्षण	कक्षा के बाहर व्यवहार का निरीक्षण	1. संचयी अभिलेख
2. उपलब्धि परीक्षण			2. स्थानान्तरण प्रमाण-पत्र
3. रूचि एवं अभिक्षमता			3. स्वास्थ्य अभिलेख
4. सृजनात्मकता परीक्षण			4. निर्देश एवं परामर्श अभिलेख
5. व्यक्तित्व परीक्षण			5. मासिक एवं सत्र प्रगति अभिलेख
			6. उपाख्यान संबंधी अभिलेख

1. शारीरिक विशेषतायें

- प्रतिभाशाली बालक में सामान्य बालकों की अपेक्षा दो माह पूर्व दांत निकल आते हैं। इसी प्रकार वे सामान्य बालकों से दो माह पहले चलना-फिरना और बोलना शुरू कर देता है।
- इनकी ज्ञानेन्द्रियां प्रखर होती हैं।
- प्रतिभाशाली बालकों में किशोरावस्था के लक्षण शीघ्र दिखायी देते हैं।

2. संवेगात्मक विशेषतायें

- संवेगात्मक रूप से प्रतिभाशाली बालक स्थिर और समायोजित होते हैं।
- प्रायः प्रसन्न रहते हैं और समस्याओं तथा कठिनाइयों का स्वतन्त्रता से सामना करने को महत्व देते हैं।
- नये लोगों के साथ नये स्थानों पर नई स्थितियों में ये बालक शीघ्र ही समायोजन कर लेते हैं।
- इनका चरित्र और व्यक्तित्व साधारणतः दूसरे बालकों से श्रेष्ठ होता है।

3. सामाजिक विशेषतायें

- प्रतिभाशाली बालक क्योंकि हंसमुख व प्रसन्नचित रहते हैं। अतः वे सामाजिक तौर पर अधिक परिपक्व तथा सर्वप्रिय होते हैं।
- ऐसे बालक अपनी आयु स्तर से अधिक आयु स्तर वाले बालकों को मित्र बनाना पसन्द करते हैं, लेकिन खेलना वे अपने आयु-स्तर के बालकों के साथ ही पसन्द करेंगे।
- ऐसे बालक घर, स्कूल तथा समुदाय कार्यों की जिम्मेदारी लेते हैं।
- इनमें नेतृत्व की विशेषतायें बहुत होती हैं।

4. शैक्षणिक उपलब्धि

- प्रतिभाशाली बालक साहित्य, विज्ञान, व्याकरण, गणित, इतिहास, भूगोल आदि विषयों में अध्यापक द्वारा श्रेष्ठ घोषित होते हैं।
- पुरस्कार और छात्रवृत्तियाँ जीतने में भी प्रतिभाशाली बालक सबसे आगे रहते हैं।

- अधिक पाठ्यक्रम को कम समय में समझने की क्षमता होती है।
- ये बालक उन क्रियाओं में अधिक रूचि लेते हैं जिनमें मानसिक परिपक्वता की आवश्यकता होती है।

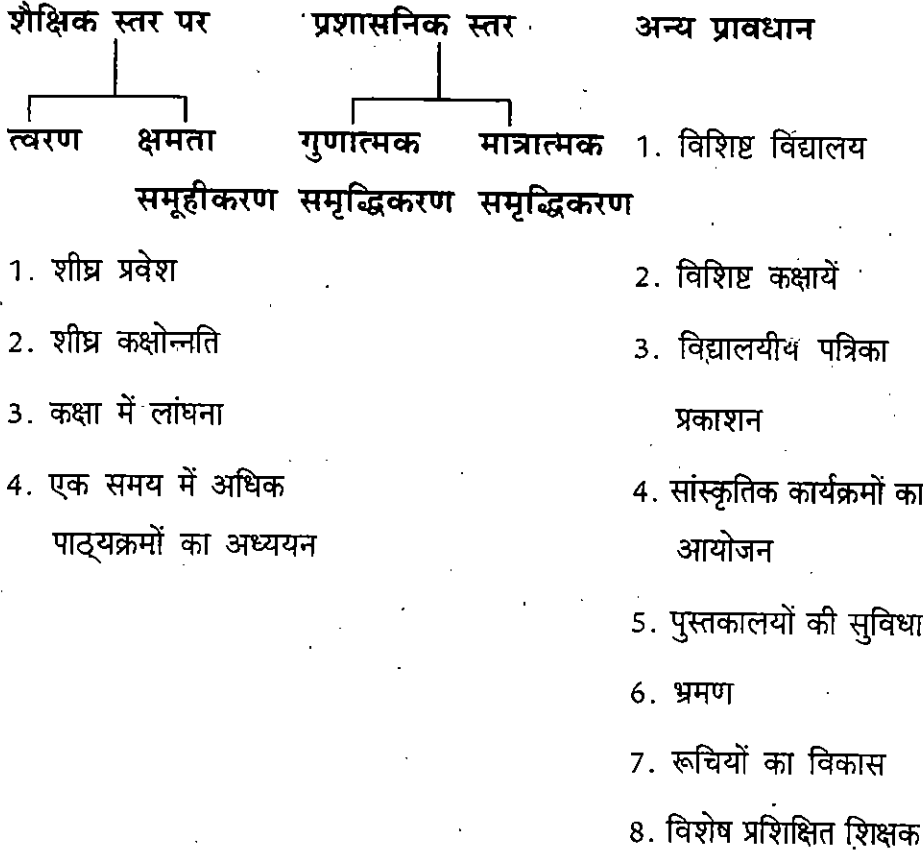
5. व्यक्तिगत विशेषतायें

- प्रतिभाशाली बालक सहयोगी प्रकृति की होते हैं।
- यह सुझावों को मानने के लिए तैयार रहते हैं।
- इनमें हास्य विनोद का भाव अधिक होता है।
- इनका सामाजिक समायोजन सामान्य बालकों की अपेक्षा अधिक होती है।
- ऐसे प्रतिभावान बालकों को कक्षाओं में उनके सहपाठी अधिक पसन्द करते हैं।

6. बौद्धिक विशेषतायें

- प्रतिभाशाली बालक मानसिक रूप से सामान्य बालक से श्रेष्ठ होता है।
- ऐसे बालकों में ज्ञान की जिज्ञासा, मौलिकता, दृढ़ इच्छा, हास्य-विनोद का स्वभाव तथा सामान्य बुद्धि सामान्य बालकों से अधिक होती है।
- इनमें तर्क करने की योग्यता अधिक होती है।
- ऐसे बालकों का अवधान विस्तार भी अधिक होता है।
- प्रतिभाशाली बालकों की रूचियां सामान्यीकरण की योग्यता भी सामान्य बालकों से अधिक होती है।
- इनका अधिगम तीव्रगति से होता है और सरलता से होता है।
- यह स्पष्टवादी, फुर्तीले और श्रेष्ठ आत्म-अभिव्यक्ति वाले होते हैं।
- इनका शब्द भंडार भी विशाल होता है।
- ये बालक अपनी कक्षा के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें एवं अपनी कक्षा की पुस्तकें एक दो वर्ष पहले ही पढ़ने में समर्थ होते हैं।
- वे अपना ध्यान अधिक केन्द्रित कर सकते हैं।
- इन बालकों की स्मृति अन्य बालकों की अपेक्षा श्रेष्ठ होती है।

शैक्षिक प्रावधान



प्रतिभासम्पन्न बालकों के लिये किये जाने वाले शैक्षिक प्रावधान निम्न स्तरों पर लागू किये जा सकते हैं-

- प्रशासनिक स्तर पर
- शैक्षिक स्तर पर
- अन्य प्रावधान

प्रशासनिक स्तर पर शैक्षिक प्रावधान

प्रतिभासम्पन्न बालकों के लिए विद्यालय प्रशासन अपने स्तर पर जो प्रयास कर सकता है।

(अ) त्वरण

(ब) क्षमता समूहीकरण

त्वरण - त्वरण का अर्थ है शैक्षिक परियोजना के द्वारा बालक को दी जाने वाली ऐसी छूट या गति जो उसे औसत से कम आयु में ही प्राप्त हो गयी है। इस प्रकार के त्वरण का प्रावधान निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है-

- शीघ्र प्रवेश
- शीघ्र कक्षोन्नति
- कक्षाएं लांघना
- एक समय में एक से अधिक पाठ्यक्रमों का अध्ययन

(2) योग्यता सामूहीकरण - एक सी प्रतिभा, योग्यता एवं रुचियों वाले बालकों का एक समूह बनाकर समूह को उसकी योग्यतानुसार कठिनाई स्तर का कार्य सौंपा जाता है। इस प्रकार तैयार समूह योग्यता समूह तथा यह प्रक्रिया योग्यता समूहीकरण कहलाती है।

शैक्षिक स्तर पर प्रावधान

पाठ्यक्रम को चुनौतीपूर्ण बनाने के लिये पाठ्यक्रम को अधिक समृद्ध बनाकर बालक के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिये।

(1) मात्रात्मक समृद्धिकरण

(2) गुणात्मक समृद्धिकरण

(1) मात्रात्मक समृद्धिकरण

- एक से अधिक भारतीय भाषाओं का ज्ञान देना।
- किसी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का ज्ञान देना।
- निचले स्तर पर ही दर्शनशास्त्र एवं तर्कशास्त्र जैसे विषयों को जोड़ना।
- इतिहास एवं भूगोल में अतिरिक्त पाठों को जोड़ना।
- गणित में उच्च गणित जैसे-त्रिकोणमिति, कैलकुलस, निर्देशांक ज्यामिति आदि को निचले स्तर पर ही शामिल करना।
- गृह कार्य की मात्रा को छात्र की क्षमतानुसार करना।

(2) गुणात्मक समृद्धिकरण -

- नियमित कक्षाओं में शिक्षक प्रतिभासम्पन्न बालकों को अतिरिक्त लेखन, पठन पाठन तथा गृहकार्य देना।
- प्रतिभासम्पन्न बालकों के लिये अपेक्षाकृत उच्च लक्ष्य निर्धारित करना।
- कार्य का कठिनाई स्तर बढ़ाना।
- पाठ्यसहगामी क्रियाओं में प्रतिभासम्पन्न छात्रों को अधिक जटिल उत्तरदायित्व सौंपना।

- विशिष्ट विद्यालय
- विशिष्ट कक्षाएं
- विद्यालयीय पत्रिका का प्रकाशन
- सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन
- पुस्तकालय की सुविधा
- भ्रमण
- विशेष प्रशिक्षित शिक्षक

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थान में लिखो।

ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र09 प्रतिभाशाली बालक की विभिन्न विशेषतायें क्या है?

उ0

.....

.....

.....

सृजनात्मक बालक

सृजनात्मकता शब्द अंग्रेजी के क्रियेटिविटी शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। विधायकता, उत्पादकता, खोज, मौलिकता आदि सभी शब्द इसी के समान माने जाते हैं। सृजनशील बालक कौन होते हैं अर्थात् उनमें कौन से गुण व योग्यता होती है या किस आधार पर हम उन्हें सृजनशील बालक कहते हैं, इसके लिए मनोवैज्ञानिकों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं।

गिल्फोर्ड के अनुसार, “सृजनशील बालकों में सामान्य गुण होते हैं, उनमें न केवल मौलिकता का गुण होता है वस्तु उनमें लोचकता प्रवाहमयता तथा प्रेरणात्मक एवं संयमता की योग्यता भी पाई जाती है।”

सृजनशील बालकों की पहचान के लक्षण

गिल्फोर्ड ने सृजनात्मक बालकों की पहचान के प्रमुख लक्षण निम्न बताये हैं-

1. जो बालक तात्कालिक सन्दर्भ एवं परिस्थितियों से परे जाकर चिन्तन मनन एवं अभिव्यक्ति की योग्यता रखते हैं उनमें सृजनात्मकता पाई जाती है।

2. जिन बालकों में किसी लक्ष्य अथवा समस्या की सम्पूर्ण अथवा आंशिक रूप से पुनः व्याख्या की क्षमता पायी जाती है वे सृजनात्मक शक्तियों से मुक्त होते हैं।
3. सृजनशील बालक अत्यधिक संवेदनशील होते हैं तथा वे किसी भी कार्य को बड़ी गम्भीरता से लेते हैं।
4. वे बालक जो चिन्तन, तर्क तथा कल्पना द्वारा प्रासंगिक किन्तु असामान्य विचारों के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेते हैं। वे सृजनशील होते हैं।
5. तर्क, चिन्तन तथा प्रमाणों के माध्यम से मौलिक एवं तर्कसंगत अभिव्यक्ति के द्वारा अन्य व्यक्तियों के विचारों विश्वासों एवं धारणाओं को परिवर्तित करने वाले बालक भी सृजनशील होते हैं।
6. सृजनशील बालकों में स्वायत्ता पाई जाती है। वे अपने कार्यों को उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से करते हैं तथा लक्ष्य पूर्ति तक उनमें बेचैनी बनी रहती है।

सृजनात्मक बालकों की शिक्षा

विद्यालयों में छात्रों का पथ-प्रदर्शन करने का प्रमुख दायित्व शिक्षक का होता है। टॉरेन्स ने अपने अध्ययन के आधार पर शिक्षकों के लिये कुछ महत्वपूर्ण सुझाव बताये जोकि अग्रलिखित है-

1. शिक्षक बालकों के कल्पनात्मक एवं असाधारण विचारों के प्रति आदर भाव रखे जिससे बालक सृजनशील हो सकें।
2. बालकों के स्वतः प्रेरित अधिगम तथा उसके मूल्यांकन पर बल दिया जाये, साथ ही मूल्यांकन इस प्रकार किया जाय कि छात्र के अन्दर अपने व्यवहार के कारण एवं परिणामों को देखने की योग्यता में वृद्धि हो।
3. शिक्षक छात्रों की स्वक्रिया पर बल दे और उन्हें स्वक्रिया हेतु प्रोत्साहित करें।
4. अनुक्रियात्मक वातावरण के प्रति विशेष ध्यान रखा जाय ताकि बालक संगत प्रतिक्रिया करने में सक्षम हो एवं उनमें सृजनात्मकता विकसित हो सकें।

विद्यालय की भूमिका - बालकों को सृजनशीलता की शिक्षा देने के लिए विद्यालय में निम्नांकित बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

1. बालकों को निर्भिक और स्वतंत्र होकर कार्य करने, विचार व्यक्त करने एवं तर्क-वितर्क करने के खुले अवसर विद्यालय में उपलब्ध कराये जायें।
2. समय-समय पर विद्यालय में ऐसे आयोजन किये जायें जिनमें सृजनशील

बालक अन्य सामान्य बालकों एवं शिक्षकों के सम्मुख अपने नवीन कार्यों, विचारों, व्यवहारों, कल्पनाओं एवं योजनाओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सके अथवा प्रदर्शित कर सकें।

3. सृजनशील बालकों को कठोर अनुशासन एवं नियंत्रण में न रखा जाय वरन् उन्हें स्वानुशासित रहने के लिए प्रेरित किया जाय।
4. विद्यालय में होने वाले विभिन्न कार्यक्रमों में सृजनशील बालकों की पूरी भागीदारी होनी चाहिए। उन्हें अपेक्षित उत्तरदायित्व भी सौंपे जायें।
5. विद्यालय में अध्यापक अभिभावक संघ बनाया जाय और प्रत्येक माह उसकी बैठके आयोजित की जाये। अभिभावकों को उनके बच्चों के सम्बन्ध में रिपोर्ट दी जाय तथा उनसे अपेक्षित सहयोग प्राप्त किया जाय।

उपर्युक्त प्रक्रियाओं के अतिरिक्त विद्यालय में सेमिनार, संगोष्ठी, कार्यशाला आदि का आयोजन किया जाय। बालकों में सृजनशीलता विकसित करने के लिए विद्यालय द्वारा बुलेटिन बोर्ड, वाद-विवाद सभा, प्रदर्शनी, ड्रामेटिक क्लब, शैक्षिक भ्रमण, स्काउटिंग आदि की व्यवस्था की जानी चाहिए।

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थान में लिखो।

ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र010 सृजनात्मक बालक को शिक्षा प्रदान करने के लिए क्या उपाय करने चाहिए?

उ0

.....

.....

मानसिक मंदित बालक

मानसिक मंदित का अर्थ है मस्तिष्क की बाधित अथवा अपूर्ण विकास की स्थिति जो कि 18 वर्ष की आयु से पूर्व होती है। चाहे यह अनुवांशिक कारणों से उत्पन्न हुयी हो अथवा किसी रोग या चोट के कारण।

एडगर डाल ने 1941 में अपनी परिभाषा में 6 ऐसे आधारों के बारे में बताया है जो मानसिक मंदता के प्रत्यय को स्पष्ट करने के लिये आवश्यक है। ये आधार निम्न है-

1. सामाजिक असामर्थ्य
2. जो बौद्धिक असामान्यता के कारण है।
3. जो विकासात्मक रूप से बाधित है।
4. जो परिपक्वता के स्तर पर प्राप्त होती है।
5. जो संरचनात्मक मूल का है।
6. आवश्यक रूप से असाध्य है।

वर्तमान में जो परिभाषा सर्वमान्य है वह हेबर द्वारा दी गयी है। इसके अनुसार, "मानसिक मन्दता औसत से निम्न कार्यक्षमता का उल्लेख करती है। इसका आरम्भ बालक के विकास की अवधि में होता है और यह अनुकूल व्यवहार की कमी द्वारा सम्बन्धित रहती है।"

मन्दित बालकों का वर्गीकरण

1. शिक्षा योग्य
2. प्रशिक्षण योग्य
3. संवासित बालक

शिक्षा योग्य मानसिक बालक - ये वे बालक हैं जिन्हें आधारभूत अकादमिक विषयों की शिक्षा दी जा सकती है यथा - भाषा, कला, सामान्य गणित इत्यादि।

प्रशिक्षण योग्य मानसिक बालक - इन बालकों को अपने दैनिक कार्य एवं जरूरतों को पूरा कर सकने योग्य बनने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। जैसे-अपने हाथ से भोजन करना, वस्त्र पहनना आदि।

संवासित बालक - इन्हें न तो शिक्षा दी जा सकती है और न ही कोई प्रशिक्षण। इन बालकों को सदैव किसी व्यक्ति के संरक्षण में रखना पड़ता है, जो इनके समस्त कार्यों को करता है। यदि इन्हें सदैव निरीक्षण में न रखा जाए तो अपनी गतिविधियों से ये स्वयं को तथा दूसरों को हानि पहुँचा सकते हैं।

मन्दित बालकों की पहचान -

1. अध्यापक शैक्षिक निष्पत्ति के आधार पर इनकी पहिचान कर सकते हैं।
2. ऐसे बालक प्रायः शारीरिक रूप से अयोग्य होते हैं।
3. संवेगात्मक रूप से अस्थिर होते हैं।

4. 50 से 70 या 75 तक बुद्धि लब्धि होती है।
5. शैक्षिक तथा शारीरिक आलेख पत्र भी सहायक हो सकते हैं।
6. व्यक्ति वृत्त अध्ययन भी महत्वपूर्ण है।

शैक्षिक लक्षण -

1. ऐसे बालक सूक्ष्म चिन्तन के योग्य नहीं होते हैं।
2. शैक्षिक क्षमता में वह अपने आयु समूह से बहुत नीचे होते हैं।

सामाजिक लक्षण -

1. सामाजिक व्यवहार में कुशल नहीं होते हैं।
2. व्यक्तिगत व सामाजिक उत्तरदायित्वों को नहीं निर्वाह कर पाते हैं।

व्यवहारिक लक्षण -

1. अधिगम की क्षमता कम होती है।
2. संवेदनात्मक दोष होता है।

मानसिक मन्द बालकों की शिक्षा

(1) शिक्षा योग्य मानसिक रूप से मन्द बालक के लिए कुछ प्राविधान है -

1. **विशिष्ट विद्यालय** - ये आवासीय प्रकार के विद्यालय हो सकते हैं जहाँ बच्चे को रखकर न केवल उसे शिक्षा प्रदान की जाये वरन् उसके व्यक्तित्व के सभी पक्षों को विकसित करने का प्रयास किया जाये। इन विद्यालयों में विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित अध्यापक, मनोवैज्ञानिक तथा अन्य चिकित्सीय सुविधायें उपलब्ध कराई जा सकती हैं। इन विद्यालयों में मानसिक रूप से मन्द बालकों को उपयुक्त व्यवसायों का प्रशिक्षण एवं जानकारी भी दी जानी चाहिए।
2. **व्यक्तिगत निर्देश की सुविधा** - मानसिक रूप से मन्द बालकों को सामान्य विद्यालय में व्यक्तिगत रूप से निर्देश की सुविधा हो।
3. **सामूहिक क्रियायें** - सामान्य विद्यालय में अधिकतम सामूहिक गतिविधियों का आयोजन किया जाना चाहिये तथा मानसिक रूप से मन्द बालकों को इनमें भाग लेने के लिये प्रेरित करना चाहिए ताकि उनमें सही सामाजिक गुणों का विकास हो सके।
4. **क्रिया द्वारा सीखना** - मानसिक रूप से मन्द बालकों में अमूर्त चिन्तन का

अभाव होता है तथा ये तभी बेहतर ढंग से सीख पाते हैं तब विचारों को मूर्त रूप से प्रस्तुत किया जाये।

5. **दस्तकारी की शिक्षा** - इसके अन्तर्गत कला, चित्रकारी, बागवानी, खेती, चमड़े का सामान बनाने का प्रशिक्षण, बुनाई इत्यादि की शिक्षा एवं प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण के साथ-साथ उन्हें इस प्रकार के कार्यों से जुड़े व्यवसायों की जानकारी दी जा सकती है।
6. **छोटे चक्र** - मानसिक रूप से मन्द बालकों में ध्यान को केन्द्रित करने की क्षमता अत्यन्त सीमित होती है। अतः शिक्षण के समय चक्रों का समयकाल सामान्य की अपेक्षा कम रखा जाये।
7. **पुनरावृत्ति** - मानसिक रूप से मन्द बालकों के लिए पाठ को दोहराना अत्यन्त आवश्यक है। मौखिक पाठ, उच्चारण अभ्यास, लेखन तथा गणितीय संगणना इत्यादि क्रियाओं को अभ्यास के द्वारा ही सुधारा जा सकता है।
8. **जीवन से सम्बन्धित समस्याएँ** - मानसिक रूप से मन्द बालकों को शिक्षा देते समय वास्तविक जीवन की समस्याओं एवं परिस्थितियों को ही उदाहरण रूप से प्रस्तुत करना चाहिये।
9. **उपयुक्त पाठ्यक्रम** - इन बच्चों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय उसमें जटिल एवं बौद्धिक विषयों जैसे विज्ञान, दर्शन इत्यादि को सम्मिलित नहीं करना चाहिए। साधारण पढ़ना, साधारण गणित, कला, संगीत, चित्रकारी इत्यादि विषयों को प्रमुखता देनी चाहिये।
10. **प्रशिक्षित एवं अनुभवी शिक्षक** - मानसिक रूप से मन्द बालकों को शिक्षा देने के लिये शिक्षक को पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान होना चाहिए। वह इन बालकों की समस्याओं से पूर्णतया परिचित हो। धैर्यपूर्वक इन बालकों की समस्याओं को सुलझा सके। साथ ही शिक्षक को शिक्षण विधियों एवं सहायक सामग्री के प्रयोग का समुचित ज्ञान होना चाहिए।
11. **स्वस्थ विद्यालयीय वातावरण** - विद्यालय में अन्य सामान्य बच्चों तथा अध्यापकों का इन बच्चों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण होना चाहिए। विद्यालय भवन उपयुक्त हो, बैठने के लिये उपयुक्त फर्नीचर हो स्वच्छता का विशेष ध्यान रखा जाता है तथा शिक्षकों एवं विद्यार्थियों एवं विद्यार्थियों के मध्य सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध है।

(2) प्रशिक्षण योग्य मानसिक रूप से मन्द बालक -

प्रशिक्षण योग्य मानसिक रूप से मन्द बालकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम का निर्माण करते समय निम्नलिखित पक्षों का शामिल किया जाना चाहिए-

1. **आदतों का प्रशिक्षण** - जिन आदतों का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए उनमें प्रमुख हैं - खाने की आदत, कपड़े पहनना, नहाना, नित्य कार्यों से निवृत्ति।
2. **सामाजिक प्रशिक्षण** - विद्यालय में खेलकूद, ड्रामा नाटक, वाद-विवाद तथा कहानी सुनाना जैसी गतिविधियां आयोजित कर बच्चे को सामाजिक समूह में व्यवहार करने का प्रशिक्षण दिया जा सकता है। जिसमें इनमें सहयोग, सहनशीलता, सहानुभूति इत्यादि गुणों का विकास हो सके।
3. **संवेदी प्रशिक्षण** - संवेदी अंगों का अधिकतम उपयोग करने का प्रशिक्षण मानसिक रूप से मन्द बच्चों को देना चाहिए। इसके लिए ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्धित क्रियाकलापों को शामिल करना चाहिए।
4. **भाषा प्रशिक्षण** - मानसिक रूप से मन्द बालकों को अपनी प्रत्येक आवश्यकता की अभिव्यक्त करने के लिये सरल से सरल शब्दों का ज्ञान कराना चाहिए। उन्हें बोलने में अधिक से अधिक अवसर उपलब्ध कराने चाहिए।
5. **दस्तकारी प्रशिक्षण** - मानसिक रूप से मन्द बालकों के लिये यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रशिक्षण है। इसके अन्तर्गत साधारण क्रफ्ट जैसे-टोकरी बुनना, बागवानी चमड़े का कार्य, कार्ड बनाना अथवा कागज के लिफाफे बनाने जैसा कार्य सिखाना चाहिये।

(3) संवासित मानसिक रूप से मन्द बालक -

संवासित मानसिक रूप से मन्द बालक को यदि किसी तरह का प्रशिक्षण दिया जा सकता है तो वह है - व्यवहार परिमार्जन। इस विधि के अन्तर्गत किसी विशिष्ट व्यवहार को लक्ष्य बनाकर उससे सम्बन्धित क्रियाओं का विश्लेषण किया जाता है। तत्पश्चात् बालक की विभिन्न पदों में उस व्यवहार को अपनाने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जिन परिमार्जित व्यवहारी को अपनाया जाना चाहिये। वे निम्नलिखित हैं-

1. किसी के आगमन पर उसे मनस्कार कहना।
2. अपने आसपास चीजों को व्यवस्थित रखना।
3. अपनी दैनिक आवश्यकताओं को संकेत द्वारा सूचित करना।

4. खाली समय में स्वयं को खिलौनों इत्यादि में व्यस्त रखना।
 5. अपने आसपास हो रही गतिविधियों से परिचित होना एवं उनमें रूचि होना।
- अनेक वैज्ञानिकों ने ऐसी शैक्षिक तकनीक विकसित की है जिनमें इन बच्चों को भाषा-संकेत, रंगों के आधार पर वस्तुओं की पहचान, परिवार के व्यक्तियों की पहचान इत्यादि का प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थान में लिखो।

ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र011. मानसिक रूप से मन्द बालकों को किस प्रकार वर्गीकृत किया गया है एवं इसका महत्व क्या है?

30

.....

.....

.....

11.9 शैक्षिक रूप से भिन्न बालक

पिछड़ापन एक सामान्य प्रत्यय है जो किसी भी क्षेत्र में निम्न स्तरीय उपलब्धि या प्रगति को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। सिरिल बर्ट ने पिछड़े बालकों को परिभाषित करते हुए कहा है, “पिछड़ा बालक वह है जो अपने विद्यालय जीवन के मध्य में अपनी कक्षा से ठीक नीचे की कक्षा से उस कार्य को न कर सके जो उसकी आयु के बालकों के लिये सामान्य कार्य हो।”

सिरिल बर्ट ने इस प्रकार के बालकों को परिभाषित करने के लिए “शैक्षिक-लब्धि” की अवधारणा दी है।

$$\text{शैक्षिक लब्धि} = \frac{\text{शैक्षिक आयु}}{\text{शारीरिक आयु}} \times 100$$

पिछड़े बालकों का वर्गीकरण

पिछड़े बालकों का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया जाता है।

पिछड़े बालक

कारणों के आधार पर प्रकृति के आधार पर क्षेत्र के आधार पर

1. बौद्धिक दोष वाले पिछड़े
1. जन्मजात पिछड़ापन
1. सामान्य पिछड़ापन

2. स्वभावगत दोष वाले पिछड़े बालक 2. अर्जित पिछड़ापन 2. विशिष्ट पिछड़ापन

पिछड़े बालकों के लक्षण

बी कुप्पुस्वामी ने पिछड़े बालक में निम्नलिखित लक्षण बताये हैं :-

- 1) सीखने की धीमी गति।
- 2) जीवन में निराशावादी प्रवृत्ति।
- 3) समाज विरोधी कार्यों में लिप्त।
- 4) व्यवहार-सम्बन्धी समस्याओं की अभिव्यक्ति।
- 5) जन्मजात योग्यता के सापेक्ष कम उपलब्धि।
- 6) विद्यालय की सामान्य गतिविधियों से लाभान्वित नहीं।
- 7) मानसिक रूप से अस्वस्थ।
- 8) कुसमायोजित व्यवहार।
- 9) बुद्धि परीक्षणों में निम्नस्तरीय प्रदर्शन।
- 10) अपनी एवं उससे नीचे कक्षा का कार्य करने में असफल।

पिछड़े बालकों की शिक्षा

पिछड़े बालकों की शिक्षा के लिए निम्नलिखित तीन संभावित विकल्प हो सकते हैं :-

1) विशिष्ट विद्यालय 2) विशिष्ट कक्षायें (3) सामान्य कक्षा में विशिष्ट प्राविधान।

- 1) विशिष्ट विद्यालय - पिछड़े बालकों के लिये विशेष विद्यालय खोले जा सकते हैं जहाँ उपयुक्त पाठ्यक्रम, उपयोगी सहायक सामग्रियां तथा विशेष रूप से प्रशिक्षित शिक्षक हो।
- 2) विशिष्ट कक्षायें - पिछड़े बालकों के लिये विशिष्ट कक्षायें आयोजित की जा सकती है क्योंकि सामान्य कक्षा में इन्हें कोई लाभ नहीं मिलता। इन कक्षाओं के लिए विशेष प्रशिक्षित अध्यापक नियुक्त किये जा सकते हैं जो इन पर पूरा ध्यान देते हैं। इन कक्षाओं में पिछड़े बालकों को कठिन प्रतियोगिता नहीं झेलनी पड़ती

एवं वे अपनी आयु के अन्य बालकों में स्वीकृत होते हैं। पाठ्यक्रम एवं परीक्षा कार्यक्रम में इनके अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है। परन्तु कभी-कभी सामान्य बच्चों से अलग होने पर ये हीन भावना से ग्रस्त हो जाते हैं।

3) सामान्य कक्षा में विशिष्ट प्राविधान - सामान्य कक्षा में इनके लिये निम्नलिखित प्राविधान किये जा सकते हैं।

1. पाठ्यक्रम में लचीलापन
2. नियमित चिकित्सकीय परीक्षण
3. स्वस्थ वातावरण
4. विशिष्ट शिक्षण विधियां
5. उपयुक्त शिक्षण तकनीकी
6. शिक्षा की गति
7. प्रेरणा
8. शिक्षकों का अभिभावकों से सम्पर्क
9. उन्नति का आकलन

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थान में लिखो।

ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र012 पिछड़े बालक किन्हे कहते हैं एवं उनके वर्गीकरण के प्रमुख आधार क्या है?

उ0

.....

.....

अधिगम निर्योग्य बालक

अधिगम असमर्थिता का तात्पर्य अधिगम सम्बन्धी ऐसी समस्याओं से है जो बालकों के सुनने, समझने, बोलने, लिखने, पढ़ने या गणितीय संख्याओं में बालक की अयोग्यता आंशिक रूप से या पूर्ण रूप से प्रदर्शित करते हैं। अर्थात् उपरोक्त कार्य क्षेत्र में बालक मापदण्डी के आधार पर निपुणता प्राप्त कर पाता।

अधिगम निर्योग्यता की परिभाषा

अमेरिका (1968) की अपंगों की राष्ट्रीय सलाहकार समिति के अनुसार - बालकों की विशिष्ट अधिगम निर्योग्यता बालक के द्वारा भाषा को लिखने या बोलने में, मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं में एक अथवा एक से अधिक सुचारू रूप से प्रणाली का कार्य न कर पाना होता है। इस प्रकार की कमियों का मुख्य आधार सुनने बोलने, समझने विचार करने, पढ़ने, लिखने, गणना करने तथा शब्दों के शुद्ध वर्तनी करने में कमजोर का पाया जाना होता है। इस प्रकार की असमर्थता में शारीरिक बाधिता जैसे डायलौक्सिया अथवा अफैसिया का विकसित होने की दशा से भी तात्पर्य है जिसे इसमें सम्मिलित किया गया है। इसमें अधिगम सम्बन्धी समस्यायें सम्मिलित नहीं हैं जो मुख्यतया दृष्टि, अधिगम हाथ पैर मानसिक मन्दित भावनात्मक विक्षोभ अथवा वातावरण का समुचित न होने के कारण होती है।

अधिगम बाधिता के प्रकार -

अधिगम बाधिता निम्नलिखित प्रकार की होती है :-

1. **पाठन सम्बन्धी बाधिता** - पाठन सम्बन्धी बाधिता से ग्रसित बालक पढ़ नहीं पाते हैं। यह बाधिता दो प्रकार की होती है। जब वह सूक्ष्म रूप से होती है तब व्यक्ति को पढ़ने में कठिनायी होती है लेकिन जब यह गम्भीर होती है तो व्यक्तित्व की पाठन योग्यता बिल्कुल समाप्त हो जाती है।
2. **लेखन सम्बन्धी बाधिता** - इस बाधिता से प्रभावित बालक स्वयं तुरन्त नहीं लिख पाते हैं यह क्षति दो प्रकार की होती है - सामान्य तथा गम्भीर। जिन बालकों में यह बाधिता सामान्य रूप में पायी जाती है वह साफ व स्पष्ट नहीं लिख पाते हैं। जो इस क्षति से सम्भीर रूप से प्रभावित होते हैं। वह बिना अशुद्धियों के अनुकरण कर सकते हैं लेकिन स्वयं लिख नहीं सकते हैं।
3. **सम्प्रेषण में ग्राह करने सम्बन्धी समस्या** - इस समस्या से प्रभावित बालक लिखकर, बोलकर या पढ़कर अपने विचारों के सम्प्रेषण में बाधित रखता है, वह सम्प्रेषण नहीं कर पाते हैं। जिन बालकों में यह समस्या सामान्य रूप से होती है उन्हें लिखित शब्द तथा सामान्य बोल चाल में प्रयुक्त शब्दों को समझने में कठिनाई का अनुभव करता है।
4. **संख्यात्मक योग्यता की समस्या** - इस समस्या से ग्रसित बालक संख्याओं के सम्बन्धों को व्यक्त नहीं कर पाता है इसलिये वे गणना तथा सामान्य अंकगणित करने में भी समस्याओं का अनुभव करते हैं।

अधिगम असमर्थी बालकों की पहिचान -

अधिगम बाधित बालकों को निम्न आधारों पर पहिचाना जा सकता है -

1. बालक को अपने कार्य को करने में कठिनाई होती है तथा कक्षा कार्य को देर से पूरा करता है।
2. ऐसा बालक देखने में सुस्त दिखायी देता है तथा प्रश्नों का उत्तर ढंग से नहीं दे पाता है।
3. यदि उससे मौखिक अनुदेशों को दोहराने के लिए कहा जाये तो वह उन्हें सही-सही दोहरा पाता है।
4. ऐसे बालक बायें तथा दायें के बीच अन्तर करने में भ्रमित हो जाता है।
5. पढ़ते समय पंक्तियों को छोड़ देता है या उन्हें दो बार पढ़ देता है।
6. शब्दों की वर्तनी के अक्षरों को जोड़कर शब्द बनाने में कठिनाई का अनुभव करता है।
7. शब्द के उलटे अक्षर पढ़ता है व अक्षरों को लगत क्रम में रखता है।
8. जो शब्द देखने में एक जैसे प्रतीत होते हैं उनकी अधिगम बाधित बालक अशुद्ध पढ़ता है।
9. स्वयं शब्दों को संकलित करने तथा सही वाक्य बनाने में कठिनाई अनुभव करता है।
10. संख्याओं को गलत पढ़ता एवं उनका गलत प्रयोग करता है।
11. शैक्षिक विषयों को समझने में भी अधिगम बाधित बालक को कठिनाई आती है।
12. ऐसे बालकों में स्मृति, चिन्तन एवं अवधान में कमी पाई जाती है।

अधिगम निर्योग्य बालकों के लिए शैक्षिक प्राविधान

1. दिवसीय विद्यालय - यहां पर अधिगम बाधित बालकों को विशिष्ट शिक्षा दी जाती है। विशिष्ट अध्यापक उसी पाठ्यक्रम को बहुत ध्यान तथा विकास के साथ पढ़ाते हैं यह पृथक रूप में व्यवस्था है।
2. सामान्य विद्यालय में विशिष्ट कक्षाएँ - यहाँ पर विशिष्ट शिक्षक अधिगम बाधित बालकों की विशेष कक्षा में विशेष अनुदेशन देते हैं। नियमित शिक्षक पाठ्य विषयी के सम्बन्ध में बालकों की सहायता करते हैं। इन बालकों को पाठ्य विषयों के साथ-साथ सामाजिक कार्यों के बारे में भी बताया जाता है वह सामान्य बालकों के साथ ही पढ़ते हैं।

3. मुख्य धारा व समन्वित शिक्षा - अधिगम बाधित बालकों की संख्या अधिक होती है तथा उन्हें जैविक तथा कम बुद्धि स्तर से सम्बन्धित समस्या नहीं होती है, ये बालक संसाधन कक्षों की सुविधा मुख्यधारा तथा समन्वित शिक्षा की सुविधा से युक्त नियमित कक्षाओं में पढ़ते हैं।

बोध प्रश्न :

- क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थान में लिखो।
ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र013 अधिगम निर्योग्य बालकों की पहचान के मुख्य लक्षण क्या है?

उ0

.....

.....

11.10 सामाजिक रूप से भिन्न बालक

बाल अपराधी

बालकों के द्वारा सामाजिक मूल्यों के विपरीत किया गया प्रत्येक कार्य बाल-अपराध कहलाता है तथा इन्हें करने वाले बालक बाल अपराधी कहलाते हैं।

मनोविज्ञान शास्त्री बर्ट ने बालक के समाज विरोधी कार्य करने की प्रवृत्ति को गम्भीरता के आधार पर बाल अपराधी को निम्न शब्दों में परिभाषित किया है-

“शाब्दिक अर्थ में वह बालक अपराधी कहलाता है जिसकी समाज विरोधी प्रवृत्तियाँ इतनी गम्भीर हो जाती है कि शासन को उसके विरुद्ध कार्यवाही करनी पड़ती है।

निष्कर्षतः बाल अपराध

1. बाल अपराध एक समाज विरोधी व्यवहार है।
2. यह एक विशेष आयु वर्ग (12 से 21 वर्ष) को बालकों द्वारा किये जाते हैं, और
3. कानून के द्वारा दण्डनीय होते हैं।

बाल अपराधियों के लक्षण -

बाल अपराधियों के मुख्य रूप से उनके व्यवहार के द्वारा ही पहचाना जा सकता है। जो निम्नलिखित है -

1. ये औसत शारीरिक संरचना वाले, गठीले, शक्तिशाली तथा निर्भीक होते हैं।
2. स्वभाव से ये बेचैन, बहिर्मुखी, उग्र तथा विध्वंसक होते हैं।
3. इनमें शासक अथवा शक्ति के प्रति विरोधी, अविश्वासी तथा असहयोग की अभिवृत्ति पायी जाती है।
4. इनके व्यक्तित्व में अस्थिरता होती है।
5. दूरदर्शिता का प्रायः अभाव होता है।
6. इदम्, अहम् तथा पराहम् में उचित सन्तुलन नहीं होता है।
7. किसी समस्या को सुलझाने के लिए ये किसी व्यवस्थित योजना को पूर्वनिर्धारित नहीं करते हैं।
8. अवसादग्रस्तता इनके व्यक्तित्व का मुख्य लक्षण होती है।

बाल अपराध का उपचार

मनोचिकित्सक बाल-अपराधी की समस्याओं के परिणाम तथा प्रकृति के अनुरूप निम्न में से कोई विधि अपना सकते हैं।

1. पुर्नशिक्षा -

अपराधी बालक द्वारा अर्जित समस्यात्मक, व्यवहार को समाप्त करने के लिए पुर्नशिक्षा के अन्तर्गत उसको उसकी समस्या के क्षेत्रों के विषय में विस्तृत तथा स्पष्ट ज्ञान दिया जाता है, उदाहरणार्थ - यौन शिक्षा, नैतिक शिक्षा आदि।

2. भाव विरेचन -

इस विधि में बालक को अपनी दमित इच्छाओं को व्यक्त करने के लिए अवसर प्रदान किये जाते हैं। ऐसा वार्तालाप के द्वारा अभिव्यक्ति को तकनीकी के प्रयोग से किया जा सकता है।

3. सुझाव तथा संदर्शन -

मानव स्वभाव से ही प्रस्तावग्राही होता है। अतः बालक को धनात्मक सुझाव संदर्शन के द्वारा उसके पराहम् को विकसित किया जा सकता है।

4. वातावरणीय -

बाल अपराध उपचार की इस विधि में विशेष रूप से बालक के घर तथा विद्यालय के वातावरण को सुधारा जाता है। कभी-कभी बालकों को घर से विस्थापित

करके तथा विद्यालय परिवर्तित करके भी उन वातावरणीय कारकों को हटाया जा सकता है। जो उसकी अपराधी प्रवृत्ति के लिए उत्तरदायी है।

5. व्यवहार परिमार्जन -

यह बाल-अपराध के उपचार की आधुनिकतम प्रविधि है। इसके लिये अभिक्रमित अधिगम की प्रविधि को सफलतापूर्वक अपनाया जा सकता है। इस प्रविधि के अन्तर्गत बालक को पुरस्कृत किया जाता है।

6. मनोवैज्ञानिक विधियाँ - इसके अन्तर्गत निम्न विधियाँ आती हैं -

- अनिदेशात्मक विधि
- मनोनाटक विधि
- समाज नाटक विधि
- क्रीड़ा विधि
- अंगुल चित्रण विधि

7. मनोविश्लेषणात्मक विधियाँ - इसके अन्तर्गत दो विधियाँ आती हैं -

- 1) शब्द साहचर्य विधि - इस विधि में अपराधी बालक के सामने कई शब्द रखे जाते हैं। इन शब्दों को सुनकर बालक के मस्तिष्क में जो बातें आती हैं उन्हें वह बताता है।
 - 2) स्वप्न विश्लेषण विधि - इसमें अपराधी बालक से उसके स्वप्नों के विषय में पूछा जाता है। उनका विश्लेषण करके कारण पता लगाया जाता है। तत्पश्चात् उसको सुधारने का प्रयत्न किया जाता है।
8. प्रवीक्षण विधि - इसमें अपराधी बाल को एक प्रवीक्षण अधिकारी के अधीन रख दिया जाता है। इसमें प्रवीक्षण अधिकारी बालकों को चेतावनी देकर या दण्ड का भय दिखाकर सुधार का प्रयत्न करता है।
9. सुधार स्कूल - सुधार स्कूलों में अपराधी बालकों को रखा जाता है। टप्पन के अनुसार, इस व्यवस्था का लक्ष्य चरित्र और नैतिक, मानसिक, शारीरिक तथा व्यवसाय सम्बन्धी क्षमताओं का विशेष रूप से उत्तरदायित्व तथा आत्म नियन्त्रण के विकार पर जोर देते हुए प्रगति के साथ बढ़ते हुए विश्वास के द्वारा सर्वांगीण विकास करता है।

10. बाल - बन्दीगृह - अपराधी बालकों के सुधार के लिए बाल-बन्दीगृह की व्यवस्था की जाती है। यहाँ तभी भेजना जब सभी उपाय विफल हो जाये।

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थान में लिखो।

ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र014 बाल अपराधी किसे समझा जाता है? बालक में अपराधी प्रवृत्ति को पहचानने के लिये किन लक्षणों को ध्यान में रखा जाता है?

30

वंचित बालक

वंचन का तात्पर्य है कि जब किसी बालक की समाज में रहते हुए उसकी सामाजिक, आर्थिक व शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति न हो सके, उनसे उसे वंचित रहना पड़े तब वह वंचित बालक होता है। गार्डन के अनुसार, “वंचन बाल्य जीवन की अधोपक दशाओं की न्यूनता है।” अतः वंचन की परिभाषा निम्न प्रकार से की जा सकती है -

“वंचन सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश से जुड़े आवश्यक एवं अपेक्षित अनुभव उद्दीपकों का अभाव है जिसके फलस्वरूप बालक का वांछित विकास नहीं हो पाता है।”

वंचित बालक के प्रकार

वंचित बालकों के निम्नलिखित प्रकार हैं -

1) सामाजिक रूप से वंचित बालक

1. सामाजिक रूप से निम्न (जाति, वर्ग या धर्म के आधार पर)
2. सांस्कृतिक स्तर से निम्न
3. पड़ोस व साथियों का दुष्प्रभाव

2) आर्थिक रूप से वंचित बालक

1. गरीबी व आर्थिक असमानता के कारण
2. आर्थिक रूप में निम्न

3. परिवार में खाने व रहने का अभाव
4. विद्यालय जाने में असमर्थ व विद्यालय फीस न दे पाना

3) शैक्षिक रूप से वंचित बालक

1. निम्न शैक्षिक उपलब्धि होती है।
2. अन्तर्मुखी व संवेगात्मक रूप से अस्थिर होते हैं।
3. समस्या समाधान नहीं कर पाते
4. असुरक्षा की भावना से पीड़ित तथा विद्यालय में समायोजित नहीं होते।
5. विद्यालय सामग्री व पुस्तकों के अभाव में पढ़ नहीं पाते
6. सुविधाओं के बाद भी खराब आदतों के कारण पढ़ने से वंचित

वंचित बालक की सहायता व शिक्षा

1. विशेष योजनाएं -

बोधगम्य योजना के अन्तर्गत एक रूपान्तरित पाठ्यक्रम छोटी विशेष कक्षाएँ, सुधारात्मक निर्देश, सांस्कृतिक कार्याकलाप, निर्देशन, उपचारात्मक सेवाएं तथा माता-पिता से सम्बन्ध आदि की एक सुसंगठित योजना बनायी जाती है। पठन सुधार योजना में वंचित बालकों के लिए विशेष गठन कार्यक्रम बनाये जाते हैं। विशेष कक्षाओं का आयोजन करके उनकी पढ़ने की क्षमता का विकास करना चाहिए। बालकों के माता-पिता से मिलकर वंचन को दूर करने के उपाय करना चाहिए। ड्रापआउट योजना उन बालकों के लिए है जो वंचन के कारण अपनी शिक्षा बीच में छोड़ देते हैं उन्हें मुख्यधारा में लाने का प्रयास करना चाहिए।

2. दृश्य-श्रव्य सामग्री -

दृश्य-श्रव्य सामग्री द्वारा सरलता से उस वातावरण को उत्पन्न किया जाता है। जिसके अभाव ने बालक के जीवन के वंचन में अभिशप्त किया है। इन्हें रेडियो व दूरदर्शन पर शैक्षिक कार्यक्रम को देखने व सुनने की सुविधा दी जानी चाहिए।

3. सुविधाएं -

वंचित बालकों को विशेष सुविधाएँ दी जानी चाहिए जैसे निःशुल्क शिक्षा, पाठ्य पुस्तकें प्रदान करना, लेखन सामग्री करना, छत्रवृत्ति प्रदान करना, स्कूल यूनीफार्म देना व मध्यान्तर भोजन देना।

4. विशेष विद्यालय -

वंचित बालकों के लिए विशेष विद्यालय हो सकते हैं जिनमें विशेष वातावरणात्मक सुविधाएं एकजुट की जा सकती है साथ ही वंचित बालकों का मनोवैज्ञानिक विघटन नहीं हो पायेगा जो सामान्य बालकों के साथ पढ़ने पर हो सकता है।

5. मनोवैज्ञानिक समाधान -

बालकों के उचित व्यवहार का सबलीकृत कर पुरस्कृत व सम्मिलित करना, योग्यता विकसित करने के अवसर देना उनके प्रति सहानुभूति रखना, अन्य बालकों की उनके प्रति अभिवृत्ति को सकारात्मक बनाना, माता-पिता को निर्देश देना, व्यक्तिगत कठिनाइयों का समाधान आदि ऐसी तकनीकें हैं जिनसे वंचित बालक मनोवैज्ञानिक रूप से अपने को स्थिर और स्वस्थ अनुभव करेगा।

6. व्यावसायिक शिक्षा -

वंचित बालकों को सामान्य शिक्षा के व्यावसायिक प्रशिक्षण अवश्य प्रदान किया जाना चाहिए।

7. कक्षा शिक्षण -

कक्षा शिक्षण में शिक्षक उनके ऊपर विशेष ध्यान दे और इस ओर से सावधान रहे कि उनके अनुभव को ध्यान में रखकर ही वह अपने विषय की व्याख्या करे। सृजनशीलता को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। शिक्षक को बालकों की उपलब्धि, सफलता, असफलता को ध्यान में रखकर शिक्षण विधि, पाठ्यक्रम, अनुशासन आदि से यथोचित परिवर्तन लाने का ज्ञान होना चाहिए।

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थान में लिखो।

ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र015 वंचित बालक कौन होते हैं व ये कितने प्रकार के होते हैं?

30

.....

.....

वे बालक जिनका व्यवहार या व्यक्तित्व किसी न किसी पक्ष में अत्यधिक असाधारण होता है, समस्यात्मक बालक कहलाते हैं। अपने इस असाधारण व्यवहार या व्यक्तित्व के कारण ये विभिन्न प्रकार की समस्याओं को जन्म देते रहते हैं।

बैलेस्टाइन के शब्दों में, "समस्यात्मक बालक वे बालक हैं जिनके व्यवहार व व्यक्तित्व किसी न किसी बात से गम्भीर रूप से असामान्य है।"

समस्यात्मक बालकों का वर्गीकरण

कुलश्रेष्ठ तथा मिश्र (1982) ने समस्यात्मक बालकों को उनकी असामान्यता से प्रभावित क्षेत्र के आधार पर तीन वर्गों में विभक्त किया है और अधिकतम सम्भव समस्यात्मक व्यवहारों व लक्षणों को उनमें सम्मिलित किया है, जो निम्न प्रकार हैं-

1. व्यक्तिगत समस्या वाले बालक

इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाले बालक अपनी असामान्यता से स्वयं ही प्रभावित और तंग होते हैं। इनके द्वारा दूसरों को हानि पहुँचाने की संभावनाएं बहुत कम होती हैं लेकिन ये माता-पिता, शिक्षक व समाज के लिए समस्या का विषय अवश्य होते हैं। इनमें प्रायः निम्न लक्षण देखने को मिलते हैं -

- अत्यधिक संकोच करना
- भयभीत रहना
- हकलाना व तुतलाना
- अंगूठा चूसना
- स्कूल न जाना या स्कूल से भाग जाना
- बीमार रहना
- निराशा की भावना से ग्रसित रहना
- चिन्तित रहना
- कक्षा में चुपचाप बैठे रहना
- दिवास्वप्न देखना
- पलायन करना
- मूत्रस्त्राव करना
- मित्र न बनाना व एकान्त में रहना
- शीघ्र रोना आदि

2. सामाजिक समस्या वाले बालक -

वे बालक जो अपने असामान्य व्यक्तित्व के कारण समाज में समायोजित नहीं हो पाते तथा अनैतिक और असंगत व्यवहार करते हैं, सामाजिक दृष्टि से समस्यात्मक बालकों की श्रेणी में आते हैं। उनके मुख्य व्यवहार एवं लक्षण निम्न प्रकार हैं-

- असभ्यता से बात करना
- तोड़फोड़ करना

- लड़ाई-झगड़ा करना
- चोरी करना
- बेईमानी करना
- विपरीत लिंग के बालकों से छेड़छाड़
- समाज के नियम भंग करना
- विद्यालय के कार्य न करना
- झूठ बोलना
- क्रोधित होना आदि

3. विशिष्ट समस्याओं वाले बालक -

इस प्रकार के समस्यात्मक बालकों में असामान्यता उनमें किसी प्रकार की ऋणात्मक विशिष्टता के कारण होती है जो प्रायः उनके नियंत्रण से बाहर होती है जैसे-

- अंधता
- गूंगापन
- न्यून दृष्टि
- हीनता मनोग्रन्थि से ग्रस्त
- अपंग
- बहरापन
- कम सुनना
- बीमार रहना
- मानसिक बाधिता
- वंचन आदि

समस्यात्मक व्यवहार का उपचार

1. परिवार सम्बन्धी उपचार -

दीसाइन (1974) ने भी उपचारात्मक प्रक्रिया में परिवार तथा माता-पिता के सहयोग को महत्व दिया है। इस दिशा में उन्होंने निम्न सुझाव दिये हैं-

- ऐसे बालकों के साथ धीरज तथा प्रेम से काम लिया जाय।
- मौखिक शिक्षा या उपदेशों के स्थान पर बालक के समक्ष उदाहरण प्रस्तुत हो।
- माता-पिता जिस प्रकार के व्यवहार व सम्मान की बालक से अपेक्षा करते हैं वैसा ही बालक को परिवार में दें।
- बालक की शारीरिक अवस्था पर विशेष ध्यान दें।
- माता-पिता स्वयं अपने जीवन को अनुशासित रखें।
- बालक के सुधार के लिए सभी परिस्थितियों को समग्रता से देखें व समझने का प्रयास करें।
- बालक के भविष्य की योजना उनकी योग्यताओं व क्षमताओं को ध्यान में रखकर बनायें।
- बालक में सुरक्षा की भावना का विकास करें।

2. अच्छी संगति -

बालक के समस्यात्मक व्यवहार की दृष्टि से यह आवश्यक है कि माता-पिता व शिक्षक भी इस बात का पूरा ध्यान रखे कि बालक किस प्रकार की आदतों वाले बालकों के साथ खेलता है, उसके साथियों का आयु स्तर, सामाजिक आर्थिक तथा शैक्षिक स्तर कैसा है। उनकी रूचियां व समस्यायें किस प्रकार की हैं।

3. विद्यालय सम्बन्धी उपचार -

विद्यालय की शिक्षा प्रणाली रूचिकर हो जिससे बालक विद्यालय में आनन्द का अनुभव कर सके और दुर्व्यसनों में पड़ने से बच जाये।

- विद्यालय की शिक्षा प्रणाली रूचिकर हो जिससे बालक विद्यालय में आनन्द का अनुभव कर सके और दुर्व्यसनों में पड़ने से बच सके।
- विद्यालय के शिक्षकों का चरित्र व्यक्तित्व तथा व्यवहार अच्छा व प्रभावशाली हो ताकि बालक अपने लिए आदर्शों का चुनाव कर सके।
- विद्यालय में स्व-अनुशासन हो।
- पाठ्यक्रम सन्तुलित होना चाहिए।
- विद्यालय तथा परिवार में समन्यवय हो।
- विद्यालय में व्यक्तिगत शैक्षिक, व्यावसायिक तथा सामाजिक निर्देशन की आवश्यक व्यवस्था हो।
- समस्यात्मक बालकों का व्यक्ति इतिहास व संचयी अभिलेख तैयार हो।
- इन अभिलेखों के आधार पर विशेषज्ञों की सलाह से समस्यात्मक बालकों की उपचार योजनाएं बनाई जाएं।
- पाठ्यसहगामी क्रियाएं - देशाटन, कैम्प, स्काउटिंग, विभिन्न खेल, नाटक, नृत्य, गान, भाषण आदि बालकों को व्यस्त बनाये रख सकते हैं।
- विद्यालय में पुस्तकालय तथा कार्यशाला को उचित व्यवस्था हो जहाँ बालकों के चरित्र को उत्तम बनाने तथा ज्ञानवर्धन करने वाली पुस्तकें तथा कार्य आयोजित हो।

11.11 सारांश

विशिष्ट बालकों का विस्तृत अध्ययन नितांत आवश्यक है क्योंकि वे हमारे समाज का अभिन्न अंग हैं। प्रत्येक अध्यापक की कक्षा में कुछ विशिष्ट बालक होते हैं। इन विशिष्ट बालकों को उन शैक्षिक सुविधाओं द्वारा जो कि सामान्य बालकों को दी जाती है, पूर्णतया लाभान्वित नहीं किया जा सकता है। इनके लिए विशेष शिक्षा का आयोजन

अनिवार्य है। अतः अध्यापक को यह ज्ञान होना चाहिए कि विशिष्ट बालक कौन है और उनके प्रति हमारे शैक्षिक कर्तव्य क्या है। उन्हीं कर्तव्यों के निर्वाह स्वरूप विशिष्ट शिक्षा को एक विस्तृत स्वरूप प्रदान किया गया है। विशिष्ट शिक्षा में विशिष्ट बालकों की आवश्यकताओं एवं समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उचित पाठ्यक्रम का निर्धारण आवश्यक है जिसमें पाठ्य सहगामी क्रियाएँ एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण शामिल हो। कक्षा में आधुनिक शिक्षण विधियाँ अपनायी जानी चाहिए जो कि बालक के शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं के निवारण हेतु शिक्षकों एवं अभिभावकों को सम्मिलित रूप से कार्य करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक बालक अपनी योग्यतानुसार समाज व देश के उत्थान में योगदान दे सकें।

11.12 अभ्यास कार्य

- प्र01 विशिष्ट शिक्षा में विशिष्ट क्या है? स्पष्ट कीजिये।
- प्र02 शारीरिक रूप से बाधित बालकों को किस प्रकार वर्गीकृत किया गया है?
- प्र03 दृष्टि बाधित बालकों की शिक्षा कैसी होनी चाहिए? ऐसे बालकों के लिए विशेष शैक्षिक सुविधाओं का उल्लेख कीजिए।
- प्र04 प्रतिभाशाली और सृजनात्मक बालकों में क्या अन्तर होता है? आप इन दोनों प्रकार के विद्यार्थियों को किस तरह का गृहकार्य देना चाहिये? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
- प्र05 मानसिक मन्दिक बालकों को शिक्षा प्रदान करने के लिए क्या करना चाहिए?
- प्र06 पिछड़े बालकों की पहचान विद्यालय में कैसे की जा सकती है? इनको कैसे व्यवस्थित ढंग से शिक्षा दी जा सकती है?
- प्र07 अधिगम बाधिता कितने प्रकार की होती है? उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिए।
- प्र08 “बाल अपराध या समाज विरोधी व्यवहार एक अर्जित व्यवहार है” इस कथन पर टिप्पणी कीजिए।
- प्र09 बच्चों के अधिगम पर वंचन के प्रभाव को दूर करने के लिए क्या किया जा सकता है?
- प्र010 विभिन्न प्रकार के समस्याग्रस्त बालकों के उपचार की विधियाँ बताइये।

11.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

- उ01 विशिष्ट शिक्षा के अर्थ को विलक्षण बालकों की विशिष्ट आवश्यकता योग्यता तथा अनेक व्यक्तिगत शिक्षा-प्रणाली के रूप में व्यक्त करें।

- 302 विशिष्ट शिक्षा के प्रारम्भिक विकास में अमेरिका तथा यूरोप में हुए कार्यों तथा इटार्ड के महत्वपूर्ण योगदान का उल्लेख करें। मानसिक मंदित बालकों तथा दृष्टि विहीन बालकों की शिक्षा के लिए प्रारम्भिक प्रयासों का भी उल्लेख करें।
- 303 शिक्षा जगत में विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता विशिष्ट बालकों की सामान्य बालकों से वैयक्तिक भिन्नताओं एवं उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं के कारण है। विशिष्ट बालकों के सर्वांगीण विकास हेतु विशिष्ट शिक्षा को आवश्यकता का उल्लेख करें।
- 304 विशिष्ट बालकों शारीरिक, मानसिक, शैक्षिक एवं सामाजिक विभिन्नता के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।
- 305 कक्षा में श्रवण बाधित बालकों की पहचान उनके व्यवहारिक लक्षणों के द्वारा होती है। इन व्यवहारिक लक्षणों का संक्षेप में वर्णन करें।
- 306 वाणी बाधित बालकों हेतु कक्षा प्रबन्धन के लिए कक्षा के वातावरण का प्रजातांत्रिक होना, शिक्षकों के द्वारा सामूहिक उच्चारण प्रविधि का प्रयोग एवं सहयोगात्मक वातावरण के विकास आदि उपायों का उल्लेख करें।
- 307 दृष्टि बाधित बालकों के दो वर्ग आंशिक रूप से दृष्टि बाधित एवं गम्भीर रूप से दृष्टि बाधित बालकों का वर्णन करें।
- 308 अंगों की असमर्थता के आधार पर गतीय रूप से बाधित बालकों के तीन वर्ग अर्थात् नीचे के अंगों की असमर्थता ऊपरी अंगों की असमर्थता एवं कुछ अंगों का न होना सम्बन्धित समस्याओं से ग्रस्त बालकों का वर्णन करें।
- 309 प्रतिभाशाली बालक सामान्य बालकों से शारीरिक, संवेगात्मक, सामाजिक, व्यक्तिगत, बौद्धिक एवं शैक्षणिक उपलब्धि के आधार पर किस प्रकार भिन्न इसका उल्लेख करें। इसके साथ ही प्रतिभाशाली बालकों में पाई जाने वाली कुछ निषेधात्मक विशेषतायें जैसे लापरवाही, अभिमानी प्रवृत्ति आदि का भी वर्णन करें।
- 3010 सृजनात्मक बालकों को शिक्षा प्रदान करने के लिए उनके कल्पनात्मक एवं असाधारण विचारों की अभिव्यक्ति के अवसर देश एवं स्वतः प्रेरित अधिगम एवं उसके मूल्यांकन सम्बन्धी उपायों का वर्णन करें।
- 3011 मानसमन्द बालकों को शैक्षिक प्रावधानों के आधार पर वर्गीकृत किया गया है

जिसमें शिक्षा योग्य, प्रशिक्षण योग्य एवं संवासित बालक के तीन वर्ग सम्मिलित हैं। शैक्षिक आधार पर वर्गीकृत करने से इनकी शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का किस प्रकार समाधान हो सकता है, इसका भी उल्लेख करें।

उ०१२ पिछड़ा बालक वह है, जो अपने विद्यालय जीवन के मध्य में अपनी कक्षा में ठीक नीचे की कक्षा के उस कार्य को न कर सके जो उसकी आयु के बालकों के लिए सामान्य कार्य हो। पिछड़े बालकों का वर्गीकरण पिछड़ेपन के कारणों के आधार पर प्रकृति के आधार पर एवं क्षेत्र के आधार पर किस प्रकार किया गया है इसका वर्णन करें।

प्र०१३ अधिगम निर्योग्य बालकों को पहचान के लिए उनकी कुछ विशेषताएं जैसे कक्षा कार्य को करने में कठिनाई महसूस करना, व्यवहार में शिथिलता होना, मौखिक अनुदेशों को न दोहरा पाना एवं शब्दों की वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धता आदि विभिन्न लक्षणों का वर्णन करें।

प्र०१४ वह बालक जो व्यवहार के सामाजिक प्रतिमानों से विचलित हो जाता है, बाल अपराधी कहलाता है। बाल अपराधी को मुख्य रूप से उनके व्यवहार करे द्वारा ही पहचाना जा सकता है। इन्हीं विशिष्ट व्यवहारिक लक्षणों का वर्णन करें।

उ०१५ जब किसी बालक की समाज में रहते हुए उसकी सामाजिक, आर्थिक व शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति न हो सके, उनसे उसे वंचित रहना पड़े तब वह वंचित बालक होता है। वंचित बालकों के प्रकारों में सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक रूप से वंचित बालकों का वर्णन करें।

११.१४ कुछ उपयोगी पुस्तकें

भार्गव, महेश (२००३), विशिष्ट बालक, एच०पी० भार्गव बुक हाउस, आगरा, बिष्ट, आभा रानी, विशिष्ट बालक, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

शर्मा, आर० ए० (२००३) विशिष्ट शिक्षा का प्रारूप, आर० लाल बुक डिपो, मेरठ।

इकाई 12 : मूल्य शिक्षा

संरचना

- 12.1 प्रस्तावना
- 12.2 उद्देश्य
- 12.3 मूल्य - आधारित जीवन का महत्व
- 12.4 मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता
- 12.5 मूल्य शिक्षा: अवधारणा
- 12.6 मूल्यों का अर्थ एवं परिभाषा
- 12.7 मूल्यों का वर्गीकरण
- 12.8 स्वातंत्र्योत्तर भारत में नैतिक शिक्षा
- 12.9 नैतिक शिक्षा के विविध आधार
- 12.10 नैतिक या मूल्यपरक शिक्षा के अभिकरण
- 12.11 मूल्य हास या विघटन के कारक
- 12.12 सारांश
- 12.13 अभ्यास कार्य
- 12.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 12.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.1 प्रस्तावना

आज समाज में चारों ओर नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों में गिरावट देखने को मिलती है। आज की भीड़ भरी दुनिया में, भौतिकता की आंधी में साम्प्रदायिक संकीर्णता की बाट में, प्रतिस्पर्धा की होड़ में, स्वार्थपरता के तूफान में, हमारे सभी नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक तथा धार्मिक मूल्य बढ़ते जा रहे हैं। इस हास के फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में भी गिरावट देखने को मिलती है। आज समाज में सामान्य व्यक्ति की यह धारणा है कि मेहनतकश एवं ईमानदार व्यक्ति पिस रहे हैं और झूठ एवं फरेब का रोजगार करने वाले फल-फूल रहे हैं। ईमानदार व्यक्ति को मूर्ख माना जाता है। इस धारणा ने शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासनहीनता श्रम के प्रति अनास्था, ग्नाकर्तव्य के प्रति उदासीनता, अनुत्तरदायित्व आदि को जन्म दिया है। इनके फलस्वरूप

समाजोत्थान का मार्ग अवरूद्ध हो गया है। अतः आज की विसंगतियों में समाज तथा उसके प्रत्येक सदस्य का दायित्व हो जाता है कि वह मूल्यों के विकास पर बल दे, क्योंकि मूल्यविहीन राजनीति एवं शिक्षा विनाश की ओर ले जायेगी, न कि विकास की ओर।

Sow a thought, and you reap as Act,

Sow as Act, and you reap a habit,

Sow a habit, and you reap a character

Sow a character and you reap a destiny

- Samuel Smiles

1.2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करके आप इस योग्य हो जायेंगे कि -

1. मूल्य शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी देशप्रेम और राष्ट्रीय अखण्डता की भावना का अन्तर्निवेशन कर सकेंगे।
2. मूल्य शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी माता-पिता, अध्यापकों और बड़ों के प्रति आदर की भावना जागृत कर सकेंगे।
3. मूल्य शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी अच्छाई न्यास, सत्यता और ईमानदारी की भावना जागृत कर सकेंगे।
4. मूल्य शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी स्वयं में जनतांत्रिक धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी समाज के रचनात्मक जीवन के लिए तैयार कर सकेंगे।
5. मूल्य शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी नैतिक, सौन्दर्यबोधात्मक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक संवेदना का विकास कर सकेंगे।
6. मूल्य शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को सहायता प्रदान करना है जिससे वह कार्य करने के लिए स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास कर सके और राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक जीवन में सृजनात्मक रूप से भागीदारी निर्वाह सकें।
7. मूल्य शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी वैज्ञानिक आविष्कारों और जनसंचार से उत्पन्न समस्याओं के लिए तैयार हो सकेंगे और विश्व की समस्याओं के प्रति राष्ट्रीय दृष्टिकोण की अपेक्षा सार्वभौमिक दृष्टि से विचार कर सकेंगे।

इस प्रकार नैतिक या मूल्य शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक संदर्भ में समग्र और संतुलित व्यक्तित्व का शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास कर उसमें नैतिक निर्णय की क्षमता जागृत करना है, जिससे वह गतिशील समाज में वैयक्तिक मूल्यों, सामाजिक मूल्यों, बौद्धिक मूल्यों, वैज्ञानिक मूल्यों, सांस्कृतिक मूल्यों, जनतांत्रिक मूल्यों, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मूल्यों आदि को अपने जीवन का अविभाज्य अंग बना सके।

12.3 मूल्य आधारित जीवन का महत्व

पशु और मनुष्य में कुछ मूलभूत अंतर है - पशु बलवान् होकर दूसरे निर्बल पशुओं को दुःख देता है और कभी-कभी उन्हें मारकर आहार भी बना लेता है। पशु अपनी नियति का निर्माता नहीं है वह सर्वथा भाग्यचक्र के अधीन है। एक बात और है- पशु वर्तमान परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाए रखने तक ही उसका ध्यान केन्द्रित रहता है। जबकि मानव भाग्य का निर्माण करने में सक्षम एक सामाजिक प्राणी के सामने कुछ तो मापदण्ड होने ही चाहिए। समाज में रहने का अर्थ है कि वह अपने साथियों के सुख-दुख में साझीदार बने, संवदना और सहानुभूति रखे और समाज द्वारा स्वीकृत आचारसंहिता का पालन करे। समाज सम्मत यह आचारसंहिता ही मूल्यों की संहिता है।

आइंस्टाइन ने कहा था - “मनुष्य के नीतिपरक (एथिकल) व्यवहार को प्रभावपूर्ण तरीके से सहानुभूति शिक्षा, सामाजिक संबंधों एवं आवश्यकताओं पर टिकाया जाना चाहिए।”

आइंस्टाइन ने एक महान् वैज्ञानिक होते हुए भी आध्यात्मिक पहल पर जोर दिया ताकि आधारभूत मूल्यों और लक्ष्यों को भावात्मक जीवन के साथ जोड़ा जा सके।

12.4 मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता

इस भौतिकवादी युग में आध्यात्मिक और नैतिक मूल्य छिन्न-भिन्न हो गये हैं। धन, पूँजी और सम्पत्ति ही मनुष्य का देवता है, समाज में व्यक्ति और व्यक्ति के बीच सारे रागात्मक सम्बन्ध सूत्र छिन्न-भिन्न हो गये हैं। स्त्री-पुरुष के बीच, पति-पत्नी के बीच, भाई-भाई के बीच, पिता-पुत्र के बीच और शासक और शासित के बीच सम्बन्ध सूत्र टूट चुके हैं। भौतिकता में भ्रमजाल में पड़ा हुआ समाज कराह रहा है। सभ्यता और संस्कृतिक का मुखौटा चढ़ाकर आज का मनुष्य दुनिया को ही नहीं स्वयं को भी छलता है। इस युग को हम घोर मूल्य हीनता का युग कह सकते हैं, मूल्यों के संकट का युग कह सकते हैं।

इस उपभोक्तावादी संस्कृति ने श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों को छिन्न-भिन्न कर दिया है। मूल्यों के छिन्न-भिन्न हो जाने के कारण आज का आदमी दिशाहीन होकर भटक रहा है। आज व्यक्ति और समाज तरह-तरह की कुण्ठाओं से ग्रस्त है। हर दिन हर क्षण नये-नये प्रश्न और नयी-नयी समस्याएँ उपस्थित हो रही हैं।

इस युग में तथाकथित वैयक्तिक मूल्यों में घोर स्वलन हुआ है। आज मनुष्य में सत्य और प्रेम नहीं झूठ और घृणा है, धैर्य और सहनशीलता नहीं अधैर्य और असहनशीलता है, त्याग और अनासक्ति नहीं, भोग और आसक्ति है, ऋजुता और मृदुता नहीं कठोरता और कटुता नहीं, अभय और आत्मबल नहीं, भय और शक्तिहीनता है, आत्मविश्वास और प्रामाणिकता नहीं, घोर अनास्था और अप्रामाणिकता है। इस मूल्यहीनता को लेकर कैसे आज का व्यक्ति युग के भार को वहन कर सकता है? कैसे परिवार और समाज, राष्ट्र और विश्व के दायित्व को वहन कर सकता है?

आज भारतीय लोकतंत्र का चेहरा निष्पक्ष चुनाव के बावजूद काले दाग से ग्रस्त है, क्योंकि आज नेतृत्व का आधार न लोकसेवा है और न लोकप्रियता इस लोकतंत्र में राजनीति पेशा बन गई है। राजनीतिज्ञों में भौतिक निष्ठा का अभाव है। चारों ओर राजनीतिक अक्षमता और अपरिपक्वता है। आज भारतीय लोकतंत्र की यह सबसे बड़ी समस्या है कि राष्ट्रीय हितों को स्थानीय तथा संकीर्ण स्वार्थों से किस प्रकार सुरक्षित रखा जाय हमें जनता में जनतांत्रिक चेतना का प्रसार करना है। हमें चैतन्य नागरिकों को तैयार करना है, जो लोकतंत्र को सही दिशा दे सके। हमारे लोकतंत्र को सम्प्रदाय सापेक्षता से सम्प्रदाय निरपेक्षता की ओर क्षेत्रीयवाद से राष्ट्रीयता की ओर, जातिवाद से मानवतावादी मूल्यों की ओर प्रयाण करना है। हमें ऐसे मूल्य नयी पीढ़ी को प्रदान करने में हैं, जहाँ राजनीति साम्प्रदायिकता से आक्रांत न हो। जहाँ सम्प्रदाय की कट्टरता के स्थान पर सम्प्रदाय निरपेक्षता हो, जहाँ जातिवाद और क्षेत्रीयवाद के स्थान पर राष्ट्रवाद और मानवतावाद हो। भारतीय लोकतंत्र का संकट मूल्यों का संकट है।

आज हमारे समाज में मूल्यों में हास उत्पन्न हो गया है। आज व्यक्ति अधिकाधिक व्यक्तिवादी, व्यक्तिनिष्ठ, स्वार्थी और स्वकेन्द्रित हो गया है। हमारे समाज के तीन महान् शत्रु हैं- भाग, अधिकार और धन। यह निर्विवाद सत्य है आज का युग मूल्यहीन का युग है। हमें वैयक्तिक और सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक, आर्थिक और राजनीतिक मानसिक और बौद्धिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से श्रेयस्कर मूल्यों को अपने जीवन में आत्मसात करना है।

हमें वैयक्तिक मूल्यों में झूठ पर सत्य को, घृणा पर प्रेम को, हिंसा पर अहिंसा को, अधैर्य पर धैर्य को, असहिष्णुता पर सहिष्णुता को, कटुता पर मृदुता को, क्रूरता पर करुणा को, भय पर अभय को, निरावलम्बन पर स्वावलम्बन को और अकर्मण्यता पर कर्तव्यनिष्ठा को स्थापित करना है, सामाजिक मूल्यों में हमें अन-अस्तिव को और सामाजिक अन्याय पर सामाजिक न्याय को स्थापित करना है। आर्थिक मूल्यों में हमें जाना है अप्रामाणिक आर्थिक व्यवहार से प्रामाणिक आर्थिक व्यवहार की ओर, राजनीतिक मूल्यों में हमें लोकतांत्रिक चेतन के द्वारा व्यवस्था के माध्यम से समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और लौकिक नैतिकता की स्थापना करनी है। हमें धार्मिक मूल्यों में सम्प्रदाय सापेक्षता के स्थान पर सर्वधर्म समभाव समन्वित सम्प्रदायनिरपेक्षता की ओर प्रयाण करना है। आध्यात्मिक मूल्यों में हमें उपभोक्तावादी संस्कृति से उद्भूत अति भौतिकतावादी को नकारकर आसक्ति से अनासक्ति और परानुशासन को आत्मानुशासन की ओर बढ़ना है। मानसिक मूल्यों में हमें मानसिक असन्तुलन के स्थान पर मानसिक सन्तुलन को प्राप्त करना है। बौद्धिक मूल्यों में एकांगी दृष्टिकोण को छोड़कर समन्वयात्मक दृष्टिकोण के द्वारा अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय कर अपने व्यक्तित्व को नये रूप रंग में ढालना है हमें सांस्कृतिक मूल्यों में सांस्कृतिक विरासत की रक्षा करते हुए कलागत मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में सौन्दर्य बोध को अपनाना है, जिससे हम सत्य, शिव और सुन्दर की त्रिवेणी अपने व्यक्तित्व में उतारकर अपने जीवन को सांस्कृतिक दृष्टि से गारिमामय बना सकें। हमें अंधविश्वासों, रूढ़ियों और सड़ी-गली मान्यताओं को नकारकर वैज्ञानिक स्वभाव को अपने जीवन का अनिवार्य अंग बनाना है।

अब भी हमारे समाज में, धर्म में, राजनीति में अलख जगा रहे हैं। समाज के राजनीति के धर्म के और ये समस्त बुद्धिजीवी नयी व्यवस्था और नयी सामाजिक रचना के द्वारा नये मनुष्य के निर्माण में संलग्न हैं। इन्हीं बुद्धिजीवियों की सहायता से सड़े-गले मूल्यों को विध्वंस कर नये मूल्यों की स्थापना करनी है, रूढ़िवादी समाज के स्थान पर विकासोन्मुखी समाज की रचना करनी है, सम्प्रदाय सापेक्ष समाज के स्थान पर सर्वधर्म समभाव समन्वित सम्प्रदाय निरपेक्ष समाज की रचना करनी है, विषमता से ग्रस्त समाज के स्थान पर समतामूलक समाज की रचना करनी है और समग्र रूप में श्रेयस्कर मूल्यों से समवृत्त समाज की रचना करनी है।

इन श्रेयस्कर मूल्यों की स्थापना का दायित्व परिवार, विद्यालय और समाज सभी का है। परिवार और समाज अनौपचारिक नैतिक शिक्षा का दायित्व निभाते हैं, किन्तु शिक्षक के कंधों पर औपचारिक और अनौपचारिक नैतिक शिक्षा का दायित्व है।

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थान में लिखो।

ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र01 मूल्य शिक्षा के उद्देश्यों को सूचीबद्ध कीजिये।

30

.....

.....

प्र02 समकालीन परिस्थिति में मूल्य शिक्षा की आवश्यकता को स्पष्ट करें।

30

.....

.....

12.5 मूल्य शिक्षा : अवधारणा

मूल्य, अभिवृत्तियाँ तथा आदर्श हमारे व्यवहार को निर्देशित तथा नियंत्रित करते हैं। मूल्यों से अभिप्रेरणा को दिशा मिलती है। हमारे व्यवहार का नियन्त्रण करने में मूल्यों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है ये अभिप्रेरणा को शक्ति देते हैं, आवश्यकताओं की सम्पुष्टि के स्वरूप को निर्धारित करते हैं एवं उद्देश्यों की प्राप्ति के साधनों के चयन में निर्णय लेने में निर्णायक का कार्य करते हैं। हम सहयोग करेंगे अथवा असहयोग, सहनशील होंगे अथवा असहनशील, उदार-हृदय होंगे तथा संकीर्ण हृदय, आत्मविश्वासी होंगे अथवा भयभीत यह हमारे विचारों पर ही निर्भर नहीं करता। यह हमारे मूल्यों द्वारा हमारे स्थायी भावों तथा अर्जित परिमार्जित मूलप्रवृत्तियों के द्वारा निश्चित होता है।

12.6 मूल्य: अर्थ एवं परिभाषा

जीवन और संसार को हम जिस अर्थ के सन्दर्भ में समझने की चेष्टा करते हैं उस अर्थ को सामान्य रूप से मूल्य कहा जाता है। मूल्य एक मानक रूपी मानदण्ड है जिसके आधार पर मनुष्य अपने सामने उपस्थित क्रिया-कलापों में से चयन करने में प्रभावित होता है। "मूल्य एक सामान्य और अमूर्त गुण है जो किसी चीज में निहित होता है और उसके महत्व या गुरुत्व की ओर संकेत करता है।"

1. सी० वी० गुड (C. V. Good) के अनुसार :- “मूल्य वह चारित्रिक विशेषता है जो मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और सौन्दर्य-बोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जाती है। लगभग सभी विचार मूल्यों के अभीष्ट चरित्र को स्वीकार करते हैं।
2. जान जे० काने (John J. Kane) :- “मूल्य वे आदर्श, विश्वास या मानक हैं जिन्हें समाज या समाज के अधिकांश सदस्य ग्रहण किये हुए होते हैं।

12.7 मूल्यों का वर्गीकरण

मूल्यों का विभाजन श्रेयस और प्रेयस की दृष्टि से किया जा सकता है। भारतीय परंपरा के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अपने आप में मूल्य हैं। इसमें श्रेयस मूल्य है- धर्म और मोक्ष तथा प्रेयस मूल्य है - अर्थ और काम। प्रेयस मूल्यों में भौतिकवाद चिंतन प्रमुख होता है। जबकि श्रेयस मूल्य आध्यात्मिक धरातल पर खड़े होते हैं।

मूल्य कई प्रकार के हो सकते हैं, जैसे-सांस्कृतिक दार्शनिक, सामाजिक, धार्मिक राजनैतिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, सौन्दर्यानुभूति के मूल्य आर्थिक और नैतिक मूल्य आदि आकारादि क्रम से देखे तो निम्नलिखित मूल्यों को इन सोपनों में कहीं न कहीं सम्मिलित किया जा सकता है- अभय, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, आदरभाव, आज्ञापालन, आत्मविश्वास आत्मानुशासन, इंद्रिय दमन, ईमानदारी, उत्तरदायित्व, उदारता, करूणा, कर्मठता, कल्पनाशीलता, कर्तव्यपरायणता, गुरन्भक्ति, गतिशीलता, त्याग, देश-प्रेम, दया, दान, दृढ़ता, धैर्य, निष्पक्षता, नम्रता, प्रेम, परोपकार, नियमितता, पवित्रता, बलिदान, भ्रातृत्व मैत्री, विनय, साहस, संयम, संतोष, सदाचार, स्वतंत्रता, समानता, सहिष्णुता, स्नेह सहानुभूति संवेदना, सादगी, सहयोग, समन्वय, सेवा, शिष्टाचार, श्रमनिष्ठा, क्षमा एवं ज्ञान आदि।

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थान में लिखो।

ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र०३ मूल्यों की अवधारणा की व्याख्या कीजिये।

३०.

प्र०४ मूल्य की कोई दो परिभाषा दीजिये।

३०

12.8 स्वातंत्रयोत्तर भारत में नैतिक शिक्षा

शिक्षा को एक साथ दो काम करने होते हैं सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा और समाज को परिवर्तन के लिए तैयार करना। कोई भी जीवंत समाज बदलाव की हवाओं से व्याकुल नहीं होता। हर परिवर्तन के साथ पुराने मूल्यों पर फिर से कसौटी पर चढ़ना होता है। समाज ने अपने सुविधा की दृष्टि से कुछ समय के लिए मूल्यों को अपनाया, हो सकता है कि वे बदलाव की हवाओं को सहन नहीं कर सकें और बालू पर अंकित चिन्ह की तरह गिर जाएं लेकिन जो मूल्य शाश्वत होते हैं, उन्हें मिटाना समय के बूते की बात नहीं है। नैतिक शिक्षा केवल इस युग के लिए नहीं, प्रत्युत प्रत्येक युग के लिए प्रासंगिक है, यह तो शिक्षा के रोम-रोम में रमी हुई है इसको अलग करने का मतलब है शिक्षा को निष्प्राण कर देना।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग - (राधाकृष्णन आयोग, 1948) ने स्वीकार किया कि कल्याणकारी राज्य के रूप में नैतिकता का आधार सभी धर्मों के मूल सत्य होने चाहिए। आयोग ने स्पष्ट कह, "हमारे संविधान का मूल सिद्धान्त आध्यात्मिक प्रशिक्षण है। राज्य का कोई धर्म नहीं है। राज्य को किसी भी धर्म का पक्ष नहीं लेनी चाहिए। अगर यही हमारे धर्मनिरपेक्ष राज्य का आधार है तो हम धार्मिक दृष्टि से अनपढ़ होने के लिए धर्म निरपेक्ष नहीं है। हमें गहराई में आध्यात्मिक होना है और संकुचित रूप में धार्मिक नहीं होना है।"

आयोग ने माना कि प्रशिक्षण शिक्षा नहीं है। हमें मानवीय हृदय को सभ्य बनाना है। संवेगों की शिक्षा और इच्छाशक्ति का अनुशासन ही स्वस्थ शैक्षिक व्यवस्था के अनिवार्य अंश है। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने (1948-49) - माना कि विद्यार्थियों के लिये नैतिक जागरण की पुस्तकें होनी चाहिये। नैतिक विकास के लिये विद्यार्थियों को सुझाव और प्रेरणा अपेक्षित है। महज साहित्य श्रेष्ठ भावों की अग्नि

प्रज्वलित करते हैं और श्रेष्ठ आदर्शों और आकांक्षाओं को प्रेरित करते हैं। महान साहित्य में होमर, प्लेटो, वर्जिल, दाँते, शैक्सपियर, मिल्टन और टालस्टाय है। आयोग ने माना कि धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन से छात्रों के चरित्र का निर्माण किया जा सकता है। धार्मिक शिक्षा के अध्यापन में आयोग ने माना कि राज्य धार्मिक तटस्थता का निर्वाह करें। इन तटस्थ परिस्थितियों में ये संस्थाएँ धार्मिक सम्बन्धों के पूर्वाग्रहों से मुक्त हो सकती है।

डॉ० लक्ष्मण स्वामी ए० मुदालिघर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53), ने भी शिक्षा में धार्मिक और नैतिक शिक्षा के बारे में अपने सुझाव दिये। इसके अनुसार प्रार्थना सभा में प्रेरणादायक वार्ताएं दी जानी चाहिए जो सभी काल और सभी क्षेत्रों के हो और जिनसे छात्रों में नैतिकता की भावना जाग्रत की जा सके। आयोग के अनुसार विद्यार्थियों को केवल प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। चरित्र निर्माण के लिए सम्पूर्ण साधनों तथा सहपाठ्यगामी क्रियाओं का उपयोग किया जाना चाहिए।

1959 में भारत सरकार ने शिक्षा मंत्रालय ने धार्मिक और नैतिक प्रशिक्षण की एक समिति नियुक्त की। श्री प्रकाश की अध्यक्षता की इस समिति ने नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा पर बल दिया। इन नैतिक मूल्यों का सम्बन्ध मनुष्य के उस आचरण से है, जो विभिन्न स्थितियों में मनुष्य, घर, समाज, आर्थिक क्षेत्र और बाह्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से है, बचपन से ही नैतिक मूल्य प्रदान किये जाने चाहिये। सबसे पहले हमें घर को प्रभावित करना है। हमारे घर वे नहीं है जो होने चाहियें। शिष्टाचार नैतिक शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग है। इस समिति ने शिष्टाचार पर अत्यधिक महत्व दिया। समिति ने माना कि आज के विद्यार्थी कल जीवन में प्रवेश करेंगे, इसलिए इनके शैक्षिक जीवन के प्रारम्भ से ही सही जीवन मूल्यों की शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। समिति ने माना कि नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के लिये धार्मिक पुरुषों की शिक्षाओं का तुलनात्मक और सहानुभूतिपूर्ण अध्ययन होना चाहिये और तदनन्तर इनकी नैतिक व्यवस्था और दर्शनों का अध्ययन होना चाहिये। सभी स्तरों पर शिष्टाचार, समाजसेवा और देश सेवा की भावना प्रदान की जानी चाहिये।

समिति ने सुझाव दिया विद्यालय में प्रार्थना सभा में आदर्शों पर वार्ताएँ आयोजित होनी चाहिये। कभी-कभी विश्व के धर्मों और संस्कृतियों से जुड़े धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष महान साहित्य के अंशों को पढ़ाया जाना चाहिये। प्रेरणादायक सामूहिक गायन भी विद्यालयों में अपेक्षित है। सभी धर्मों के महान् धार्मिक नेताओं, संतों, रहस्यवादियों और दार्शनिकों के जीवन और शिक्षाओं के आधार पर तुलनात्मक आधार

पर सभी स्तरों - प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक के लिये पुस्तकों को तैयार करवाना चाहिये। ऐसी अच्छी पुस्तकें तैयार करनी चाहिये, जो देशभक्ति और समाजसेवा की भावना जाग्रत कर सकें।

इसके अतिरिक्त पाठ्य क्रियाओं के अन्तर्गत समिति ने अन्तरधार्मिक समझ के आधार पर वार्ताएँ आयोजित करने के लिये सुझाव दिये, इसलिए शैक्षिक प्रसारण और सामूहिक विचार-विमर्श आयोजित होने चाहिये।

इस समिति ने प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में 1959 में निम्नांकित सुझाव दिये-

1. सामूहिक गीत के लिये कुछ मिनटों के लिए प्रार्थना सभा का आयोजन होना चाहिये।
2. भाषा शिक्षण में धर्मोपदेशको, और उपदेशों पर सरल और रूचिपूर्ण कहानियाँ होना चाहिए।
3. दृश्य श्रव्य सामग्री से बच्चों की रूचि होनी चाहिये।
4. विद्यालय में शैक्षिक कार्यक्रम में नैतिक शिक्षा के लिए दो कालांश अलग से निर्धारित होने चाहिये।
5. विद्यालय कार्यक्रम में 'सेवा' भावना और 'श्रम की पूजा' की भावना छात्र में विकसित होनी चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में धार्मिक और आध्यात्मिक प्रशिक्षण समिति (1959) ने निम्नांकित सुझाव दिये-

1. प्रार्थना सभा में दो मिनट का मौन और उसके पश्चात् धर्म ग्रन्थों और विश्व के महान् साहित्य पर वार्ता और सामूहिक गायन।
2. सामाजिक और इतिहास में विश्व के धर्मों के मुख्य उपदेशों को स्थान मिलना चाहिये। धर्मों के बारे में अवतरण और कथाएँ होनी चाहिए।
3. सप्ताह में एक कालांश नैतिक शिक्षण के लिये होना चाहिये। नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा के लिये वक्ताओं को बुलाना चाहिये।
4. अवकाश के दिनों में कक्षा में बाहर व्यवस्थित समाज सेवा के कार्यक्रम अतिरिक्त पाठ्यक्रियाओं के अन्तर्गत होने चाहिये। वे श्रम के प्रति निष्ठा, मानवता के प्रति प्रेम, देश भक्ति आत्मानुशासन जाग्रत करें।

5. विद्यालय में छात्रों के मूल्यांकन में चरित्र और उनके व्यवहार का मूल्यांकन होना चाहिये।

विद्यालय स्तर के लिये समिति ने निम्नांकित सुझाव दिये -

1. विद्यार्थी प्रातः समूहों में मौन धारण करें। इनका पर्यवेक्षण वरिष्ठ शिक्षकों द्वारा होना चाहिये।
2. स्नातक स्तर पर विभिन्न धर्मों का सामान्य अध्ययन सामान्य शिक्षा पाठ्यक्रम में होना चाहिये। जैसे विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने सुझाव दिये है-
 - (i) स्नातक स्तर पर प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम में महान् धार्मिक और आध्यात्मिक नेताओं जैसे गौतम बुद्ध, कन्फूशियस, जोरास्टर, सुकरात, ईसा, शंकर रामानुज, माधव, मोहम्मद कबीर, नानक और गाँधी के जीवन के बारे में बताना चाहिए।
 - (ii) द्वितीय वर्ष में ग्रन्थों के शाश्वत् प्रकृति के चयनित अंश होने चाहिये।
 - (iii) स्नातकोत्तर स्तर पर तुलनात्मक धर्म का विषय भी होना चाहिए।
 - (iv) सभी विश्वविद्यालयों में समाज सेवा के कार्यक्रम होने चाहिए।

भावात्मक एकता समिति (1961) ने राष्ट्रीय जीवन में भावात्मक एकता की स्थापना के लिये शिक्षा की भूमिका को स्वीकार किया। इनके सुझाव थे कि-

1. सभी धर्मों के प्रति प्रशंसा का भाव जागृत किया जाय।
2. विज्ञान के विद्यार्थी के लिए पृष्ठभूमि के मानविकी का ज्ञान - भारत की सांस्कृतिक विरासत का ज्ञान हो और मानविकी के विद्यार्थी को सामान्य विज्ञान का ज्ञान प्रदान किया जाय।
3. वयस्क जनसंख्या को शिक्षित किया जाय।
4. धर्मनिरपेक्ष राज्य के पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा देना संभव नहीं है इसलिये सभी धर्मों में व्याप्त आध्यात्मिक मूल्यों का ज्ञान प्रदान किया जाये।

शिक्षा आयोग (1964-66) ने माना कि नयी पीढ़ी में सामाजिक और नैतिक मूल्य कमजोर हो रहे हैं। इसमें सुझाव दिया "नैतिक शिक्षा सुझाव के साथ विचार-विमर्श और शिक्षण के द्वारा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष विधि से प्रदान की जानी चाहिए। हम अच्छे चरित्र में अप्रत्यक्ष प्रभाव को महत्व देते हैं। विद्यालय का वातावरण, शिक्षक का व्यक्तित्व और व्यवहार, विद्यालय में उपलब्ध सुविधाएँ मूल्यों के विकास में सहायक हैं, नैतिक शिक्षा का दायित्व केवल एक अध्यापक को नहीं सौंपा जा सकता प्रत्येक विषय के

अध्यापक को यह दायित्व स्वीकार करना होगा। विद्यालय सभा, पाठ्य और सहपाठ्य गतिविधियों, धार्मिक त्यौहारों का आयोजन, कार्यानुभव, समूह खेलकूद, विषय क्लब, समाज सेवा कार्यक्रम, यह सभी सहयोग और आपसी आदर, ईमानदार और प्रामाणिकता आनुशासन और सामाजिक दायित्व के लिये योग देते हैं। इन मूल्यों का आज भारतीय समाज में विशिष्ट स्थान है और युवा पुरुष और महिलाएँ चरित्र के संकट से गुजर रहे हैं।”

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने बालक के नैतिक और भावात्मक विकास पर बल दिया और यह पीड़ा दर्शाई गई कि मूलभूत मूल्यों का क्षय हुआ है और शिक्षा को सामाजिक और नैतिक मूल्यों के लिये एक महत्वपूर्ण हथियार बनाया जा सकता है।

हमारे इस बहुत सांस्कृतिक समाज में शिक्षा को सार्वभौमिक और शाश्वत मूल्य प्रदान करने चाहिये, जो हमारे लोगों को एकता के सूत्र में निबद्ध कर सके। ऐसी मूल्यपरक शिक्षा दुर्बोधता, धार्मिक मतांधता, हिंसा अंधविश्वास और भाग्यवाद को समाप्त कर सके।

इस प्रकार समग्र विश्व में और भारत में समय-समय पर नैतिक शिक्षा में विषय में गहराई से सोच-विचार हुआ है। स्वाधीनता के पहले नैतिक शिक्षा के विषय में सोच का अंकुरण हुआ और लगभग इस आधे दशक में तीन आयोगों और कुछ समितियों ने नैतिक शिक्षा के संदर्भ में गहराई से विचार मंथन किया है, किन्तु क्रियान्विति का प्रश्न अभी भी अधर में झूल रहा है। अतः इस बात की अपेक्षा है कि नैतिक शिक्षा की इस विकास यात्रा में अब इसे क्रियान्विति करना पड़ेगा अन्यथा हमारी राष्ट्रीय अस्मिता और जनतांत्रिक मूल्य घोर संकट में है।

अभ्यास कार्य

बोध प्रश्न :

क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थान में लिखो।

ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र05 छात्रों में धार्मिक और नैतिक मूल्यों के विकास हेतु माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने क्या सुझाव दिये हैं?

30

.....
.....
.....

प्र06 नैतिक मूल्यों के विकास हेतु शिक्षा आयोग (1964-66) के सुझावों को सूचीबद्ध कीजिये।

मूल्य शिक्षा

30

.....

.....

12.9 नैतिक शिक्षा के विविध आधार

नैतिक शिक्षा का दर्शन

शिक्षा के दार्शनिक आधार की तरह नैतिक शिक्षा का भी दार्शनिक आधार है शिक्षा की समस्त अवधारणाएँ नैतिक शिक्षा से सम्बद्ध हैं। चाहे शिक्षा के उद्देश्य हो या पाठ्यक्रम निर्धारण का प्रश्न हो या पाठ्यवस्तुओं की रचना का प्रश्न हो, या अनुशासन का प्रश्न हो, या विद्यालय के मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय वातावरण का प्रश्न हो, कोई भी प्रश्न नैतिक शिक्षा के प्रश्न से विच्छिन्न नहीं है। जीवन दर्शन के अनुरूप शिक्षा दर्शन की स्थापना होती है दर्शन ने सदैव नैतिक शिक्षा को प्रभावित किया है। जैसा जीवन दर्शन होगा, वैसा ही नैतिक शिक्षा होगी। नैतिक शिक्षा दर्शन का व्यावहारिक रूप है। नैतिक शिक्षा या मूल्यपरक शिक्षा दर्शन का गत्यात्मक पहलू है। यह दार्शनिक विश्वास का सक्रिय पक्ष है। और जीवन के आदर्शों को प्राप्त करने का व्यावहारिक साधन है। दर्शन और नैतिक शिक्षा में पारस्परिक निर्भरता है। रॉस ने ठीक ही कहा है, शिक्षा और दर्शन एक ही सिक्के के दो चेहरे हैं दर्शन जीवन की विचारात्मक पक्ष है। और शिक्षा क्रियात्मक पक्ष, इसी तरह दर्शन नैतिक का विचारात्मक पक्ष है और नैतिक शिक्षा क्रियात्मक पक्ष।

शिक्षा के दार्शनिक आधार - शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार आदर्शवाद, यथार्थवाद, प्रकृतिवाद और प्रयोजनवाद शिक्षा के विविध दार्शनिक आधार हैं।

नैतिक शिक्षा का आदर्शवादी आधार - नैतिक या मूल्यपरक शिक्षा का भव्य भवन आदर्शवादी शिक्षा पद्धति पर आधारित है। आदर्शवादी शिक्षा पद्धति के द्वारा ही बालक में सत्यम, शिवम और सुन्दरम के गुणों का विकास सम्भव है।

कांट सनातन नियम की तीन उत्पत्तियाँ प्रस्तुत करते हैं ।

1. केवल उस सूत्र के अनुरूप कर्म करो जिसे तुम सर्वव्यापी नियम बनाना चाहते हो।

2. व्यक्ति अपने आप में लक्ष्य है, किसी अन्य परिणति का साधन नहीं।
3. इस प्रकार व्यवहार करो मानों तुम उस समूह के सदस्य हो।

स्वतंत्रता के बारे में कांट ने बताया कि यह सनातन से ऐसा कोई भी व्यक्ति नैतिक नियम से ऐसा कोई काम नहीं कर सकता, उसे यदि यह ज्ञात हो कि यह व्यवहार सार्वत्रिक मान्य नहीं हो सकता जैसे हत्या स्वतंत्रता का आधार विवेक है।

नैतिक शिक्षा का सम्बन्ध आदर्शवाद से सर्वाधिक है। शाश्वत जीवन मूल्यों की स्थापना आदर्शवाद करता है। आदर्शवाद के अभाव में नैतिक शिक्षा पंगुहीन है। आदर्शवादी सिद्धान्त अमूर्त होते हैं, नैतिक शिक्षा उन्हें मूर्त करती है। आदर्शवादी ऐसी मूल्यपरक शिक्षा पर बल देता है, जो व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करें और स्व की पहचान के द्वारा आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर करें।

काण्ट ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि नैतिकता सर्वोच्च है, नैतिक नियम व्यक्ति के संकल्प के स्वातंत्र्य तथा उसके कृत्यों की सार्वभौमिकता की अपेक्षा रखता है। जर्मन दार्शनिक फिख्टे द्वारा प्रतिपादित नवीन शिक्षा का अंतिम उद्देश्य छात्र को विशुद्ध नैतिकता का प्रशिक्षण देने की कला ही नहीं है, बल्कि उसका अंतिम उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्य को मनुष्यत्व के लिए पूर्णरूपेण प्रशिक्षण करने की कला है और केवल वही राष्ट्र पूर्ण राज्य की समस्या हल करेगा, जिसने सबसे पहले यथार्थ व्यवहार में पूर्ण मनुष्यों को शिक्षित करने की समस्या हल कर ली है।

इस प्रकार नैतिक शिक्षा का संरचनात्मक आधार आदर्शवादी शिक्षा दर्शन पर टिका है, आदर्शवादी शिक्षा दर्शन से नैतिक शिक्षा की अवधारणा, लक्ष्य और उद्देश्य निश्चित होते हैं।

नैतिक शिक्षा का यथार्थवादी आधार - यथार्थवादी दर्शन ने नैतिक शिक्षा को यथार्थवाद के धरातल पर स्थापित किया। यथार्थवादी शैक्षिक दर्शन ने आध्यात्मवाद का विरोध किया, किन्तु नैतिक शिक्षा का विरोध नहीं किया।

यथार्थवादियों ने पहली बार शिक्षा को एक प्रक्रिया माना और 'ज्ञान के लिये ज्ञान' के सिद्धान्त का खण्डन किया। यथार्थवादियों ने पुस्तकीय ज्ञान का विरोध किया, किन्तु नैतिक शिक्षा का समर्थन किया। इसके अनुसार शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति में विवेक बुद्धि और निर्णय की क्षमता उत्पन्न करती है। इस विचारधारा ने माना कि बालक पर स्कूल की कृत्रिम किताबी शिक्षा का बोझा लादने की अपेक्षा मन का क्रमिक विकास ही शिक्षा का मूल का है।

यथार्थवाद व्यक्ति को सुखी जीवन जीने के लिए तैयार करता है, यह व्यक्ति में विवेक बुद्धि और निर्णय की क्षमता विकसित करता है, यह बालक को प्रकृति और सामाजिक वातावरण का ज्ञान देता है और यह व्यक्ति को यथार्थ जीवन से जूझने के लिये तैयार करता है।

यथार्थवाद के अनुसार विद्यालय का उद्देश्य शैक्षणिक प्रक्रिया द्वारा स्व-अनुशासन स्थापित करना, शिष्यों को सक्रिय बनाना और उनके भौतिक सामाजिक, मानसिक और नैतिक विकास को प्राप्त करना है।

यथार्थवाद ने व्यावसायिक शिक्षा पर बल दिया व्यवसाय के बिना संस्कृति और संस्कृतिके अभाव में व्यवसाय अधूरा है। डेवनपोर्ट के अनुसार शिक्षा के अभाव में व्यवसाय और व्यवसाय के अभाव में शिक्षा का वरण नहीं होना चाहिए। यथार्थवाद ने व्यावसायिक, सार्थक और उपयोगी शिक्षा पर बल दिया किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से व्यावहारिक नैतिक शिक्षा का इससे कोई विरोध नहीं है।

नैतिक शिक्षा का प्रकृतिवादी आधार - परोक्ष रूप से नैतिक शिक्षा का सम्बन्ध प्रकृतिवाद से भी है। हर्बर्ट स्पेंसर ने अपने अध्याय "नैतिक शिक्षा" में कहा है, "चाहे जिस धारणा से शुरू किया जाय नैतिकता की सभी उत्पत्तियाँ इस विषय में सहमत होती हैं कि जिस आचरण के तात्कालिक अथवा दूरस्थ परिणाम कुल मिलाकर लाभदायी हों, वह अच्छा आचरण है, इसके विपरीत जिस आचरण के तात्कालिक अथवा दूरस्थ परिणाम हानिकारक हों वह बुरा आचरण है। सभी मनुष्य व्यवहार को जिस अंतिम मापदण्ड से परखते हैं, वह सुखदायी अथवा दुःखदायी परिणाम के आधार पर होता है।"

प्रकृतिवाद पर चाहें जितने प्रहार किये जायें इसके अनुसार स्वार्थ सिद्ध करना सबसे बड़ा सूद है। किन्तु स्पेंसर ने अपनी कृति एजूकेशन इंटेलेक्चुअल, मारल एण्ड फिजिकल में प्रचलित पाठ्यक्रम पर वार किया। स्पेंसर के अनुसार अच्छी शिक्षा का मापदण्ड मानव कल्याण है, यह ऐसा सिद्धान्त है जिसे कोई चुनौती नहीं दे सकता। स्पेंसर स्पष्ट कहता है कि केवल बौद्धिक अनुशासन के लिये ही नहीं अपितु नैतिक अनुशासन के लिये विज्ञान उत्पकृष्ट है।

प्रकृतिवाद नैतिक शिक्षा के मनोवैज्ञानिक पक्ष का निर्धारण करता है, प्रकृतिवाद नैतिक शिक्षा के वैज्ञानिक पक्ष का उद्घाटन करता है। इस विचारधारा के अनुसार केवल वाह्य अनुशासन से नैतिक शिक्षा नहीं प्रदान की जा सकती है। इस विचारधारा में प्रकृति स्वयं शिक्षक है और स्वाभाविक परिणामों द्वारा अनुशासन सम्भव है। प्रकृतिवादी दर्शन

औपचारिक नैतिक शिक्षा में नहीं, अनौपचारिक नैतिक शिक्षा को स्वीकार करता है। इस विचारधारा के अनुसार प्रकृति के मुक्त प्रांगण में बालक नैतिक स्वतः बनता है। इसके अनुसार विद्यालय प्रकृति के मुक्त प्रांगण होने चाहिए जहाँ बालक प्रकृति के साहचर्य और अन्तर्क्रियाओं से नैतिकता का पाठ सीख सके।

नैतिक शिक्षा का प्रयोजनवादी आधार - प्रयोजनवाद ने नैतिक शिक्षा को एक गतिशील विचारधारा प्रदान की। प्रयोजनवादी शिक्षा उन नैतिक मूल्यों को महत्व देती है जो उपयोगितावाद की तुलना पर खरे उतरते हैं, जो जीवन की रचना में सतत, क्रियाशील है, जो व्यक्ति की शक्ति के साथ सामाजिक कुशलता पर बल देते हैं। प्रयोजनवादी नैतिक शिक्षा शाश्वत मूल्यों में नहीं, परम्परागत मूल्यों में नहीं, परिवर्तनशील और प्रजातांत्रिक मूल्यों में विश्वास करती है। प्रयोजनवादी शिक्षा के अनुसार बालक स्वयं अपने मूल्य निर्मित करें, यह नहीं मानती कि केवल अदर्शवादी शिक्षक ही बालकों में मूल्यों का स्फुरण कर सकते हैं, यह नहीं मानती कि केवल आदर्शवादी पुस्तकें ही छात्रों में मूल्य उत्पन्न कर सकती है और यह नहीं मानती कि केवल विद्यालय विषयों के द्वारा छात्रों को नैतिक बनाया जा सकता है।

बोध प्रश्न -

टिप्पणी -

क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्र.7 नैतिक शिक्षा के विविध दार्शनिक आधार कौन से हैं?

उ. _____

प्र.8 प्रयोजनवाद ने नैतिक शिक्षा के लिए सुदृढ़ आधार भूमि निश्चित की है, सिद्ध करो।

उ. _____

12.10 नैतिक शिक्षा या मूल्यपरक शिक्षा के अभिकरण

1. घर और परिवार में नैतिक शिक्षा

घर और परिवार नैतिक शिक्षा का प्रथम और महत्वपूर्ण अभिकरण है। व्यक्ति और उसके चरित्र के निर्माण में वंशानुक्रम बीज है। तो वातावरण पोषण, वंशानुक्रम नींव का पत्थर है और वातावरण भवन की निर्मित, वंशानुक्रम प्रकृति है तो वातावरण प्रशिक्षण, बालक के व्यक्तित्व के विकास का मूलाधार वंशानुक्रम और वातावरण है।

परिवार अपने सदस्यों के व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण योग देता है। सामाजिक स्व के रूप में परिवार का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण योगदान रहता है। परिवार बच्चों के अव्यवस्थित व्यवहारों को निर्देशित करके, उनमें सुधार करके समाज की मान्यता के अनुरूप कार्य करने वाली प्रथम संस्था है। यह बालक का पथ-प्रदर्शक और निर्देशक है। यहाँ संस्कृति का हस्तांतरण शब्दों संकेतों और दृष्टान्तों से होता है। व्यक्ति के अच्छे और बुरे व्यक्ति की नींव परिवार में ही पड़ती है।

परिवार के कार्य

विलियम आगबर्न के अनुसार परिवार के निम्न परम्परागत कार्य हैं-

1. स्नेहात्मक कार्य
2. आर्थिक कार्य
3. शैक्षणिक कार्य
4. संरक्षणात्मक कार्य
5. स्थिति प्रदान करने के कार्य
6. नैतिक कार्य

किंग्सले डेविस ने परिवार के कार्यों के चार विस्तृत शीर्षकों में विभाजित किया है -

1. संतानोत्पत्ति
2. पालन-पोषण
3. पुनर्स्थापना
4. समाजीकरण

परिवार शैक्षणिक कार्य और समाजीकरण के द्वारा परिवार के अन्य सदस्यों में और विशेष रूप से युवा पीढ़ी में मूल्यों के संरक्षण, सम्प्रेषण और सृजन के द्वारा नैतिक शिक्षा में महत्वपूर्ण योग देता है। परिवार अपने लोकाचारों और जनरीतियों के परिचालन द्वारा अप्रत्यक्ष रूप में नैतिक शिक्षा प्रदान करता है। परिवार विशिष्ट सांस्कृतिक प्रतिमानों के संरक्षण, हस्तांतरण और सृजन द्वारा भी नैतिक शिक्षा में योग देता है। परिवार वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों की स्थापना में योग देता है। परिवार में ही श्रेष्ठ आदतों का निर्माण होता है। परिवार मानव के सामाजिक जीवन की धुरी है। वस्तुतः समाजीकरण की प्रक्रिया ही नैतिक शिक्षा है परिवार में ही संवेगात्मक विकास की नींव रखी जाती है जो नैतिक शिक्षा का मूलाधार है। परिवार व्यक्ति के चरित्र की पाठशाला है, जो अनौपचारिक नैतिक शिक्षा के द्वारा व्यक्तित्व के विकास की नींव रखता।

अतः नैतिक शिक्षा के लिए परिवार महत्वपूर्ण अभिकरण है, जिसके बदलते परिप्रेक्ष्य में अब भी प्रासंगिकता है। वस्तुतः परिवर्तनशील अच्छा परिवार विद्यालय का श्रेष्ठ आधार है।

2. विद्यालय में नैतिक शिक्षा

परिवार के पश्चात् विद्यालय औपचारिक और अनौपचारिक नैतिक शिक्षा का महत्वपूर्ण अभिकरण है। आज वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास ने उपभोक्तावाद को जन्म देकर नैतिक मूल्यों का हनन किया है। इसने मनुष्य की आन्तरिक शान्ति पर प्रहार किया है।

बालक का बाह्य समाज से सम्पर्क विद्यालय से ही प्रारम्भ होता है। इसके पूर्व उसका सम्बन्ध केवल घर और परिवार के परिजनों से होता है। शाला ही ऐसा समाज है जहाँ बालक को बाह्य समाज से अपेक्षाकृत सरल स्थितियाँ मिल सकती हैं।

विद्यालय नैतिक विकास हेतु उत्तम स्थल है। परिवार की अपेक्षा विद्यालय का वातावरण बहुत समाज के अधिक निकट है। विद्यालय औपचारिक और अनौपचारिक नैतिक शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है।

विद्यालय समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा नैतिक शिक्षा के दायित्व की पूरी तरह निभा सकता है। यहाँ बालकों में उन आदतों रूचियों, प्रवृत्तियों और भावनाओं का विकास होता है, जो उसके जीवन का अविभाज्य अंग बन जाती है।

विद्यालय पाठ्यक्रम, सहपाठ्य क्रियाएँ विद्यालय नियम, विद्यालय अनुशासन, मुख्याध्यापक का व्यक्तित्व, अध्यापकों के व्यक्तित्व और विद्यालय वातावरण सबका समग्र प्रभाव बालकों के नैतिक विकास पर पड़ता है।

विद्यालय एक प्रयोगशाला है जहाँ विद्यार्थी ज्ञानात्मक पक्ष के साथ-साथ व्यावहारिक पक्ष की भी शिक्षा प्राप्त करता है। यह एक कर्मस्थली है, जहाँ उसमें शिक्षकों, मित्रों और विद्यालय के प्रति आत्मीयता का भाव जन्म लेता है और जहाँ उसके मूल्यों का उन्नयन होता है।

विद्यालय पाठ्यक्रम और नैतिक शिक्षा

पाठ्यक्रम निर्माण के सम्बन्ध में चार सिद्धान्त हैं -

1. विद्यालय विधियों के आधार पर ।
2. विधियों के विस्तृत क्षेत्रों के आधार पर एकीकृत या समन्वित पाठ्यक्रम।
3. सामाजिक कार्य विधि के आधार पर पाठ्यक्रम ।
4. बालकों की रुचियायें, आवश्यकताओं और समस्याओं के आधार पर पाठ्यक्रम

विद्यालय पाठ्यक्रम में कोई भी विधि या सिद्धान्त अपनायें, उसका लक्ष्य बालकों का नैतिक विकास भी होना चाहिये। जापान में आयोजित एक सेमिनार के अनुसार “विद्यालय का मूल उद्देश्य चरित्र निर्माण होना चाहिये। इसमें श्रेष्ठ विधि है कि बालक को स्वप्रत्यक्षीकरण के रास्ते की तलाश करने के लिए प्रेरित करना है, सुझाव देना है, सहायता प्रदान करनी है। मनुष्य में स्वप्रत्यक्षीकरण की शक्तिशाली आवश्यकता है किन्तु अधिकतर बालक का सामाजिक, मानसिक और नैतिक वातावरण उसकी आवश्यकता की पूर्ति नहीं करता है। यह प्रयत्न किया जाना चाहिए कि शिक्षण के द्वारा उसकी शक्तियों को जाग्रत किया जाय।”

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एन.सी.ई.आर.टी.) ने माना है कि प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर मूल्यपरक शिक्षा ही पूरी शिक्षा है। शिक्षक को यह देखना है कि किन परम्परागत मूल्यों को स्वीकार करना है, किन मूल्यों का नैरन्तर्य बनाये रखना है और किन मूल्यों में परिवर्तन-परिवर्द्धन करना है। यह तय करना सीखें।

मूल्यों का पाठ बना देना ही यथेष्ट नहीं है। शैक्षिक प्रक्रिया में भाग लेकर ही इनका विकास सम्भव है। विषय शिक्षक के दौरान भी विशेषकर साहित्य के माध्यम से नाटक और कविता के माध्यम से मूल्यों की समझ ज्यादा प्रभावकारी तरीके से विकसित

12.11 मूल्य हास या विघटन के कारक

मूल्यों के हास या विघटन के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं -

1. विकासवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण आध्यात्मिकता एवं आस्था की भावना का क्रमशः क्षीण होना।
2. आधुनिक दर्शन एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में मार्क्सवाद, व्यक्तिवाद, अस्तित्ववाद, फ्रायडवाद, भौतिकवाद आदि का प्रचार-प्रसार होना।
3. तर्क एवं बौद्धिकता का आधिक्य होना।
4. औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं जनसंख्या-विस्फोट का होना।
5. कृत्रिम यौनाचार को बढ़ावा देने वाले वैज्ञानिक उपकरणों एवं पद्धतियों का आविष्कार होना।
6. राष्ट्र के कर्णधारों की करनी एवं कथनी में अन्तर साथ ही उनमें मानवीय आदर्शों का अभाव होना।
7. सामाजिक-राजनीतिक जीवन में व्याप्त विघटनकारी प्रवृत्तियों का हावी होना।
8. असुरक्षा की भावना का बढ़ना।
9. समाज में सरोकारहीनता का बढ़ना। इसके कारण हमसे क्या मतलब हमें इससे क्या लेना देना आदि मनोवृत्तियाँ प्रबल रूप धारण कर रही हैं। ये प्रवृत्तियाँ जीवन मूल्यों के हास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की हैं।
10. समाज में असंयमयुक्त भोगवृत्ति का बढ़ना तथा उचितानुचित का विचार न करना। वस्तुतः किसी भी साधन से साध्य की प्राप्ति के प्रयास मूल्यों के हास के महत्वपूर्ण कारण हैं।

उपर्युक्त कारकों के फलस्वरूप मनुष्य के आचरण में जो गिरावट आई है उसने सभी प्रवृद्ध विचारकों को चिन्तित कर दिया है। देश के प्रायः सभी राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक और शैक्षिक मंचों से जीवन मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित करने की मांग की जा रही है। इनके प्रतिष्ठापन के लिए मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता को महसूस किया गया है। इसी कारण नई शिक्षा नीति में मूल्यों के गिरते स्तर पर चिन्ता करते हुए मूल्यपरक शिक्षा पर बल दिया गया। वैज्ञानिक दृष्टिकोण, लोकतांत्रिक,

चारित्रिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को छात्रों के मन में बैठाना नई शिक्षा नीति के लक्ष्यों में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

बोध प्रश्न -

टिप्पणी-

क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्र.9 समाज के प्राथमिक समूह के रूप में परिवार समाजीकरण के द्वारा मूल्यों की शिक्षा प्रदान करता है? पुष्टि कीजिए।

उ. -----

प्र.10 परिवार, विद्यालय तथा समाज किस प्रकार प्रभावी मूल्य शिक्षा प्रदान करने में सहायक होते हैं लिखिये?

उ. -----

प्र.11 मूल्य हास के लिए उत्तरदायी कारकों को स्पष्ट कीजिए।

उ. -----

विद्यालय पाठ्यक्रम और नैतिक शिक्षा

भाषा

- कविताएं, नाटक, गद्य की अन्य विधाएं, कहानियाँ आदि नैतिक शिक्षण के लिए सक्षम हैं।

- साहित्य सौन्दर्य बोध के अतिरिक्त शब्दों, विचारों और कार्यों में उत्कृष्टता भी लाता है।
- भाषा वैयक्तिक विकास के साथ सामाजिक विकास में भी योग देती है।
- भाषा बालक के सामाजिक, संवेगात्मक और ज्ञानात्मक विकास में योग देती है।

पर्यावरण विज्ञान

- विज्ञान का लक्ष्य सत्य की खोज है।
- पर्यावरण विज्ञान से प्राकृतिक विश्व का ज्ञान प्राप्त होता है।
- अप्रत्यक्ष रूप से नैतिक मूल्यों की शिक्षा मिलती है।

गणित

- गणित से सोचने, विवेक जाग्रत करने, विश्लेषण करने और तार्किक विचार करने की शक्ति जाग्रत की जा सकती है।
- गणित से मानवीय कौशल में वृद्धि होती है।
- संक्षिप्तता, परिशुद्धता और विवेक शक्ति जाग्रत की जा सकती है।

सामाजिक विज्ञान

- सामाजिक विज्ञानों-इतिहास, नागरिक शास्त्र और अर्थशास्त्र आदि के द्वारा नैतिक शिक्षा। इतिहास का अध्यापक कई गुण जैसे सत्य, ईमानदारी, साहस, स्वामिभक्ति, देशभक्ति और आत्म बलिदान जाग्रत कर सकता है।
- सांस्कृतिक विरासत के साथ अखिल विश्व के प्रति प्रशंसा भाव।
- अतीत को वर्तमान से और वर्तमान को अतीत से जोड़ा जा सकता है।

कला शिक्षा

- सौन्दर्यबोध की शिक्षा

स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा

- मन का संतुलित विकास
- अप्रत्यक्ष रूप से नैतिक शिक्षा।

सह-पाठ्य गतिविधियाँ और नैतिक शिक्षा

- भ्रमण, त्यौहारों के समारोह, जयंतियाँ (राष्ट्रीय धार्मिक) विद्वानों की वार्ताएं, शिविरों के सामुदायिक जीवन नैतिक शिक्षा के मुख्य स्रोत हैं।

- विद्यालय प्रार्थना में महापुरुषों के नैतिक प्रसंगों को सुनाकर भावनाओं को छुआ जा सकता है।
- समाज सेवा के कार्यक्रमों से ईमानदारी, अनुशासन और सामाजिक दायित्व की भावना का विकास किया जाय।

12.12 सारांश

मूल्यपरक शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष औपचारिक और अनौपचारिक रूप से शाश्वत और सामयिक मूल्यों की शिक्षा प्रदान करना है। मूल्य परक शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति के समग्र और संतुलित व्यक्तित्व विकास जिससे वह नैतिक निर्णय की क्षमता जाग्रत कर सके। मूल्य अखण्ड, अभेद और अनिर्वचनीय है जो न भौतिक है न मानसिक, न अनुभवगम्य।

स्वतंत्रयोत्तरकाल में विभिन्न आयोगों ने मूल्य शिक्षा पर बल दिया। विश्वविद्यालय आयोग (1948) ने अध्यात्मक परक नैतिक शिक्षा पर बल दिया। माध्यमिक आयोग (1952) ने धार्मिक और नैतिक शिक्षा पर बल दिया। शिक्षा आयोग (1964-66) ने भी नैतिक शिक्षा देने पर विशेष बल दिया।

नैतिक शिक्षा का दार्शनिक आधार भी है। आदर्शवाद ने मूल्यपरक शिक्षा की स्थापना पर विशेष बल दिया। यथार्थवाद ने वास्तविकता के धरातल पर नैतिक शिक्षा पर बल दिया। प्रकृतिवाद ने नैतिक शिक्षा के वैज्ञानिक पक्ष का उदधाटन किया और प्रयोजनवाद नैतिक शिक्षा में उन नैतिक मूल्यों को महत्व देता है। जो उपयोगितावाद की तुलना पर खरे उतरे।

नैतिक शिक्षा प्रदान करने विभिन्न अभिकरण हैं। परिवार शिशु की प्रथम पाठशाला है। नैतिक मूल्यों का संरक्षण संप्रेषण और सृजन करना परिवार का प्रथम दायित्व है। विद्यालय में विभिन्न क्रियाओं के माध्यम से नैतिक शिक्षा प्रदान की जा सकती है।

12.13 अभ्यास कार्य

1. मूल्य आधारित शिक्षा से क्या समझते हैं? मूल्य आधारित जीवन की महत्ता पर टिप्पणी लिखें।
2. मानव जीवन में मानव मूल्यों की आवश्यकता लिखें।
3. स्वतंत्रता के बाद मूल्य शिक्षा के लिये क्या-क्या प्रयास किये गये हैं?
4. आदर्शवाद में किन-किन नैतिक मूल्यों पर बल दिया गया है?

5. नैतिक शिक्षा प्रदान करने में परिवार की भूमिका स्पष्ट करें।
6. विद्यालय में विभिन्न पाठ्यक्रम के माध्यम से नैतिक शिक्षा किस प्रकार से प्रदान कर सकते हैं?

12.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. मूल्यपरक शिक्षा के द्वारा बालकों में जिन गुणों का विकास होगा, उसे लिखें।
2. वर्तमान युग की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, वैयक्तिक आदि क्षेत्रों में व्यक्ति की महत्ता बताइये।
3. मूल्य की अवधारणा को अपने शब्दों में व्यक्त करें।
4. विभिन्न व्यक्तियों ने मूल्य को किस प्रकार परिभाषित किया है, लिखें।
5. माध्यमिक शिक्षा आयोग ने छात्रों में जिन पाठ्यक्रम व सहपाठ्यक्रम गतिविधियों द्वारा धार्मिक व नैतिक मूल्यों के विकास हेतु सुझाव दिये हैं, उसे लिखें।
6. मूल्यों के विकास हेतु शिक्षा आयोग ने जिन औपचारिक व अनौपचारिक साधनों को बताया है, उन्हें लिखें।
7. नैतिक शिक्षा के विविध दार्शनिक आधार आदर्शवादी, यथार्थवाद, प्रकृतिवादी एवं प्रयोजनवादी है।
8. प्रयोजनवादी शाश्वत और पारस्परिक मूल्यों की अपेक्षा सामायिक, प्रगतिशील एवं प्रजातांत्रिक मूल्यों में विश्वास करता है।
9. मूल्यपरक शिक्षा प्रदान करने में परिवार की भूमिका बताइये।
10. परिवार विद्यालय एवं समाज होने वाली विभिन्न गतिविधियों को बताते हुये स्पष्ट कीजिए कि वे व्यक्ति के भावात्मक विकास में किस प्रकार योगदान देते हैं।
11. समकालीन परिस्थिति में मूल्य विघटन से सम्बन्धित कारकों को सूचीबद्ध कीजिये।

12.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Pandey, V.C. (Ed.) (2005). Value Education and Education for Human Rights, Delhi : Isha Books.
2. Venkataiah, N. (Ed.) (1998). Value Education, New Delhi: APH Publishing Corporation.



उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

MAED-06 (N)
शिक्षा में समसामयिक
मुद्दे

खण्ड

4

सामयिक - शैक्षिक प्रत्यय ॥

कार्ड-13	5
स्वास्थ्य शिक्षा	
कार्ड-14	30
जनसंख्या शिक्षा	
कार्ड-15	52
पर्यावरण शिक्षा	
कार्ड-16	59
मान्ति शिक्षा	

MAED-09 शिक्षा में समसामयिक मुद्दे

खण्ड - 1 विचारणीय मुद्दे

- | | |
|--------|---------------------------------|
| इकाई 1 | प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण |
| इकाई 2 | पाठ्यक्रम विकास |
| इकाई 3 | सूचना एवं संचार-तकनीकी का उपयोग |
| इकाई 4 | गुणवत्ता उन्नयन |

खण्ड - 2 शैक्षिक प्रवृत्तियाँ

- | | |
|--------|------------------------------|
| इकाई 5 | गैर सरकारी संगठनों की भूमिका |
| इकाई 6 | मानवाधिकार |
| इकाई 7 | वैश्वीकरण |
| इकाई 8 | निजीकरण |

खण्ड - 3 सामयिक शैक्षिक प्रत्यय-1

- | | |
|---------|------------------|
| इकाई 9 | व्यवसायिक शिक्षा |
| इकाई 10 | अध्यापक शिक्षा |
| इकाई 11 | विशिष्ट शिक्षा |
| इकाई 12 | मूल्य शिक्षा |

खण्ड - 4 सामयिक शैक्षिक प्रत्यय - II

- | | |
|---------|------------------|
| इकाई 13 | स्वास्थ्य शिक्षा |
| इकाई 14 | जनसंख्या शिक्षा |
| इकाई 15 | पर्यावरण शिक्षा |
| इकाई 16 | शांति शिक्षा |

खण्ड परिचय-4 सामयिक - शैक्षिक प्रत्यय - ॥

इकाई-13 स्वास्थ्य केवल बीमारी या अंग विहीनता की अनुपस्थिति ही नहीं है, वरन् शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक कल्याण की पूर्ण दशा है। अतः शारीरिक स्वास्थ्य जीवन का वह गुण है जो व्यक्ति को अधिक सुखद ढंग से जीवित रहने तथा सर्वोत्तम रूप से सेवा करने के योग्य बनाता है। जिस देश के नवयुवक शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक रूप से स्वस्थ होंगे, वह राष्ट्र सदैव उन्नति के पथ पर अग्रसर रहेगा। शारीरिक स्वास्थ्य व्यक्तिगत जीवन के लिये आवश्यक ही नहीं है वरन् राष्ट्रीय जीवन के लिए भी आवश्यक है इस इकाई में शारीरिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्त महत्वपूर्ण पहलुओं का उल्लेख किया गया है जो मानव जीवन के लिये आवश्यक है।

इकाई-14 जनसंख्या का विस्फोट सम्पूर्ण विश्व के लिए एक चुनौती है। जिसके कारण मानवता का विध्वंस होता जा रहा है और अनेक समस्यायें अपने विकराल रूप में डी हो गयी है। इसलिये यह आवश्यक है कि जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के बारे में आपस में विचार-विमर्श करे और जनसंख्या नियंत्रण के प्रभावशाली तरीके अपनाये जायें इस इकाई में हम जनसंख्या शिक्षा के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं के बारे में चर्चा करेंगे।

इकाई-15 पर्यावरण शिक्षा अभिवृत्ति स्तर की शिक्षा है। यह ज्ञान को कण्ठस्थ करने के लिए बाध्य न करने उसकी अभिवृत्ति में विधायक-परिवर्तन लाने का प्रयास करती है ताकि जनमानस में पर्यावरण के प्रति जागरूकता विकसित हो सके, व्यक्ति समाज के प्रति अपने दायित्व का बोध कर अपने जीवन में पर्यावरण संरक्षण को अपना सके। यह पर्यावरण की हानि से बचाने के लिए भारतीय संस्कृति की गाँधीवादी विचारधारा का ही प्रतिबिम्ब है। यह शिक्षा मानव को उसकी मानवीयता का बोध कराती है। इससे व्यक्ति में अन्तर्राष्ट्रीय सदभाव या 'वसुधैव कुटुम्बकम्' भावना का उदय होगा विश्व-नागरिक स्वच्छ पर्यावरण में स्वस्थ रहकर विश्व-कल्याण के कार्य करेंगे।

इकाई-16 वर्तमान समय अभूतपूर्व हिंसा का दौर है। असहिष्णुता, कहरवाद, विवाद और अच्छी भाषा का प्रयोग न करना प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इस हेतु सभी के सामने नैतिकता, कल्याण और शान्ति की जरूरत है। युद्ध और हिंसा अत्यन्त प्रबल हो गयी है। वैश्विक, राष्ट्रीय और स्थानीय स्तर पर बढ़ती हुयी हिंसा को दूर करने के लिए ऐसे कार्यक्रमों एवं गतिविधियों की आवश्यकता है जो शान्ति स्थापित करने में सक्षम हो। आज स्कूलों में जो शिक्षा दी जाती है उससे सांकेतिक और वास्तविक हिंसा को बढ़ावा ही मिलता है। अतः इन परिस्थितियों में शिक्षा को पुनः परिभाषित करने की जरूरत है। स्कूली पाठ्यक्रम में शान्ति के लिए शिक्षा को प्राथमिकता मिलनी चाहिए क्योंकि शिक्षा के मूल्य के रूप में शान्ति, पाठ्यचर्या के सभी क्षेत्रों से जुड़ी हुयी है और उनमें निहित मूल्यों की पूरक है।

इकाई - 13 स्वास्थ्य शिक्षा

संरचना

- 13.1 प्रस्तावना
- 13.2 उद्देश्य
- 13.3 शारीरिक स्वास्थ्य का अर्थ
- 13.4 शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषतायें
- 13.5 स्वास्थ्य शिक्षा
- 13.6 स्वास्थ्य शिक्षा के उद्देश्य
- 13.7 विद्यालय स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम
- 13.8 विद्यालय में शारीरिक शिक्षा का कार्यक्रम
- 13.9 मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान
- 13.10 मानसिक स्वास्थ्य
- 13.11 मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषतायें
- 13.12 मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक की विशेषतायें
- 13.13 शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक
- 13.14 बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने के उपाय
- 13.15 बालकों की मानसिक अस्वस्थता के कारण
- 13.16 बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में शिक्षक की भूमिका
- 13.17 बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में पाठ्यक्रम की भूमिका
- 13.18 सारांश
- 13.19 अभ्यास कार्य
- 13.20 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 13.21 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.1 प्रस्तावना

स्वास्थ्य केवल बीमारी या अंग विहीनता की अनुपस्थिति ही नहीं है, वरन् शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक कल्याण की पूर्ण दशा है। अतः शारीरिक स्वास्थ्य

जीवन का वह गुण है जो व्यक्ति को अधिक सुखद ढंग से जीवित कहने तथा सर्वोत्तम रूप से सेवा करने के योग्य बनाता है। जिस देश के नवयुवक शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक रूप से स्वस्थ होंगे, वह राष्ट्र सदैव उन्नति के पथ पर अग्रसर रहेगा। शारीरिक स्वास्थ्य व्यक्तिगत जीवन के लिये आवश्यक ही नहीं है वरन् राष्ट्रीय जीवन के लिए भी आवश्यक है इस इकाई में शारीरिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्त महत्वपूर्ण पहलुओं का उल्लेख किया गया है जो मानव जीवन के लिये आवश्यक है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करके आप इस योग्य हो जायेंगे कि :-

- शारीरिक स्वास्थ्य के अर्थ से परिचित हो सकेंगे और उन परिस्थितियों की विवेचना कर सकेंगे जो शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं।
- स्वास्थ्य शिक्षा की संकल्पना समझ सकेंगे और स्वास्थ्य शिक्षा के उद्देश्यों की विवेचना कर सकेंगे।
- मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की संकल्पना, आवश्यकता तथा महत्ता से परिचित हो सकेंगे।
- बालकों तथा शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों की विवेचना कर सकेंगे।
- शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

13.3 शारीरिक स्वास्थ्य का अर्थ

अंग्रेजी शब्द Health शब्द 'स्वस्था' के लिए प्रयुक्त किया जाता था, जिसका अभिप्राय सुरक्षा तथा निरोगता से लिया जाता था। सामान्यतः स्वास्थ्य का अर्थ उस दशा से लगाया जाता है जिसके द्वारा शरीर के समस्त कार्य सुचारु रूप से सक्रियतापूर्वक सम्पन्न किये जाते हैं।

टैबर महोदय के आयुर्विज्ञान शब्दावली के अनुसार, "यह वह स्वस्थ दशा है जिससे शरीर और मस्तिष्क के समस्त कार्य सामान्य रूप से सक्रियता पूर्वक सम्पन्न होते हैं।"

डब्ल्यू० एच० ओ० के अनुसार, "स्वास्थ्य रोग या निर्बलता का अभाव नहीं है वरन् शारीरिक मानसिक तथा सामाजिक कल्याण की पूर्ण अवस्था है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि शारीरिक स्वास्थ्य में पर्याप्त भाषा में शारीरिक शक्ति, सक्रियता व चुस्ती तथा सहनशक्ति निहित है।

उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य का अर्थ - उत्तम आसन बनाये रखने वाला शरीर उत्तम स्वास्थ्य की सर्वप्रथम विशेषता है। अन्य विशेषताओं में शारीरिक ढाँचे का उत्तम विकास, जिसमें सीधी अस्थियाँ तथा भुजाएँ एवं सीमित जोड़, चौड़ी तथा सपाट छाती, जिसका समुचित मात्रा में विस्तार किया जा सके, सुविकसित श्रेणी, सुविकसित तथा सुसंगठित जबड़े एवं मजबूत चिकने व स्वस्थ दाँत, पर्याप्त वसायुक्त माँसपेशियाँ, चिकने तथा चमकीले केश आदि सम्मिलित हैं, साथ ही आँखें कान्तिमय तथा उनके नीचे काले वृत्त न हों।

अस्पष्ट विशेषताओं में पाचन, रक्त संचरण, श्वासोच्छ्वास, निष्कासन एवं ग्रन्थितंत्र आदि का समुचित रूप से कार्य करना तथा संक्रामक रोगों के प्रति अवरोध शक्ति होना सम्मिलित है।

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त अच्छी भूख लगना, भोजन में स्वाद आना, किसी भी कार्य को संतोषजनक ढंग से करने की योग्यता रखना तथा भावनात्मक स्थिरता होना ये सभी बातें उत्तक स्वास्थ्य दशाओं को प्रकट करती हैं।

13.4 शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषतायें

एक शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में निम्न विशेषतायें पायी जाती हैं -

1. कल्याण की भावना
2. कुशलता तथा उत्साह के साथ कार्य करने की योग्यता
3. स्फूर्ति
4. आत्मविश्वास तथा आत्मनियन्त्रण
5. रोग का अभाव
6. अनावश्यक चिन्ता से मुक्त
7. साहस
8. दूसरों के साथ मिलकर कार्य करने की योग्यता

बोध प्रश्न -

- (क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान पर प्रश्नों का उत्तर लिखिए।
- (ख) उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्र.1 उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य की दशायेँ लिखिये।

उ.

प्र.2 शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषतायेँ लिखें।

उ.

13.5 स्वास्थ्य शिक्षा

स्वास्थ्य जीवनयापन के नियमों का छात्रों को ज्ञान कराने का एक ढंग स्वास्थ्य शिक्षा है। विभिन्न विद्वानों ने इसको विभिन्न दृष्टिकोणों से परिभाषित किया है। डॉ० थामस डी० वुड के अनुसार “स्वास्थ्य-शिक्षा उन अनुभवों का योग है जो व्यक्ति, समुदाय तथा प्रजाति के स्वास्थ्य से संबंधित आदतों वृत्तियों तथा ज्ञान को प्रभावित करते हैं”।

स्वास्थ्य शिक्षा का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसके अन्तर्गत बालकों के स्वास्थ्य का संरक्षण, उनके स्वास्थ्य में उत्पन्न विभिन्न दोषों एवं बीमारियों की खोज तथा उनका निराकरण एवं उन्हें स्वास्थ्य की वृद्धि के लिये उन्हें स्वास्थ्य संबंधी नियमों आदि से अवगत कराना निहित है। स्वास्थ्य संरक्षण के लिए उपयुक्त वातावरण की स्थापना एवं संक्रामक रोगों पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है। उपयुक्त वातावरण की स्थापना के लिए विद्यालय भवन की स्थिति, शुद्ध वायु एवं प्रकाश की व्यवस्था एवं शारीरिक शिक्षा के उचित प्रबंध पर ध्यान देना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त बालकों की स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताएं उचित डाक्टरी निरीक्षण, स्वास्थ्य संबंधी नियम, शारीरिक अंगों की बनावट एवं उनकी क्रियाप्रणाली आदि सम्मिलित हैं।

13.6 स्वास्थ्य शिक्षा के उद्देश्य

स्वास्थ्य शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं -

1. छात्र किस प्रकार स्वस्थ रह सकते हैं।
2. छात्र किस प्रकार स्वास्थ्य के स्तर को उच्च बना सकते हैं।

3. छात्रों को दुर्घटनाओं एवं विभिन्न बीमारियों के कारण एवं उनके दूर करने के उपायों के विषय में अवगत कराना।
4. शिक्षकों तथा विद्यालय के अन्य कर्मचारियों के स्वास्थ्य को भी उन्नत बनाने में सहायता देना।

13.7 विद्यालय स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम

अमरीका की विद्यालय स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम की समिति ने स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रमों को इन शब्दों में परिभाषित किया है - "स्वास्थ्य सेवाएँ स्वस्थ जीवनयापन तथा स्वास्थ्य शिक्षा आदि विद्यालय प्रक्रियाएँ, जो बालकों तथा विद्यालय अधिकारियों के स्वास्थ्य की स्थापना तथा उन्नति के लिए योगदान देती हैं, वे विद्यालय स्वास्थ्य कार्यक्रम का निर्माण करती हैं।"

इस प्रकार विद्यालय स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रमों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

1. **स्वास्थ्य सेवाएँ** - विद्यालय का एक महत्वपूर्ण कर्तव्य छात्रों को समुचित स्वास्थ्य-सेवाएँ प्रदान करना है। स्वास्थ्य सेवा के अन्तर्गत वे सभी प्रक्रियाएँ निहित हैं जो बालक के स्वास्थ्य स्तर को निर्धारित करती हैं और स्वास्थ्य की स्थापना एवं उसके संरक्षण में सहयोग प्रदान करती हैं। साथ ही उसके दोषों से अभिभावकों को अवगत कराती हैं और बीमारियों को रोकती तथा दोषों को दूर करती हैं। व्यावहारिक रूप में स्वास्थ्य सेवाओं में डॉक्टरी निरीक्षण तथा अनुवर्ती कार्य, स्वास्थ्य-संबंधी आवश्यकताओं की जानकारी तथा इस संबंध में सूचनाओं को लेखबद्ध करना, बालकों के विषय में शिक्षकों की रिपोर्ट, विद्यालय में भोजन एवं जल तथा मूत्रालय एवं शौचालय की व्यवस्था निहित है।
2. **स्वास्थ्य जीवनयापन** - विद्यालय में स्वास्थ्य शिक्षा के कार्यक्रम का दूसरा महत्वपूर्ण अंग स्वस्थ जीवनयापन है। एक अच्छे विद्यालय का महत्वपूर्ण दायित्व है कि वह एक स्वस्थ एवं स्वच्छ भौतिक वातावरण प्रदान करे जो पूर्णतः स्वास्थ्यप्रद हो। विद्यालय की स्थिति शोरगुल, धुएँ, सीलन आदि अस्वास्थ्यप्रद दशाओं से मुक्ति होनी चाहिए। विद्यालय भवन कक्ष, खेल के मैदान आदि स्वच्छ, आकर्षक तथा बालकों की अभिवृद्धि एवं विकास हेतु उपयुक्त हों। कक्षाओं में शुद्ध वायु प्रकाश आदि की उपयुक्त व्यवस्था हो। इसके अतिरिक्त विद्यालय का फर्नीचर बालकों की आयु कद आदि के अनुसार हो।
3. **स्वास्थ्य संबंधी शिक्षा** - विद्यालय का यह भी उत्तरदायित्व है कि वह प्रत्येक बालक को उत्तम स्वास्थ्य स्थापित करने की आवश्यकता से अवगत कराये। शारीरिक विज्ञान तथा स्वास्थ्य विज्ञान में प्रत्यक्ष रूप से स्वास्थ्य संबंधी निर्देश प्रदान किये जा सकते

हैं। स्वास्थ्य निर्देशन के पाठ्यक्रम में भोजन, जलवायु, व्यायाम, मनोरंजन, नींद, शरीर के अंग एवं उनकी क्रिया प्रणाली, असामान्य दशाओं एवं बुरी आदतों का स्वास्थ्य पर प्रभाव, बीमारियों के कारण, लक्षण एवं उन्हें दूर करने के उपाय, प्राथमिक सहायता आदि को स्थान मिलना चाहिए।

स्वास्थ्य शिक्षा प्रायः व्याख्यान या भाषण देकर एवं विभिन्न प्रकार की मुद्रित सामग्री का प्रयोग करके प्रदान की जाती है। परन्तु रेडियो कार्यक्रम का उपयोग एवं नाटकों का आयोजन तथा फिल्म दिखाकर, नुमाइश लगाकर एवं स्वास्थ्य सप्ताह मनाकर स्वास्थ्य शिक्षा को अधिक रुचिकर बनाया जा सकता है।

स्वास्थ्य शिक्षा को प्रदान करने का महत्वपूर्ण साधन वातावरण भी है। अतः इसको प्रदान करने के लिए घर विद्यालय एवं समाज में स्वास्थ्यप्रद वातावरण का निर्माण किया जाये तो उद्देश्य की प्राप्ति सरल हो सकती है।

शारीरिक शिक्षा का अर्थ - प्रायः शारीरिक शिक्षा का अर्थ मानव शरीर के शारीरिक अंगों के विकास से लिया जाता है। परन्तु यह संकुचित अर्थ है। इसमें केवल शारीरिक शिक्षा को ही शरीर-निर्माण तक सीमित रखा गया है। परन्तु शारीरिक शिक्षा केवल शरीर-निर्माण तक सीमित नहीं है वरन् यह उत्तम नागरिकता या स्वास्थ्य की उन्नति का साधन है। यहाँ स्वास्थ्य का अर्थ शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य से है। वस्तुतः शारीरिक शिक्षा, शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया का पहलू है जो पेशीय क्रियाओं एवं उनसे संबंधित प्रतिक्रियाओं तथा व्यक्ति में इन प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों से संबंधित है।

बोध प्रश्न -

क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान पर प्रश्नों का उत्तर लिखिए।

ख) उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्र.3 स्वास्थ्य शिक्षा से क्या समझते हैं?

उ. -----

प्र.4 स्वास्थ्य शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य लिखें।

उ. -----

प्र.5 शारीरिक शिक्षा तथा स्वास्थ्य शिक्षा में प्रमुख अन्तर लिखें।

उ.

13.8 विद्यालय में शारीरिक शिक्षा का कार्यक्रम

विद्यालय में शारीरिक स्वास्थ्य से संबंधित कार्यक्रम के लिए विभिन्न क्रियाओं का चयन करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

1. विकास के विभिन्न स्तर पर बालकों की जन्मजात विशेषताएं एवं रुचियाँ
2. बालकों की शारीरिक दशायें।
3. लिंगीय विभिन्नताएँ
4. शिक्षकों का कार्यभार
5. स्वास्थ्य संबंधी तथ्य
6. खेल के अनुसार स्थान की उपलब्धि
7. साजसज्जा की उपलब्धि
8. समय की उपलब्धि
9. जलवायु तथा भौगोलिक परिस्थितियाँ

उक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर विभिन्न स्तरों के बालकों के लिए शारीरिक स्वास्थ्य से संबंधित निम्न कार्यक्रम तैयार किया जा सकता है।

पूर्व-प्राथमिक स्कूल के बच्चों के लिये कार्यक्रम - इस स्तर पर 3 से 5 वर्ष तक के बच्चे होते हैं। इस स्तर के बच्चों की प्रमुख विशेषताएं एवं आवश्यकताएँ इस प्रकार हैं - सक्रिय-जिज्ञासा, पेशीय व्यायाम के लिए उत्सुकता, अनुकरण करने की प्रबल

प्रवृत्ति, अधिकतम वैयक्तिकता, स्वतन्त्रता, पीछे करने एवं करवाने तथा ऊपर नीचे चढ़ने उतरने में रूचि, लय तथा गति से प्रेम, चित्त की एकाग्रता का अभाव। इन विशेषताओं एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शारीरिक स्वास्थ्य के कार्यक्रम में संगीत, लय, नृत्य चढ़ने का संतुलन करने से सम्बन्धित क्रियाएँ, अनुकरण से संबंधित क्रियाओं आदि को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाये।

जूनियर स्कूल के बच्चों के लिये कार्यक्रम - इस स्तर पर 6-11 वर्ष तक के बच्चे होते हैं। इन बच्चों की प्रमुख विशेषताएँ हैं - मन्द गति का विकास, लड़ने-झगड़ने की प्रवृत्ति, जिज्ञासा तथा अनुकर की भावना, धैर्य का अभाव, समूहों तथा क्लबों का प्रारम्भ, बालिकाओं की लयपूर्ण क्रियाओं में अधिक रूचि। इस स्तर के कार्यक्रम में कहानियों से संबंधित नाटक, लयपूर्ण क्रियाएँ, शिकार से संबंधित खेल, नाटकीय कार्य, रिले दौड़, तैरना, गेदों के खेल-फुटबाल, बेसबॉल बॉस्केट बाल आदि को स्थान प्रदान किया जाये।

जूनियर हाई स्कूल के छात्रों के लिये कार्यक्रम - इस स्तर पर 11-14 वर्ष तक के बच्चे होते हैं। इन बच्चों की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं - तीव्र गति से विकास, फक्कड़पन, चित्त की एकाग्रता की वृद्धि, समूह क्लब, टीम आदि के प्रति निष्ठा की भावना, एक दूसरे के प्रति लिंगीय आकर्षण, नेतृत्व-पूजा, प्रौढ़ों में दृष्टिकोणों को समझने का अभाव, पैतृक नियन्त्रण के लिये धैर्य का अभाव, सामाजिक संबंधों में अधिक रूचि, बालकों की अपेक्षा बालिकाएँ अधिक परिपक्व, बालिकाओं में लोकनृत्य तथा नाटकीय नृत्य के लिए अधिक रूचि। इस स्तर के लिए शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम में संगीत खेल - कूद क्लबों का संगठन, लय तथा नृत्य आदि पर बल दिया गया।

सीनियर स्तर के छात्रों के लिये कार्यक्रम - इस स्तर पर 14-18 वर्ष तक के होते हैं। इस स्तर के छात्रों में नेतृत्व, पूजा, प्रतिस्पर्द्धात्मक भावना, आत्मविश्वास शक्ति, धैर्य तथा सामंजस्य में पर्याप्त विकास, विवेक, एकाग्रता का अधिक विकास, निष्ठा एवं साहस आदि विशेषताएँ पायी जाती हैं। इनको ध्यान में रखकर इस स्तर के कार्यक्रम में टीम, खेल, लयपूर्ण क्रियाओं, तैरना, वैयक्तिक क्रियाओं, संगठित खेल-कूद, जिम्नेस्टिक्स, प्रतिस्पर्द्धात्मक खेलों आदि को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाये।

बोध प्रश्न -

- क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान पर प्रश्नों का उत्तर लिखिए।
- ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्र.6 विद्यालय में शारीरिक शिक्षा का कार्यक्रम बनाते समय किन-किन बातों का ध्यान

रखना चाहिए।

स्वास्थ्य शिक्षा

उ. _____

13.9 मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो मानसिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने की प्रक्रिया तथा मानसिक रोगों से बचाने का काम करता है। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की शुरुआत 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मानी जाती है। जब 1908 में Clifford Beers ने "A Mind that found Itself" नामक पुस्तक लिखी। Beers एक बात मानसिक रूप से अस्वस्थ हो गये थे और स्वस्थ होने के बाद इन्होंने अपने मानसिक रोग सम्बन्धी अनुभवों तथा उपचार को उपयुक्त पुस्तक में लिखा। 1909 में Beers तथा Adolf Meyer (एक प्रमुख मनोविश्लेषवादी) ने National Society on Mental Hygiene की स्थापना की जो कि बाद में International Committee for Mental Hygiene की तरह काम करने लगी।

क्लीन - "मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो मन के स्वास्थ्य तथा कुशलता की पहचान बनाये रखने का काम करता है।"

शेफर एवं शोबर - "मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान से तात्पर्य उन प्रक्रियाओं से है जिससे कुसमायोजित व्यक्तियों को सामान्य बनाया जा सके तथा समायोजनों का निवारण करना है। अतः मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान एक व्यावहारिक कला है जो प्रयोगात्मक खोजों तथा समायोजन के मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित हैं।"

13.10 मानसिक स्वास्थ्य

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मानसिकता का विकास करना है और यही उद्देश्य शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का भी होता है। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान तथा मानसिक स्वास्थ्य को साधन एवं लक्ष्य के रूप में समझ सकते हैं। मानसिक स्वास्थ्य लक्ष्य है और मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान इस लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि मानसिक स्वास्थ्य एक तरफ का समायोजी व्यवहार है जो व्यक्ति को जिंदगी के सभी प्रमुख क्षेत्रों सांवेगिक, सामाजिक, शैक्षिक आदि में सफलतापूर्वक

समायोजन करने में मदद करता है।

स्ट्रेंज ने मानसिक स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुये कहा है - "मानसिक स्वास्थ्य एक ऐसे सीखे गए व्यवहार के वर्णन के अलावा कुछ नहीं हैं जो सामाजिक रूप से समायोजी होता है और जो व्यक्ति को जिंदगी के साथ पर्याप्त रूप से अनुकूलन में मदद करता है।"

कार्ल मेनिनगी (1954)- "मानसिक स्वास्थ्य अधिकतम खुशी तथा प्रभावशीलता के साथ वातावरण एवं उसके प्रत्येक दूसरे व्यक्तियों के साथ मानव का समायोजन है यह एक संतुलित मनोदशा, सतर्क बुद्धि, सामाजिक रूप से मान्य व्यवहार तथा खुशमिजाज बनाएँ रखने की क्षमता है।"

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि मानसिक स्वास्थ्य मूलतः वातावरण के विभिन्न पहलुओं के साथ संतोषजनक ढंग से समायोजन करने की क्षमता होती है।

13.11 मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषताएँ

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने, जैसे आलपोर्ट (Allport) विटेकर (Whiltaker 1979) ने मानसिक रूप से स्वस्थ कुछ व्यक्तियों की कुछ विशेषताओं का वर्णन किया है। इन विशेषताओं में निम्नांकित विशेषताएँ प्रमुख हैं -

1. **आत्मज्ञान (Self Knowledge)** - मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उसे अपनी प्रेरणा, इच्छा, भाव, आकांक्षाओं आदि का पूर्ण ज्ञान होता है। वह यह पूर्णतः समझता है कि वह क्या कर रहा है, उसकी आकांक्षाएँ क्या हैं? आदि।
2. **आत्म मूल्यांकन (Self Evaluation)** - मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति आसानी से अपने गुण-दोष की परख कर लेता है। वह अपने प्रत्येक व्यवहार का तटस्थ होकर अध्ययन करता है तथा अपने व्यवहार की परिसीमाओं की परख करता है।
3. **आत्मश्रद्धा (Self Esteem)** - मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में आत्म-श्रद्धा आत्मबल तथा अपने भावों को स्वीकार करते हुये कार्य करने की क्षमता होती है।
4. **सुरक्षा का भाव (Feeling of Security)** - मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में यह भावना तीव्र होती है कि वह समाज का स्वीकृत सदस्य है तथा लोग उसके भाव का आदर करते हैं। वह दूसरों के साथ निडर होकर अन्तः क्रिया करता है तथा खुलकर हँसी-मजाक में भाग लेता है। वह अपने पर समूह के दबाव पड़ने के बावजूद अपनी इच्छाओं को दमित नहीं करने की कोशिश करता है।

5. **संतोषजनक संबंध बनाए रखने की क्षमता (Ability to form Satisfying Relationship)** - मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की एक विशेषता यह है कि वह दूसरों के साथ संतोषजनक संबंध बनाए रखने में सक्षम होता है।
6. **स्पष्ट जीवन लक्ष्य (Clear Life Goal)** - मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति का एक स्पष्ट जीवन लक्ष्य होता है। वह जीवन लक्ष्य को निर्धारित कर उसे प्राप्त करने का हर संभव प्रयास करता है। अपने जीवन लक्ष्य का निर्धारण करने में अपनी क्षमताओं, योग्यताओं एवं दुर्बलताओं को मद्देनजर रखता है।
7. **वास्तविक प्रत्यक्षण (Realistic Perception)**- मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति किसी वस्तु, घटना या चीज का प्रत्यक्षण वस्तुनिष्ठ ढंग से करते हैं। वे इन चीजों का प्रत्यक्षण ठीक ढंग से करते हैं जो हकीकत है।
8. **तनाव एवं अतिसंवेदनशीलता की अनुपस्थिति (Absence of Tension and Hypersensitivity)** - मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति या छात्र में मानसिक तनाव उत्पन्न नहीं हो पाता है और यदि कभी हुआ तो वह तुरंत ही नियंत्रित कर लिया जाता है। ऐसे व्यक्ति दूसरों द्वारा किए गये प्रशंसा या आलोचना का प्रभाव अपने ऊपर अधिक नहीं पड़ने देते।
9. **अच्छा शारीरिक स्वास्थ्य (Good Physical Health)** - मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की एक विशेषता यह भी होती है कि इनका शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा एवं आकर्षक होता है।
10. **उत्पादी एवं खुश रहने की क्षमता (Ability to be Productive and Happy)**- मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति या छात्र में मानसिक तनाव उत्पन्न नहीं हो पाता है और यदि कभी हुआ तो वह तुरंत ही नियंत्रित कर लिया जाता है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति क्षमता को उत्पादी कार्य में लगाते हैं तथा उससे वे काफी खुश रहते हैं। वह ऐसे कार्य में अच्छा उत्साह एवं मनोबल दिखाते हैं और अपने को खुशमिजाज साबित करते हैं।

बोध प्रश्न -

- क) नीचे दिये गये प्रश्नों के उत्तर रिक्त स्थानों पर लिखें।
- ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।
- प्र.7 मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान किसे कहते हैं?
- उ. -----

प्र.8 मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषतायें लिखिए।

उ.

13.12 मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक की विशेषताएँ

मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक की विशेषताओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है -

1. व्यक्तिगत विशेषताएँ
2. व्यावसायिक विशेषताएँ

(क) व्यक्तिगत विशेषताएँ - व्यक्तिगत विशेषताओं से तात्पर्य उन विशेषताओं से होता है जो शिक्षक के व्यक्तित्व से संबंधित होती है। ऐसी व्यक्तिगत विशेषतायें निम्नांकित हैं-

1. छात्रों एवं शिक्षण में अभिरूचि (Interest in Students & Teaching) - मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक की सबसे बड़ी विशेषता है कि उनकी अभिरूचि छात्रों, पुस्तकों, अध्ययन-अध्यापन में अन्य चीजों के अलावा अधिक होती है। वे छात्रों को हमेशा उचित सलाह देकर उन्हें प्रगति के पथ पर ले जाने के लिये तत्पर होते हैं।
2. प्रजातंत्रात्मक मनोवृत्ति (Democratic Attitude) - मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक की मनोवृत्ति अपने छात्रों एवं सहकर्मियों के प्रति अधिक प्रजातंत्रात्मक होती है। वे किसी समस्या का हल लोगों से मिल-जुलकर आपस में विचार विमर्श करके कर लेने को अधिक प्रेरित रहते हैं।
3. निष्पक्षता एवं स्वस्थ मनोवृत्ति (Impartiality and Healthy Attitude) - मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक अपने छात्रों एवं सहकर्मियों के साथ किसी प्रकार का पक्षपात न दिखाकर निष्पक्ष भाव से व्यवहार करते हैं। वे जातीयता, तरफदारी, साम्प्रदायिकता के भाव से अपने को ऊपर रखते हैं।
4. गलतियों एवं त्रुटियों को सहर्ष स्वीकार कला (To Accept his & faults

and errors Heartily) - मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक अपनी गलतियों या किसी तरह की भूल को न तो छिपाते हैं और न ही उसके लिये पर्याप्त तर्काधार देकर उसे सही ठहराने की कोशिश करते हैं। वे निःसंकोच ऐसी गलतियों को स्वीकार कर उसका उपयुक्त निदान ढूँढ लेते हैं।

5. **विनोद का भाव (Sense of Humor)** - मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक हास्य विनोद में अधिक रूचि रखते हैं। वे गम्भीर मुद्रा पंसद नहीं करते हैं।

6. **पाठोत्तर क्रियाओं में अभिरूचि (Interests in Extra-Curricular Activities)**- मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक हास्य पाठ्यक्रमों में अभिरूचि रखने के साथ ही पाठोत्तर क्रियाओं जैसे खेलकूद, नाटक, शैक्षिक भ्रमण, वाद-विवाद में भी अधिक रूचि रखते हैं।

7. **सतर्कता एवं ध्यानमग्नता (Alertness and Attentiveness)**- मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक कक्षा में छात्रों के प्रत्येक व्यवहार पर काफी ध्यान देते हैं तथा मानसिक रूप से काफी सतर्क होकर अध्यापन करते हैं।

8. **सहनशीलता एवं धैर्य (Tolerance and Patience)**- मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक कक्षा में छात्रों के प्रत्येक व्यवहार पर काफी ध्यान देते हैं वे उनकी बातों को सुनने तथा उसे समझने में पर्याप्त सहनशीलता एवं धैर्य दिखाते हैं, वे उनकी बातों को तब तक सुनने का धैर्य रखते हैं, जबतक वे उनकी समस्या का समाधान न कर दें।

9. **आत्म मूल्यांकन (Self Evaluation)** - मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक की एक विशेषता यह होती है कि उनमें अपने गुणों एवं दोषों की परख करने तथा अपने दोष की पहचान कर उसके निराकरण का पर्याप्त उपाय करते हैं।

10. **अच्छा शिष्टाचार (Good Manners)** - मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक का व्यक्तित्व तो आकर्षक होता ही है, साथ ही साथ उसमें अपने छात्रों एवं सहकर्मियों के प्रति शिष्टाचार की भी भावना काफी अधिक होती है।

11. **स्पष्ट सिद्धान्त मानना (To have a Clear Philosophy)** - मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक अपने जीवन को एक स्पष्ट सिद्धान्त के अनुसार व्यतीत करते हैं। और छात्रों को भी ऐसा ही करने का सुझाव देते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक की कुछ स्पष्ट व्यक्तिगत विशेषताएँ हैं जिनके आधार पर उन्हें अन्य दूसरे तरह के शिक्षकों से भिन्न किया जा सकता है।

(ख) व्यावसायिक विशेषताएँ -

मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक की व्यावसायिक विशेषताएँ निम्न हैं -

1. **उत्तरदायित्व की चेतना (Sense of Responsibility)** - मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक अपने व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के प्रति काफी सचेत रहते हैं। वे अपने दायित्व को ठीक ढंग से निभाने की कोशिश करते हैं। वे समय पर पाठ्यक्रमों को पढ़ाना तथा उसे समय के अनुसार समाप्त कर देना अपना प्रमुख उत्तरदायित्व समझते हैं।
2. **विषयवस्तु की प्रवीणता (Expertize in subject manner)** - मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षकों में अध्यापन कार्य के लिये विषय के पूर्ण ज्ञाता होते हैं पढ़ाई जाने वाली विषयवस्तु का उन्हें पूरा ज्ञान होता है तथा उस पर उन्हें पूर्ण नियंत्रण होता है।
3. **अध्यापन की अभिक्षमता (Aptitude for teaching)** - मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षकों में अध्यापन कार्य के लिए विशेष अभिक्षमता होती है। वे अपनी ऐसे अन्तःशक्तियों की पहचान कर उसका पूरा फायदा उठाते हैं तथा उससे अपने अध्यापन कार्य को लाभान्वित करते हैं।
4. **प्रभावशाली संचार (Effective Communication)** - मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षकों में प्रभावशाली संचार का गुण होता है। वे कक्षा में अपनी बातों को ठीक ढंग से समझने योग्य भाषा में व्यक्त करते हैं तथा छात्रों को भी स्पष्ट अभिव्यक्ति की आदत डलवाते हैं।
5. **छात्रों पर उचित नियंत्रण बनाए रखने की क्षमता (Ability to have Proper control over Students)** - मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक की एक विशेषता यह भी है कि वे छात्रों पर उचित नियंत्रण अपनाकर रखते हैं। छात्र उन्हें सम्मान देते हैं तथा उनके सुझाव के अनुकूल कार्य करने के लिए तत्पर रहते हैं।
6. **उत्तम अध्यापन विधियाँ (Good teaching methods)** - मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक कक्षा में अध्यापन कार्य करते समय उत्तम अध्यापन विधियों का अनुसरण करते हैं। उत्तम अध्यापन विधि वह विधि है जो छात्रों की बुद्धि, अभिरूचि, अभिक्षमता के अनुकूल होती है तथा जिससे छात्र अधिक से अधिक लाभान्वित होते हैं।
7. **अपने व्यवसाय के प्रति सम्मान (Respect for his Profession)** - मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक अपने आपको तो प्रतिष्ठा की नजर से देखते हैं। इस तरह से अपने व्यवसाय के प्रति धनात्मक मनोवृत्ति रखते हैं।
8. **कौशलता तथा योग्यता को उत्तम बनाने का सतत प्रयास (Constant effort for improving Skills & Qualifications)** - मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक अपनी योग्यता एवं कौशलता को उन्नत बनाने का हर संभव प्रयास हमेशा करते रहते हैं।

वे अपने व्यवसाय को एक चुनौतीपूर्ण व्यवसाय मानते हैं।

9. अपनी व्यावसायिक समस्याओं का समाधान करने के लिए पुस्तकों एवं पत्रिकाओं का उपयोग (Use of Books & Periodicals for solving his Professional Problems) - मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक को चुनौतीपूर्ण समस्याओं का सामना अपने व्यवसाय में करना पड़ता है। इन समस्याओं का समाधान करने के लिए वे किताब, जनरल एवं शोध पत्रिकाओं का उपयोग करते हैं।

10. नये-नये विचारों, अध्यापन सामग्रियों एवं अध्यापन विधियों की खोज करने का प्रयास करना (To try to Discover New Ideas, Teaching Materials & Teaching Methods) - मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक अपने सहकर्मियों के साथ मिलकर तथा विचार विमर्श कर नए-नए विचारों, शिक्षण सामग्रियों एवं नई-नई अध्यापन विधियों की खोज करते हैं तथा उससे छात्रों को लाभान्वित करते हैं।

बोध प्रश्न -

- क) नीचे दिये गये रिक्त स्थानों का उत्तर लिखें।
 ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।
 प्र.9 एक स्वस्थ शिक्षक की विशेषतायें लिखिए।

उ. _____

प्र.10 व्यावसायिक विशेषताओं की आवश्यकता एक शिक्षक के लिए क्यों जरूरी है?

उ. _____

13.13 शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक

शिक्षकों को मानसिक रूप से अस्वस्थ बनाने में निम्न कारक उत्तरदायी हैं -

1. शारीरिक कारक (Physical Factors) - व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक

स्वास्थ्यमें गहरा संबंध होता है। जिस शिक्षक का शारीरिक स्वास्थ्य अक्सर खराब रहता है तथा वे अक्सर कोई न कोई रोग से ग्रस्त होते हैं, वे स्वभाव से चिड़चिड़े हो जाते हैं तथा उनमें सांवेगिक अस्थिरता बढ़ जाती है और उनका मानसिक स्वास्थ्य खराब हो जाता है।

2. **आर्थिक कारक (Economic Factors)** - शिक्षकों के मानसिक रूप से अस्वस्थ होने का प्रमुख कारण आर्थिक कारण है। जब शिक्षक की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती, तो वे हमेशा मानसिक उलझन एवं तनाव से घिरे रहते हैं। उनका ध्यान अध्यापन में नहीं लगता और उनमें अन्यमनस्कता बढ़ती जाती है। इससे धीरे-धीरे उनका मानसिक स्वास्थ्य गिरता जाता है।

3. **शैक्षिक कारक (Educational Factors)** - कुछ शिक्षण संस्थान ऐसे होते हैं जहाँ शिक्षकों का शोषण किया जाता है, इससे भी उनका मानसिक स्वास्थ्य गिर जाता है। शिक्षकों के लिए उपयुक्त बैठने की व्यवस्था न होना, समय पर वेतन न मिलना, पुस्तकालयों का अभाव, व्यावसायिक असुरक्षा आदि कारण भी शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं।

4. **जैविक कारण (Biological Factors)** - कुछ शिक्षकों का मानसिक स्वास्थ्य वंशानुगत कारकों से भी प्रभावित होता है। यदि शिक्षक के माता-पिता मानसिक रोगी होते हैं, तो ऐसे शिक्षक को भी मानसिक रोग से ग्रस्त होने की संभावना बढ़ जाती है। मानसिक रोग से ग्रस्त होने पर मानसिक स्वास्थ्य खराब हो जाता है।

5. **सामाजिक कारक (Social Factors)** - शिक्षक के मानसिक स्वास्थ्य कम होने का एक मुख्य कारक सामाजिक कारक भी है। यदि शिक्षक का पारिवारिक जीवन महत्वपूर्ण है तथा उन्हें परिवार के अन्य सदस्यों से निरादर एवं तिरस्कार मिलता है तो ऐसी परिस्थिति में उनका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं रह पाता। सेकर्ड (1995) में पाया कि जिन शिक्षकों की पारिवारिक जिन्दगी सामाजिक दृष्टिकोण से संतोषजनक नहीं होती है, उनका मानसिक स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं रहता है।

6. **मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)** - कुछ शिक्षक ऐसे होते हैं जो अपने कार्य से संतुष्ट नहीं होते। दूसरे शब्दों में, ऐसे शिक्षकों में कार्य संतुष्टि नहीं होता। कार्य संतुष्टि के अभाव में उनमें कई तरह के नकारात्मक भाव उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे - हीनता का भाव, असुरक्षा का भाव, चिन्ता आदि विकसित हो जाते हैं, जो धीरे धीरे शिक्षक के मानसिक स्वास्थ्य को खोखला कर देते हैं।

13.14 बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने के उपाय

शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत करने के लिए निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं-

1. शिक्षकों के आर्थिक शोषण पर तुरन्त रोक लगाना चाहिए तथा जो विद्यालय या महाविद्यालय शिक्षकों का आर्थिक शोषण करते हैं उन्हें आर्थिक अपराधी ठहराकर कानूनी मुकदमा चलाया जाना चाहिए।
2. शिक्षकों का मानसिक स्वास्थ्य भी अच्छा हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि उनका शारीरिक स्वास्थ्य भी अच्छा हो। इसके लिए उन्हें आवासीय सुविधा उपलब्ध करायी जाये।
3. शिक्षकों को उनकी संतोषजनक सेवाओं के लिए सरकार से उचित एवं सम्मानपूर्ण पुरस्कार देने का प्रावधान किया जाना चाहिए।
4. स्कूल के अधिकारियों को चाहिए कि वे शिक्षकों के साथ सहयोग करें और उन्हें अनावश्यक रूप से तंग करने की प्रवृत्ति छोड़ दें।
5. शिक्षकों की समस्याओं को अच्छी तरह से समझने के लिए स्कूल के अधिकारियों को चाहिए कि वे समय-समय पर बैठकों एवं सभाओं का आयोजन करते रहें। शिक्षक की समस्याओं को समझकर उन्हें हल करने का विशेष प्रयास करना चाहिए।
6. शिक्षकों की मानसिक अस्वस्थता को दूर करने के ख्याल से स्कूल में पर्याप्त मनोवैज्ञानिक सहायता केन्द्र खोले जाने चाहिए।

13.15 बालकों की मानसिक अस्वस्थता के कारण

बालकों में मानसिक अस्वस्थता के प्रमुख कारण निम्न हैं -

1. **माता पिता द्वारा अतिसुरक्षा या अल्पसुरक्षा (Over-Protection & Under-Protection by Parents)** - ऐसा देखा गया है कि कुछ माता-पिता अपने बच्चों को जरूरत से ज्यादा दुलार-प्यार प्रदान करते हैं। ऐसे बालकों में आत्मनिर्भरता की भावना विकसित नहीं होती है। साथ ही उनमें असुरक्षा की भावना भी तीव्र हो जाती है। दूसरी तरफ, कुछ माता-पिता अपने बच्चों को अक्सर फटकार, तिरस्कार एवं अन्य समकक्षी बच्चों की तुलना में नीचा दिखाते रहते हैं। इससे बालकों में हीनता की भावना विकसित होती है। यह दोनों ही स्थितियां छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं।
2. **माता-पिता द्वारा विभेदात्मक बर्ताव (Differential treatment by Parents)**- कुछ माता-पिता अपने कुछ बच्चों को अधिक प्यार करते हैं तथा कुछ बच्चों को हमेशा

फटकारते रहते हैं तथा उन्हें नीचा दिखाते हैं। इस तरह के विभेदात्मक बर्ताव का प्रभाव बालकों के मानसिक स्वास्थ्य पर अच्छा नहीं पड़ता।

3. **शिक्षक का व्यवहार (Behaviour of the Teacher)** - स्कूल में शिक्षक का वही स्थान होता है जो माता-पिता का घर में होता है। शिपली (1990) ने अपने अध्ययन में पाया कि यदि स्कूल में बालकों के प्रति शिक्षक का व्यवहार अच्छा नहीं होता तो भी बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

4. **शिक्षक द्वारा अत्यधिक सख्ती एवं अनुशासन पालिता पर बल (Excessive Emphasis upon Strictness and Discipline by Teachers)** - जब स्कूल के शिक्षक ऐसे हों जो छात्रों के साथ अत्यधिक सख्ती से पेश आते हैं तथा जो अनुशासन पालिता पर अधिक बल देते हैं तो उनका मानसिक स्वास्थ्य भी गिरने लगता है।

5. **माता-पिता के व्यक्तित्व का प्रभाव (Impact of personality traits of parents)** - कुछ माता-पिता जिनका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं होता है। वे स्वभाव से चिड़चिड़े तथा सांवेगिक रूप से अस्थिर होते हैं। उनमें सांवेगिक उतार-चढ़ाव इतना अधिक होता है कि कभी तो वे अपने बच्चों को किसी व्यवहार के लिए फटकारते हैं इससे बालकों में मानसिक अस्थिरता आती है। और उनका मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ने लगता है।

6. **गरीबी (Poverty)** - मानसिक स्वास्थ्य पर बालक के परिवार की गरीबी का भी प्रभाव पड़ता है। जो बालक गरीब परिवार से आते हैं, उनके सामने अत्यधिक समस्याएँ होती हैं इसका परिणाम यह होता है कि वे अन्य बालकों से कक्षा में पिछड़ने लगते हैं। वे अपने आप को अन्य बालकों से हीन समझने लगते हैं। इससे धीरे-धीरे उनमें आत्मनिर्भरता की कमी तथा आत्मदोष की वृद्धि होने लगती है। जो उनके मानसिक स्वास्थ्य को खराब कर देता है।

7. **अच्छे पाठ्यक्रम का अभाव (Lack of Good Curriculum)**- जब स्कूल का पाठ्यक्रम अच्छा नहीं होता, तो इससे भी बालकों में मानसिक अस्वस्थता बढ़ती देखी गई है। स्कीनर (1967) के अनुसार एक अच्छा पाठ्यक्रम वह पाठ्यक्रम होता है जो छात्रों के बुद्धि स्तर, अभिषमता एवं अभिरूचि का बिना ख्याल किए ही पाठ्यक्रम तैयार कर लेते हैं और उसे पढ़ने के लिए विवश करते हैं। इससे छात्रों में मानसिक तनाव एवं मानसिक उलझन बढ़ता है और वे धीरे-धीरे मानसिक रूप से अस्वस्थ होते चले जाते हैं।

8. **प्रतियोगिता का प्रभाव (Impact of Competition)** - प्रतियोगिता का प्रभाव भी बालकों के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। इस तरह की प्रतियोगिता एवं प्रतिद्वन्द्विता का प्रभाव यह होता है कि बालकों में ईर्ष्या, का भाव उत्पन्न होने लगता है। इतना ही नहीं,

जो बालक प्रतियोगिता में सफल नहीं हो पाते, उनकी मानसिक दशा काफी दयनीय हो जाती है और वे अपने आपको तुच्छ एवं हीन समझने लगते हैं। इससे उनका मानसिक स्वास्थ्य धीरे-धीरे बिगड़ने लगता है।

9. **अध्यापन विधि (Teaching Methods)**- बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर अध्यापन विधि का भी प्रभाव पड़ता है। कुछ शिक्षक ऐसे होते हैं जिनकी पढ़ाई का ढंग अरोचक होता है तथा छात्र तुरंत ही उन का अनुभव करने लगते हैं। इससे छात्रों में अन्यमनस्कता में वृद्धि होती है जो उन्हें धीरे-धीरे मानसिक अस्वस्थता की ओर ले जाती है।

10. **संगी-साथियों का प्रभाव (Impact of Peers)** - जब बालक ऐसे संगी साथियों के संगत में चले जाते हैं जो मानसिक रूप से अस्वस्थ होते हैं, तो उनमें भी मानसिक रूप से अस्वस्थ हो जाने की संभावना तीव्र हो जाती है। बालक ऐसे बालकों की संगति में आकर उनके व्यवहार को उत्तम समझकर उसे सीख लेते हैं। और वे स्वयं भी मानसिक रूप से अस्वस्थ हो जाते हैं।

स्पष्ट है कि बालकों की मानसिक अस्वस्थता के कई कारण हैं जिनका ज्ञान होना शिक्षकों से अपेक्षित है।

बोध प्रश्न -

- क) नीचे दिये गये रिक्त स्थानों में प्रश्नों का उत्तर लिखें।
- ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्र.11 कौन-कौन से कारक एक शिक्षक के मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं?

उ. _____

प्र.12 शिक्षक की मानसिक दशा को सुधारने के उपाय लिखें?

उ. _____

13.16 बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में शिक्षक की भूमिका

छात्रों की मानसिक अस्वस्थता को रोकने तथा मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाने में शिक्षकों की भूमिका सराहनीय है। शिक्षकों को बालकों का मानसिक स्वास्थ्य बढ़ाने के लिए निम्न उपायों को अपनाना चाहिए।

1. **स्नेहपूर्ण एवं सहानुभूति पूर्ण व्यवहार (Affectionate and Sympathetic Behaviour)**- शिक्षकों द्वारा छात्रों से स्नेहपूर्ण एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने से छात्रों को मानसिक शान्ति मिलती है। जोर्डन (1982) ने अपने अध्ययन में पाया कि जब शिक्षकों द्वारा लगातार बालकों के प्रति स्नेहपूर्ण एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाता है, तो इससे छात्रों में आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास बढ़ता है तथा उनका मानसिक स्वास्थ्य मजबूत होता है।
2. **संतुलित पाठ्यक्रम (Balanced Curriculum)** - छात्रों का पाठ्यक्रम अच्छा तथा संतुलित होने से बालक उसे पढ़ने एवं समझने में अभिरूचि दिखाते हैं इससे उनकी शैक्षिक उपलब्धि बढ़ती है तथा उनमें आत्मविश्वास पनपता है। ये दोनों कारक छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाने में काफ सक्रिय भूमिका निभाते हैं।
3. **अच्छे अनुशासन पर बल (Emphasis upon Good Discipline)** - शिक्षक छात्रों में अच्छे आत्म अनुशासन की आदत डालकर उनके मानसिक स्वास्थ्य को मजबूर बना सकते हैं। स्कूल का अनुशासन यदि ऐसा हो कि जिसका छात्र आसानी से पालन कर सके तथा साथ ही साथ उनमें उत्तरदायित्व की भावना सजग हो उठती है। तो इससे उसके मानसिक स्वास्थ्य के विकास के लिए अच्छा माहौल तैयार होता है और वे धीरे-धीरे उनका मानसिक स्वास्थ्य मजबूत होता चला जाता है।
4. **आवश्यकताओं के अनुकूल अध्यापन (Teaching According to Needs)**- शिक्षक को चाहिए कि वे अपना अध्यापन कार्य छात्रों की आवश्यकता, अभिरूचि एवं अभिक्षमता के अनुकूल करें। ऐसा होने से छात्र का लगाव शिक्षा के प्रति बना रहेगा। इससे उनकी शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि होगी तथा उनमें आत्मबल, आत्म विश्वास जैसे गुण विकसित होंगे और उनका मानसिक स्वास्थ्य उन्नत हो पाएगा।
5. **वैयक्तिक भिन्नता के सिद्धान्त के अनुकूल व्यवहार (Behaviour according to Theory of Individual Difference)** - शिक्षक को वैयक्तिक विभिन्नता के

सिद्धान्त के अनुरूप व्यवहार करना चाहिए। शिक्षक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि न केवल विभिन्न बालकों की मानसिक क्षमताओं में अन्तर होता है बल्कि एक ही बालक की विभिन्न मानसिक क्षमताओं में अन्तर होता है। इसका फायदा यह होता है कि प्रत्येक छात्र को शिक्षक से अपनी उम्मीद के अनुरूप ही व्यवहार मिलेगा। इससे उनमें आत्मसंतोष बढ़ेगा तथा उनकी समायोजन शक्ति बढ़ती है, जिससे उनका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होता चला जाता है।

6. **खेल एवं मनोरंजन की व्यवस्था (Provision of Play and Recreations)-** शिक्षक स्कूल में छात्रों के लिए खेल एवं अन्य मनोरंजन की व्यवस्था करके उनमें मानसिक स्फूर्ति, मानसिक ताजगी एवं मानसिक सक्रियता को बढ़ा सकते हैं। इससे छात्रों की दमित इच्छाएँ एवं शक्तियाँ बाहर निकल जाती हैं और उनका मन हल्का हो जाता है। वे अपने अध्ययन में अधिक से अधिक मन लगा पाते हैं तथा उन्हें आपसी व्यवहारों से काफी संतुष्टि मिलती है। इससे उनका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होता है।
7. **शैक्षिक निर्देशन (Educational Guidance) -** शिक्षक छात्र को उचित शैक्षिक निर्देशन देकर भी उनके मानसिक स्वास्थ्य को अधिक उन्नत बना सकते हैं। निर्देशन पाकर छात्र उचित विषय एवं पाठ्यक्रमों का चयन कर पाते हैं, इससे उनमें अनुचित विषय को ले लेने से उत्पन्न मानसिक तनाव एवं उलझनों से बच जाते हैं। इससे उनके मानसिक स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।
8. **व्यक्तिगत निर्देशन (Personal Guidance)-** अनेक छात्र ऐसे होते हैं जिनकी व्यक्तिगत समस्याएँ एवं उलझने इतनी अधिक होती हैं कि वे काफी कुठित एवं निराश रहते हैं। शिक्षक ऐसे छात्रों को निर्देशन देकर उनकी कुंठा एवं निराशा को दूर कर सकते हैं, तथा उनके मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बना सकते हैं।
9. **अच्छी आदतों का निर्माण (Fostering Good Habits) -** शिक्षक छात्रों में अच्छी आदतों का निर्माण करके उनके मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बना सकते हैं। समय पर स्कूल पर स्कूल आना, गृहकार्य बनाकर लाना, साफ-सुथरा वस्त्र पहनना, नाखून और बाल न बढ़ने देना, ध्यान से शिक्षक की बातों को सुनना आदि की आदत डालकर उनके मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बना सकते हैं।
10. **व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance) -** शिक्षक छात्रों को व्यावसायिक निर्देशन देकर भी उनके मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बना सकते हैं। छात्रों में इतनी योग्यता नहीं होती कि वे अपने लिए उन विषयों का चयन कर सकें जो भविष्य में उनके व्यवसाय में मदद कर सकें। इससे उनमें मानसिक तनाव एवं चिन्ता बढ़

जाती है। जो उन्हें मानसिक रूप से अस्वस्थ कर देता है। शिक्षक उन्हें व्यावसायिक निर्देशन देकर उन्हें मानसिक तनाव एवं चिंता से दूर करने में सहायता देते हैं।

13.17 बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में पाठ्यक्रम की भूमिका

शिक्षा मनोवैज्ञानिकों का मत है कि बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने में पाठ्यक्रम का विशेष महत्व है, क्योंकि इन पाठ्यक्रमों से बालकों की आवश्यकताओं संवेगों एवं इच्छाओं तथा प्रवृत्तियों की संतुष्टि होती है। इसलिए बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में पाठ्यक्रम की भूमिका अहम होती है, इसके लिए कुछ छात्रों पर ध्यान देना आवश्यक है-

1. शिक्षकों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पाठ्यक्रम का निर्माण छात्रों की मुख्य आवश्यकताओं, अभिरूचियों एवं योग्यताओं के अनुकूल हों। इससे उन्हें मानसिक संतोष मिलेगा।
2. पाठ्यक्रमों में ऐसे तथ्यों को शामिल किया जाना चाहिए, जिनसे छात्रों में मानसिक क्षमताओं के विकास के साथ ही साथ शारीरिक क्षमताओं का भी विकास हो सके, क्योंकि अच्छे मानसिक स्वास्थ्य का होना भी अनिवार्य है।
3. पाठ्यक्रम में दृढ़ता का गुण न होकर लचीलापन का गुण होना चाहिए ताकि आवश्यकतानुसार उनमें परिवर्तन करके उसे छात्रों की आवश्यकताओं एवं अभिरूचियों के अनुकूल बनाया जा सके।
4. पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि उसमें पाठ्येत्तर क्रियाएँ जैसे संगीत, नाटक वाद-विवाद, खेलकूद में सभी छात्रों को भाग लेना अनिवार्य हो। इससे छात्रों की मानसिक स्फूर्ति बढ़ती है जो उनके मानसिक स्वास्थ्य को भी धीरे-धीरे प्रबल कर देती है।
5. पाठ्यक्रम ऐसा हो जिसमें छात्रों की तात्कालिक तथा भविष्य में होने वाली आवश्यकताओं की पूर्ति करने की पर्याप्त क्षमता विकसित हो जाए। इससे उन्हें किसी कुंठा का शिकार नहीं होना पड़ेगा और तब उनका मानसिक स्वास्थ्य भी बना रहेगा।
6. पाठ्यक्रम के विषय छात्रों में नैतिक जागरूकता एवं उत्तरदायित्व की भावना विकसित करने वाले होने चाहिए। इससे छात्रों में मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में सहायता मिलेगी।

7. पाठ्यक्रम ऐसा हो जो सभी स्तर के बालकों के अनुकूल हों। इससे सभी स्तर के बालकों को समान संतुष्टि मिलेगी और उन सभी का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा बना रहेगा।

बोध प्रश्न -

- क) नीचे दिये गये रिक्त स्थानों में प्रश्नों का उत्तर लिखें।
 ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अं. में दिये गये उत्तरों से करें।
 प्र.13 बालकों के स्वास्थ्य को उन्नत करने में शिक्षक की भूमिका लिखें।

उ. _____

- प्र.14 पाठ्यक्रम मानसिक स्वास्थ्य को किस तरह प्रभावित करता है?

उ. _____

13.18 सारांश

स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का वास होता है। उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए शारीरिक संतुलन बनाये रखना आवश्यक है। स्वस्थ शरीर की प्राप्ति तभी हो सकती है जबकि शरीर को स्वस्थ रखने वाले समस्त अवयवों की प्राप्ति हो। वंशानुक्रम व वातावरण दोनों का प्रभाव बालक के स्वास्थ्य पर पड़ता है।

स्वास्थ्य शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्रों को स्वस्थ रहने की दशा के बारे में अवगत कराना है। विद्यालय में विभिन्न स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम का संचालन इसी उद्देश्य से किया जाता है कि उन्हें स्वस्थ जीवन यापन करने के तरीकों से अवगत कराया जाता है। विद्यालय में विभिन्न स्वास्थ्य कार्यक्रमों का आयोजन इसी उद्देश्य से किया जाता है कि छात्रों को स्वस्थ जीवन यापन के तरीकों से अवगत करा सकें।

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो मानसिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने की प्रक्रिया तथा मानसिक रोगों से बचाने का काम करता है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों में कुछ ऐसी विशेषताएं होती हैं जोकि उन्हें अन्य लोगों से अलग करती है। आत्म

ज्ञान आत्म मूल्यांकन, सुरक्षा की भावना आदि गुण स्वस्थ व्यक्तियों में प्रमुख रूप से परिलक्षित होते हैं। एक शिक्षक मानसिक रूप से स्वस्थ है इसके लिये उसमें कुछ व्यक्तिगत व व्यावसायिक विशेषताओं का होना आवश्यक है। मानसिक रूप से अस्वस्थ शिक्षकों में दास तथा दुःखी रहने का भाव परिलक्षित होता है। शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य को शारीरिक आर्थिक शैक्षिक, आनुवांशिक आदि कारक प्रभावित करते हैं। शिक्षक व बालकों के स्वास्थ्य पर अनेक कारक नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। उन कारकों को दूर करके बच्चों व शिक्षकों के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य को उत्तम बनाया जा सकता है। विद्यालयों में अनेक पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन किया जा सकता है जोकि स्वस्थ जीवन यापन की कला से विद्यार्थियों को अवगत करा सकते हैं।

13.19 अभ्यास कार्य

1. शारीरिक स्वास्थ्य को परिभाषित करें। शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषतायें लिखिए।
2. विद्यालयीय जीवन में स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम की स्थापना के प्रमुख उद्देश्य लिखिए।
3. जूनियर हाई स्कूल स्तर के छात्रों के लिए आप किस तरह से स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम बनायेंगे, लिखें।
4. एक शिक्षक के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों का उल्लेख करें।
5. बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत करने में पाठ्यक्रम की भूमिका लिखें।

13.20 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. उत्तम आसन एवं शरीर के आन्तरिक अंगों का स्वस्थ विकास।
2. समस्त शारीरिक व मानसिक विशेषताओं का उल्लेख करें जो स्वस्थ व्यक्ति में परिलक्षित होती हैं।
3. स्वास्थ्य शिक्षा व्यक्ति को समस्त आदतों, वृत्तियों का ज्ञान कराने वाली शिक्षा है।
4. स्वस्थ आदतों का विकास, संरक्षण व विभिन्न बीमारियों से दूर रहने की शिक्षा।
5. स्वास्थ्य शिक्षा एक विस्तृत कार्यक्रम है जबकि शारीरिक शिक्षा स्वास्थ्य शिक्षा का ही एक अंग है।
6. विद्यालय में शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम से सम्बन्धित बातों का उल्लेख करें।

7. मानसिक रोगों की रोकथाम व मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने वाला विज्ञान।
8. आत्मज्ञान, आत्म मूल्यांकन, सुरक्षा की भावना, संतोषजनक संबंध बनाये रखने की क्षमता, स्पष्ट जीवन लक्ष्य, वास्तविक जीवन प्रत्यक्षण आदि।
9. मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक की विशेषतायें लिखिए।
10. व्यावसायिक विशेषतायें किसी व्यवसाय में सफलता दिलाने के लिये आवश्यक है उनकी विवेचना करके लिखें।
11. पारिवारिक कारक, आर्थिक कारक शैक्षिक कारक एवं आनुवांशिक कारक आदि।
12. शिक्षक की मानसिक दशा को सुधारने वाले उपाय लिखिए।
13. बालक के स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में शिक्षक की भूमिका का अवलोकन करें।
14. पाठ्यक्रम सम्बन्धी भूमिका का अवलोकन कर के लिखे।

13.21 कुछ उपयोगी पुस्तकें

भास्कर, के० स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा, हमारे प्रकाशन, अग्रवाल पब्लिकेशन।

वी०के० बख्शी व्यवहारिक जीवन विज्ञान एवं मानव स्वास्थ्य, अग्रवाल पब्लिकेशन।

इकाई - 14 जनसंख्या शिक्षा

संरचना

- 14.1 प्रस्तावना
- 14.2 उद्देश्य
- 14.3 जनसंख्या शिक्षा का अर्थ एवं वर्तमान प्रत्यय
- 14.4 जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य
- 14.5 जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता
- 14.6 जनसंख्या शिक्षा महत्त्व
 - जनसंख्या स्पष्टीकरण
 - खेल और नाटक
 - दृश्य - श्रव्य सहायक सामग्री के माध्यम से जनसंख्या शिक्षा
 - खोज और छानबीन आधारित शिक्षा
 - स्वयं शिक्षण विधि (प्रोग्राम्ड लर्निंग)
- 14.8 जनसंख्या शिक्षा का पाठ्यक्रम
- 14.9 जनसंख्या शिक्षा में शिक्षक
- 14.10 पाठ्य सहगामी क्रियायें तथा जनसंख्या शिक्षा
- 14.11 जनसंख्या शिक्षा में यौन शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व
- 14.12 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति
- 14.13 सारांश
- 14.14 अभ्यास कार्य
- 14.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 14.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.1 प्रस्तावना

इस इकाई में जनसंख्या शिक्षा के अर्थ, उद्देश्य, महत्त्व, जनसंख्या शिक्षा में

शिक्षक की भूमिका व जनसंख्या नियंत्रण के लिये किये गये सरकारी प्रयासों की चर्चा की गयी है।

जनसंख्या का विस्फोट सम्पूर्ण विश्व के लिए एक चुनौती है। जिसके कारण मानवता का विध्वंस होता जा रहा है और अनेक समस्यायें अपने विकराल रूप में खड़ी हो गयी है। इसलिये यह आवश्यक है कि जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के बारे में आपस में विचार-विमर्श करे और जनसंख्या नियंत्रण के प्रभावशाली तरीके अपनाये जायें इस इकाई में हम जनसंख्या शिक्षा के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं के बारे में चर्चा करेंगे।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि -

- जनसंख्या शिक्षा की संकल्पना तथा उद्देश्य से परिचित हो सकेंगे,
- जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता व महत्व की विवेचना कर सकेंगे।
- जनसंख्या शिक्षा की विधियों से परिचित हो सकेंगे।
- जनसंख्या शिक्षा की विधियों के सापेक्षित महत्व की विवेचना कर सकेंगे।
- जनसंख्या शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल तत्वों को जान सकेंगे।
- जनसंख्या शिक्षा में शिक्षक के उत्तरदायित्व की विवेचना कर सकेंगे।
- जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिये सरकारी प्रयासों की विवेचना कर सकेंगे।

14.3 जनसंख्या शिक्षा का अर्थ एवं वर्तमान प्रत्यय

जनसंख्या शिक्षा का प्रत्यय नवीन है। शिक्षा मानव को अपने विचारों को व्यवहार में परिणित करने, समय एवं परिस्थितियों के अनुसार निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करने, स्वयं तथा अपने परिवेश को समझने की शक्ति प्रदान कर समायोजन करने की प्रेरणा देती है। मानव शिक्षा के माध्यम से स्वयं को तथा परिवेश को परिष्कृत कर सकता है। इन गुणों के अभाव में व्यक्ति साक्षर भले ही हो शिक्षित नहीं माना जाना चाहिए। जनसंख्या शिक्षा इसी संदर्भ में ग्रहण की जाने योग्य एक दिशा है जो जन अथवा मानवीय शक्तियों के विकास से जुड़ी है।

जनसंख्या शिक्षा का सम्बन्ध जनसंख्या के आकार, वृद्धि अथवा हास, संरचना, लैंगिक अनुपात तथा वैवाहिक आयु के ज्ञान से है। जनसंख्या शिक्षा के अन्तर्गत जनसंख्या की वृद्धि और हास के कारणों, उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं पर्यावरण पर

पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी सन्निहित है। जनसंख्या को बढ़ाने हेतु कार्यक्रमों का नियोजन भी इसके अन्तर्गत आता है।

बुखारेस्ट में जनसंख्या - शिक्षा की विश्वसनीय संगोष्ठ 16-30 अगस्त सन् 1974 में हुई थी। इसमें लगभग 135 राष्ट्रों के 3,500 सदस्यों ने भाग लिया। इस संगोष्ठी में यह तय किया गया कि जनसंख्या का सम्बन्ध सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक उत्थान से है। जनसंख्या नीतियों और कार्यक्रम राष्ट्र के कार्यक्रमों से सम्बन्धित होने आवश्यक हैं। इस दृष्टि से जनसंख्या शिक्षा जीवन स्तर बनाने तथा सुखी जीवन की सम्भावनाओं की वृद्धि करने वाली शिक्षा है।

जनसंख्या शिक्षा की परिभाषा करना कठिन कार्य है, इसका स्वरूप तथा विषय-क्षेत्र अधिक विस्तृत है- मानव जीवन की सभी परिस्थितियों का समावेश किसी न किसी रूप में इसके अन्तर्गत कर लिया जाता है।

1. यूनेस्को द्वारा प्रतिपादित परिभाषा के अनुसार - "जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षणिक कार्यक्रम है, जो परिवार, समूह राष्ट्र तथा विश्व की जनसंख्या स्थिति के संदर्भ में विद्यार्थियों में आदर्श तथा उत्तरदायित्व पूर्ण अभिवृत्ति तथा व्यवहार विकसित करती है।"
2. साइमन ने जनसंख्या शिक्षा को - "युवा पीढ़ी के विचारों, व्यवसायों, अभिवृत्तियों एवं मूल्यों में वांछित परिवर्तन लाने का एक माध्यम बताया है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि जनसंख्या शिक्षा एक प्रक्रिया है, जिसमें निरन्तरता है। इसके अन्तर्गत जनसंख्या परिवर्तन के विभिन्न पहलुओं के व्यक्ति, समाज एवं परिवेश तथा देश पर पड़ने वाले प्रभावों का ज्ञान आगामी दशकों के प्रजनकों को कराने का प्रयत्न किया जाता है।

14.4 जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य

जनसंख्या शिक्षा तीव्र गति से परिवर्तनशील समाज के पुनःनिर्माण और पुनःरचना के लिये अति आवश्यक है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, NCERT के तत्वाधान में आयोजित अखिल भारतीय वर्कशाप ने निम्नांकित उद्देश्यों का उल्लेख किया-

- (1) स्कूलों के शिक्षकों को ऐसे प्रशिक्षण यूनिट तैयार करने के लिए अभिमुख्य करना, जो विद्यार्थियों को बढ़ती हुई जनसंख्या से उत्पन्न समस्याओं की जानकारी प्रदान कर सके।

- (2) कुछ स्कूलों का चुनाव कर वहाँ पाठ्येतर क्रियाकलापों में जनसंख्या शिक्षा के प्रयोग किया जाये और सफलता मिलती है तो वृहद स्तर पर ऐसे प्रयोगों का क्रियान्वयन किया जा सकता है।
- (3) स्कूलों में जनसंख्या शिक्षा के लिये उपयुक्त शिक्षण सामग्री तैयार करना।
- (4) जनसंख्या शिक्षा से सम्बन्धित कार्यक्रमों को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये विशेष प्रावधान किया।
- (5) कार्यक्रम द्वारा विद्यार्थियों से अपेक्षित गुण व प्रशिक्षण का मूल्यांकन करना और साथ ही आवश्यक कौशलों का विकास करना।

इसके अतिरिक्त जनसंख्या शिक्षा के अन्य उद्देश्य निम्नांकित हो सकते हैं -

- (1) संसार के पृष्ठ-भूमि में भारत की जनसंख्या वृद्धि दर तथा संगठन जनसंख्या जनांकिकी की आधार भूत समझ बच्चों में विकसित करना।
- (2) जीवन स्तर को उच्च बनाने तथा आर्थिक सामाजिक विकास करने के साथ-साथ स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास, भोजन तथा जीवन की अन्य सुविधाओं को जुटाने हेतु वर्तमान जनसंख्या के संगठन के महत्व को समझाना।
- (3) जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं के कुप्रभावों से परिचित कराना।
- (4) जनसंख्या शिक्षा के प्रति लोगों का विश्वास उत्पन्न करना।
- (5) देश की आवश्यकता की पृष्ठभूमि में शासन द्वारा चलाये जा रहे परिवार आन्दोलन को समझाना।

बोध प्रश्न -

- क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थानों में लिखो।
- ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करो।
- प्र.1 जनसंख्या शिक्षा की संकल्पना लिखो।

उ. _____

- प्र.2 जनसंख्या शिक्षा किन उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए चलाया जाने वाला कार्यक्रम है?

14.5 जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता

जनसंख्या वृद्धि की समस्या एक भीषण समस्या है इसलिए इसे रोकने के प्रयास किये जाने चाहिए। जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगाने की दृष्टि से किये गये उपायों तथा इसके लिये किये गये अध्ययनों से स्पष्ट है भारत में दम्पति रूढ़िवादी हैं। वे बच्चों को ईश्वर की देन मानते हैं। तथा परिवार नियोजन से उदासीन हैं। अतः प्रारम्भिक स्तर से इसकी शिक्षा देने का प्रावधान प्रस्तावित किया गया। जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से आवश्यक है -

1. परिवार नियोजन का प्रचार आकाशवाणी, दूरदर्शन, समाचार पत्र, चल चित्र आदि के द्वारा किया जाता है।
2. राष्ट्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रम को प्रोत्साहित करने में जनसंख्या शिक्षा महत्वपूर्ण योग प्रदान करती है।
3. अच्छे नागरिकों को देश की ज्वलंत समस्याओं का ज्ञान होना आवश्यक है। विद्यार्थी भी जनसंख्या शिक्षा के द्वारा देश की आर्थिक स्थिति, जीवन स्तर तथा परिवार का आकार आदि का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
4. सीमित परिवार की दृष्टि से भावी पीढ़ी को जनसंख्या शिक्षा देना आवश्यक है।
5. विद्यार्थियों को जनसंख्या सम्बन्धी मानचित्र, रेखाचित्र और सांख्यिकी आंकड़ों के प्रयोग एवं व्याख्या में निपुण करना।
6. छात्रों को जनसंख्या विश्लेषण की तकनीकी का ज्ञान कराना।
7. छोटे परिवार के मानक के प्रति वांछित दृष्टिकोण तैयार करना।
8. सही समय पर परिवार के आकार के बारे में सही निर्णय की क्षमता विकसित करना।
9. विभिन्न प्रकार की समस्याएँ जोकि वातावरण से सम्बन्धित हैं नियंत्रण के लिये जनसंख्या शिक्षा की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। प्रदूषित वातावरण ऊर्जा और बिजली आदि की समस्याओं के निस्तारण के लिये यह आवश्यक है कि जनसंख्या शिक्षा की संकल्पना में वृद्धि की जाये।

14.6 जनसंख्या शिक्षा का महत्त्व

श्रीमती आभाबाई बी. वाडिया ने लिखा है - आने वाली पीढ़ी को हर हालत में समय पर और विभिन्न स्तरों पर पढ़ाई के माहौल में यह जानने का अवसर दिया जाना चाहिए कि जनसंख्या की यह आधुनिक और विकराल समस्या क्या है- जीवन के सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक पहलुओं में यह किस तरह काम कर रही है। और जीवन के स्वरूप को यह किस तरह प्रभावित कर रही है। जनसंख्या शिक्षा की महत्ता निम्नलिखित है -

1. **परिवार नियोजन एवं परिवार कल्याण कार्यक्रम के सफल संचालन हेतु** - परिवार नियोजन एवं परिवार कल्याण कार्यक्रमों के साथ-साथ जनसंख्या शिक्षा को शिक्षा के सभी स्तरों पर सर्वोपरि स्थान देने की आवश्यकता है। जनसंख्या शिक्षा के द्वारा परिवार नियोजन तथा परिवार कल्याण के कार्य में आने वाली बाधाओं को दूर किया जा सकता है।
2. **जनसंख्या वृद्धि के परिणामों की जानकारी प्रदान करना** - जनसंख्या की वृद्धि पर रोक लगाने के लिये परिवार नियोजन कार्यक्रम पर्याप्त नहीं। जनमानस को जनसंख्या वृद्धि के कुपरिणामों से अवगत कराने की आवश्यकता है। सुखी जीवन के लिए आवश्यक परिस्थितियों से अवगत कराना आवश्यक है। दृश्य-श्रव्य सहायक सामग्री का उपयोग जनसंख्या शिक्षा हेतु अनेक प्रकार से किया जा सकता है।
3. **देश के समुचित विकास के लिए** - जनसंख्या शिक्षा देश के आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक विकास में सहायता करती है। जनसंख्या शिक्षा के माध्यम से जनता में यह चेतना जागृत की जा सकती है कि जनसंख्या कम होगी जो देश के विकास की उपलब्धियों का लाभ प्राप्त किया जा सकता है।
4. **पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने हेतु** - जनसंख्या शिक्षा हमें इस बात से अवगत कराती है कि छोटे परिवार में सुख व शान्ति सन्निहित है। छोटे परिवार से परिवार की आर्थिक उन्नति की जा सकती है। जीवन स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है।
5. **सामाजिक बुराइयों को रोकने में सहायक** - जनसंख्या वृद्धि निर्धनता तथा बेरोजगारी को बढ़ाती है। जनसंख्या वृद्धि का परिणाम है - योजनाबद्ध रूप से कार्य करने के पश्चात् कुल आबादी के 45 प्रतिशत व्यक्ति निर्धनता के नीचे है। उसके परिणामस्वरूप चोरी, डकैती, भ्रष्टाचार आदि बुराइयाँ समाज में पैदा हो रही

हैं। जनसंख्या शिक्षा के द्वारा जनता में यह जागृति उत्पन्न की जा सकती है। कि इन बुराइयों को जनसंख्या नियंत्रित करके ही दूर किया जा सकता है।

6. युवकों के लिये महत्व - युवकों के लिये जनसंख्या शिक्षा का अधिक महत्व है। इस समय यदि भावी पीढ़ी समय रहते इस तथ्य को समझ जाये तो जनसंख्या को नियंत्रित किया जा सकता है जो उनके भविष्य को सुखद बना सकता है।

14.7 जनसंख्या शिक्षा की विधियाँ

1. जनसंख्या स्पष्टीकरण - जनसंख्या शिक्षा में नैतिक और दूसरे मूल्यों से सम्बन्धित समस्याएं जनसंख्या वृद्धि के दृष्टिकोण, बच्चों के प्रति दृष्टिकोण, जनसंख्या शिक्षा के प्रति उत्तरदायी दृष्टिकोण विकसित करने वाली शिक्षा मानने तथा इसे केवल प्रचार की शिक्षा के रूप में न देखने, स्वतंत्रता-आर्थिक विकास, न्याय तथा राजनैतिक, नैतिकता, समाज-सेवा सम्बन्धी नैतिकता के सम्बन्ध में स्पष्ट दृष्टिकोण-विचार, विश्वास विकसित करने के प्रयास किये जाते हैं। इनका विकास जनसंख्या शिक्षा प्राप्त करते समय व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर विचारों और कार्यों से होता है। इस प्रक्रिया में अनेक उप-प्रक्रियाएं होती हैं - (1) मूल्यों में विश्वास, (2) विभिन्न व्यक्ति भिन्न तथा अलग मूल्यों में विश्वास रख सकते हैं, (3) हमारे कार्यों तथा कथनों के द्वारा मूल्यों का ज्ञान होता है, (4) उपयोगी आवश्यक मूल्यों का विकास।

वेंच महोदय ने प्रमुखतः नैतिकता सम्बन्धी मान्यताओं और समस्याओं के सम्बन्ध में विशेष अध्ययन कर निष्कर्ष निकाला। जनसंख्या संतुलन के लिये सही दृष्टिकोण विकसित करना आवश्यक है।

2. खेल और नाटक - जनसंख्या-शिक्षा देने में खेल और नाटक बहुत उपयोगी हैं। शहरों में जीवन जीने के लिये आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यक है। शहरों तथा गांवों में नौकरी या काम दिलाने के खेल नाटक, प्रहसन आयोजित किये जा सकते हैं। गांवों के लोग काम और उद्योग धन्धे तथा नौकरी के लिये शहरों की ओर भागते हैं। इस सम्बन्ध में खेल, नाटक या प्रहसन आयोजित करके इनके परिणामों से परिचित कराया जा सकता है। परिवार में सदस्यों की संख्या के सम्बन्ध में जनसंख्या शिक्षा खेल व्यवस्थित किया जा सकता है।

जनसंख्या शिक्षा में बोध कार्य किये गये हैं उनसे ज्ञात होता है खेल नाटक तथा भूमिका निर्वाह जनसंख्या सम्बन्धी समस्याओं को स्पष्ट करने और कठिन विचारों को सीखने के प्रभावी साधन हैं। इनकी विशेषता यह है सीखने वाले इनमें बहुत तीव्रता से संलग्न होते हैं तथा मजाक और हंसी के वातावरण में सरलता से तथ्यों को ग्रहण कर लेते

हैं। खेल, नाटक और भूमिका निर्वाह यथार्थ स्थितियों को उत्पन्न करके समस्याओं के यथार्थ चित्रण तथा उनके स्वरूप प्रभावी निर्णयों तक सीखने वालों को पहुँचा देते हैं। आमदनी और बजट के खेलों द्वारा जीवन स्तर की समस्याओं को स्पष्ट किया जा सकता है।

बोध प्रश्न -

- क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान पर अपना उत्तर लिखिए।
 ख) उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्र.5 जनसंख्या स्पष्टीकरण विधि की आवश्यकता क्यों है?

उ. -----

प्र.6 खेल और नाटक द्वारा जनसंख्या शिक्षा कैसे छात्रों को प्रभावित करती है?

उ. -----

3. दृश्य-श्रव्य सहायक सामग्री के माध्यम से जनसंख्या शिक्षा- जनसंख्या शिक्षा में बहु-मीडिया वाली तकनीक प्रभावी और उपयोगी है।

- (क) एक से अधिक इन्द्रियों का सीखने और समझने में उपयोग होता है। श्रव्य साधनों में रेडियो, टेप रिकॉर्ड था। ग्रामोफोन रिकार्ड प्रमुख हैं दृश्य-श्रव्य साधनों में सिनेमा, टेलीविजन, नाटक आते हैं। दृश्य-श्रव्य साधनों में चित्र, पोस्टर, पुस्तकें, स्लाइड आते हैं। इन साधनों के उपयोग से एक नवीन दृष्टिकोण का विकास सरलता से किया जा सकता है।
- (ख) इनकी सहायता से बहुत सी बातें या दृष्टिकोण संक्षेप में कम समय में बताये जा सकते हैं।
- (ग) तकनीकी बातें, कठिन समस्याओं को कक्षा तक लाने में दृश्य-श्रव्य साधन अत्यन्त उपयोगी और सरल माध्यम हैं।

दृश्य-श्रव्य साधनों के उपयोग - (1) सुनने तथा स्मरण रखने के कौशलों (2) संश्लेषण

तथा क्रमवार सोचने (3) भावात्मक क्रिया-प्रतिक्रियाओं को समझने (4) रचनात्मक सोचने-विचारने की क्रियाओं के कारण ये साधन बहुत प्रभावी और उपयोगी है। (5) गुड़ियों के माध्यम से जनसंख्या शिक्षा सीखने वालों तक पहुँचायी जा सकती है। (6) रेडियो द्वारा जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी सूचनायें समाज में प्रचारित किये जा सकते हैं। (7) गुड़िया के खेलों का उपयोग परिवार सीमित करने तथा परिवार नियोजन की बातें समझाने के लिये की जा सकती है। फ्लेनल बोर्ड या चित्र कार्डों का उपयोग बच्चों की कहानी के माध्यम से वृहत तथा छोटे परिवार के लाभ-हानि, शहरों और गाँवों में जनसंख्या के घनत्व या जनसंख्या की अधिकता का जीवन पर प्रभाव प्रदर्शित किया जा सकता है।

4. खोज और छानबीन आधारित शिक्षा - खोज या छानबीन शिक्षण विधियों को समस्या विधि कहा जाता है। आगमन और निगमन विधियाँ इन्हीं का रूपांतर है। समस्या विधियाँ खोज और छानबीन विधि में समस्या की तह तक पहुँचने के प्रयास किये जाते हैं। रटना कम होता है। आवश्यक निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये समस्या पर समुचित विचार-विमर्श हो जाता है।

- (अ) समस्या स्पष्टीकरण के लिए ये आवश्यक है - समस्या को अर्थपूर्ण, स्पष्ट और व्यवस्था की दृष्टि से सुलभ बनाना।
- (ब) तथ्यों का विश्लेषण - उनमें सम्बन्ध और अन्तर देखना तथा उपयुक्त निष्कर्ष निकालना।
- (स) प्रस्तुत किये गये निष्कर्षों की जाँच।
- (द) निष्कर्षों का प्रयोग या उपयोग।

लाभ -

- (1) सीखने वाले सुनने वाले ही नहीं बने रहते हैं। शिक्षा प्रक्रिया में सक्रिय भाग लेते हैं।
- (2) सीखने वाले सक्रिय बने रहते हैं यह विधि बाल केन्द्रित है।
- (3) सक्रियता बनी रहती है।
- (4) पाठ्य-वस्तु अंतिम लक्ष्य नहीं रहता परन्तु पाठ्य वस्तु निष्कर्षों को निकालने की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण साधन बनता है।
- (5) परम्परागत व्याख्यान विधि प्रभावी रहती है। क्योंकि इस विधि द्वारा ज्ञान की प्राप्ति सरलता से होती है।
- (6) सोचने और विश्लेषण की प्रक्रियाओं का उपयोग होता है।

- (7) जनसंख्या शिक्षा की बातों के शिक्षण के लिए यह विधि उपयोगी है।
- (8) इस विधि से शिक्षण करने में सीखना, याद रखना, सीखने का स्थानान्तरण अधिक होता है।
- (9) रचनात्मक सीखने की दृष्टि से यह अधिक उपयोगी है।

परन्तु इस विधि के उपयोग में अनेक समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है।

- (1) इस विधि की सफलता कुशल शिक्षण, कुशल छात्र तथा उत्तर प्रशासकों पर निर्भर रहती है।
- (2) इस विधि के उपयोग में समय काफी चाहिए।
- (3) जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी सभी टॉपिक्स इस विधि की सफलता के लिये आवश्यक है।

5. **स्वयं शिक्षण विधि (प्रोग्राम्ड लर्निंग)** - इस विधि की अधिक व्यावहारिक उपयोगिता है। छात्र ज्ञात या सरल से कठिन की ओर चलकर सीखता जाता है। प्रत्येक स्तर पर सीखने वाला परिणामों के आधार पर अतिरिक्त संतृप्ति प्राप्त करता रहता है। इसमें उचित प्रतिक्रिया या परिणाम निकलने पर स्वयं आगे बढ़ने वाले के कार्य और व्यवहार में रीइन्फोर्समेन्ट में परिवर्तन आता है। सीखने के लिए उसे प्रेरणा मिलती जाती है। सफलता उसे अधिक उत्साहित करती है। वह सीखने की गतिविधियों में अधिक संलग्न हो जाता है।

जनसंख्या शिक्षा के क्षेत्र में इस विधि का उपयोग होने लगा है। जनसंख्या शिक्षा के छात्र काफी आयु के तथा पढ़े लिखे होते हैं। अतः इस विधि के द्वारा वे जल्दी सीख लेते हैं। शिक्षा का उपयोग अधिक प्रभावी सिद्ध हुआ है। कम समय में अधिक जनसंख्या शिक्षा शिक्षकों तथा कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण भारत तथा अन्य एशियाई देशों में आवश्यक है। वित्तीय साधन इस कार्य के लिये पर्याप्त नहीं है। यह विधि कम खर्चीली है क्योंकि शिक्षकों तथा कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण हेतु वेतन या भत्ता देकर एक स्थान पर बुलाना आवश्यक नहीं होता है। इस विधि के लिये अपनायी गयी इकाइयों या माडल एक बार के प्रयोग के बाद दूसरों के उपयोग हेतु काम में लाई जा सकती है।

बोध प्रश्न -

- क) नीचे दिये गये रिक्त स्थानों पर अपने उत्तर लिखे।
- ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्र.7 जनसंख्या शिक्षा प्रदान करने वाली प्रमुख विधियों का उल्लेख करो?

उ.

प्र.8 खोज और छानबीन आधारित शिक्षण विधि का उपयोग जनसंख्या शिक्षा में करते समय किन किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है?

उ.

प्र.9 स्वयं शिक्षण विधि की व्यावहारिक उपयोगिता बताइये?

उ.

14.8 जनसंख्या शिक्षा का पाठ्यक्रम

जनसंख्या शिक्षा मूलतः जीवन की गुणवत्तापरक आर्थिक विकास और सीमित परिवार की अवधारणा को व्यक्त करती है। जनसंख्या शिक्षा के पाठ्यक्रम में निम्न तत्वों का समावेश होना चाहिए।

1. परिवार के आकार को सीमित रखना तथा उसके मानदण्ड।
2. सीमित परिवार और जीवन की गुणवत्ता तथा उच्च जीवन-स्तर।
3. मातृत्व की रक्षा एवं बच्चों के लिये कल्याण कार्यक्रम।
4. जनसंख्या और आर्थिक विकास में सम्बन्ध।
5. जनसंख्या का प्रति व्यक्ति औसत आय में सम्बन्ध।
6. जनाधिक्य और पर्यावरण में असंतुलन।
7. जनसंख्या वृद्धि और बेरोजगारी।
8. विकास योजनाएं और जनसंख्या वृद्धि।

9. जनसंख्या नियंत्रण के विविध कार्यक्रम।
10. विश्व और राष्ट्र के सम्बन्ध में जनसंख्या की प्रवृत्तियों का ज्ञान।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (U.G.C.) और जनसंख्या शिक्षा - विश्वविद्यालयों और महाविद्यालय में जनसंख्या शिक्षा का प्रसार करने के लिये यू.जी.सी. द्वारा लगातार प्रयास किये जा रहे हैं। 1986 की रिपोर्ट में यू.जी.सी. निम्न कार्यक्रम निर्धारित किये-

- जनसंख्या-शिक्षा के विविध पहलुओं पर दिये गये 15 प्रमुख भाषणों की पत्रिका को विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों को प्रेषित करना।
- स्नातकोत्तर पर जनसंख्या शिक्षा को सुदृढ़ता प्रदान करने के उद्देश्य से यू.जी.सी. द्वारा विशेष सहायता अनुदान देने का निश्चय किया गया है।
- छोटे परिवार के मानदण्ड शिशु मृत्युदर, कुपोषण, औसत आयु सेक्स रेशियो जनसंख्या नियंत्रण की भारतीय पद्धति, उसका ज्ञान, अभिवृत्ति और व्यवहार आदि जनसंख्या शिक्षा के विषयों पर सर्वेक्षण करने एवं रिसर्च प्रोजेक्ट तैयार करने के लिए यू.जी.सी. द्वारा विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों को सहायता राशि दी जाती है।
- दूरदर्शन पर जनसंख्या शिक्षा के धारावाहिक प्रसारित करना।
- विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के द्वारा छात्रों एवं समुदाय के लोगों के लिये जनसंख्या शिक्षा संस्थानों की स्थापना करना।

बोध प्रश्न -

- क) नीचे दिये गये रिक्त स्थानों पर अपने उत्तर लिखिये।
- ख) उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्र.10 जनसंख्या शिक्षा देते समय किन-किन बातों पर ध्यान देना आवश्यक है?

उ. _____

प्र.11 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (U.G.C.) ने मुख्य रूप से जनसंख्या शिक्षा में किन-किन कार्यक्रमों पर बल दिया है?

उ. _____

1.4.9 जनसंख्या शिक्षा में शिक्षक

जनसंख्या शिक्षा के प्रसार में शिक्षक की भूमिका निम्न हो सकती है -

- छात्रों को जनसंख्या के विषय में सही जानकारी देना तथा उचित दृष्टिकोण का निर्माण करना।
- अपने विषय-शिक्षण के साथ जनसंख्या के तथ्यों को सम्मिलित करना।
- राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के सम्बन्ध में छात्रों को जागरूक करना।
- राष्ट्रीय शिक्षा विषयक प्रदर्शनियों का आयोजन करना।
- जनसंख्या शिक्षा के द्वारा उत्पादक युवा शक्ति का निर्माण करना जो राष्ट्र के बहुमुखी विकास में अपना योगदान दे सके।
- जनाधिक्य के दुष्परिणामों जैसे गरीबी, बेरोजगारी, कुपोषण, आवास, भोजन आदि बिन्दुओं पर समय-समय पर व्याख्यान देना।
- जनसंख्या वृद्धि उत्पन्न पर्यावरणीय संकट के विषय में विद्यार्थियों के अन्दर सचेतना उत्पन्न करना।

बड़ी कक्षाओं के छात्रों द्वारा काव्य पाठ, नाटक, भाषण, निबन्ध प्रतियोगिताओं के माध्यम से जनसंख्या को सीमित करने की दिशा में छात्रों में जागरूकता लाई जा सकती है।

विद्यालयीय स्तर पर जनसंख्या शिक्षा के लिये अध्यापकों का दायित्व -

जनसंख्या शिक्षा दीर्घ कालीन समस्या है। बच्चों और युवकों में समझ और उचित प्रवृत्तियों विकास का महत्व बहुत है। डा. स्लोन आर. वेलैण्ड ने जनसंख्या शिक्षा के लक्षणों को वर्णन किया है। एक समय शिक्षा योजना की आवश्यकता प्रतिपादित की है।

1. शिक्षकों को जनसंख्या शिक्षा की संकल्पना, लक्ष्य, शिक्षा विधियाँ, पाठ्यक्रम, मूल्यांकन आदि से सुपरिचित कराया जाये। इससे वे अपना शिक्षा-सम्बन्धी अन्य कार्य करते हुए जनसंख्या शिक्षा का कार्य सुचारू रूप से सम्पन्न कर सकेंगे।
2. शिक्षकों में जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी कौशलों के विकास के लिये आवश्यक है जनसंख्या सम्बन्धी उनका अज्ञान दूर किया जाये उन्हें जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों तथा विकास और जनसंख्या के सम्बन्ध में स्पष्ट ज्ञान कराया जाये।

इससे उनमें इसके सम्बन्ध में उचित धारणाओं का विकास होगा।

3. शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रमों में जनसंख शिक्षा के सिद्धान्त और शिक्षण विधियां दोनों प्रकार के कार्यक्रमों को जोड़कर शिक्षक प्रशिक्षण को समुचित बनाया जाना चाहिए।
4. शिक्षकों को उन शक्तियों तथा धाराओं का ज्ञान कराया जाना चाहिए जो भारतीय समाज के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक तकनीकी स्वरूप को विकसित एवं परिवर्तित कर रही है।
5. शिक्षा से इनका क्या सम्बन्ध है, उन्हें स्पष्ट कराया जाना आवश्यक है। जनसंख्या शिक्षा के शिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम को सामुदायिक कार्यक्रम के रूप में व्यवस्थित कराने के लिये प्रयास आवश्यक है। इस प्रकार के कार्यक्रमों से शिक्षकों में सांस्कृतिक परम्पराओं तथा देश की समस्याओं और आकांक्षाओं के सम्बन्ध में उचित प्रवृत्तियों और कार्य अभ्यासों का विकास होगा।

14.10 पाठ्य-सहगामी क्रियायें तथा जनसंख्या शिक्षा

शिक्षक सामाजिक संरचना की रीढ़ है। जनसंख्या शिक्षा को पाठ्य-विषय बना देने शिक्षक के दायित्व की इति नहीं वरन् उसे विभिन्न रोचक तरीकों से प्रस्तुत कर तथा छात्रों की प्रतियोगी भावना से उसमें प्रतिभागिता को उत्पन्न कर इसका प्रचार-प्रसार किया जा सकता है। इसके लिये यह आवश्यक है कि शिक्षक द्वारा पाठ्यक्रम सहयोगी क्रियाओं द्वारा इनका बहुविधि-विधाओं द्वारा आयोजन हो जोकि जनसंख्या शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक हो।

विद्यालय में जनसंख्या शिक्षा से सम्बन्धित पाठ्यक्रम क्रियाओं का आयोजन इस प्रकार किया जा सकता है -

1. प्रदर्शनियों का आयोजन।
2. वाद-विवाद प्रतियोगिता।
3. जनसंख्या शिक्षा के लिये नारे लिखने की प्रतियोगिता।
4. निबन्ध प्रतियोगिता।
5. लोकगीत और गीत प्रतियोगिता।
6. स्वरचित कविता पाठ।
7. पोस्टर और कार्टून प्रतियोगिता।

8. लघु नाटिका, एकांकी प्रतियोगिता।
9. इन सभी कार्यों में शिक्षक सहभागिता।

14.11 जनसंख्या शिक्षा में यौन शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व

यौन शिक्षा वर्तमान समय की आवश्यकता है। बदलते परिपेक्ष्य में जनसंख्या शिक्षा में यौन शिक्षा की आवश्यकता व महत्त्व निम्न कारणों से है -

1. मन की चंचलता को रोकने के लिये और काम प्रवृत्ति पर नियंत्रण रखने के लिये यौन शिक्षा आवश्यक है। यौन अपराधों की वृद्धि को रोकने और सामाजिक, जैविक समस्याओं के समाधान के लिये यौन शिक्षा की आवश्यकता समझी जाती है।
2. स्वयं के विषय में समुचित जानकारी सभी मानव सम्बन्धों का सिद्धान्त है। सही वैवाहिक जीवन के लिये यौन शिक्षा की आवश्यकता है।
3. अधिकांश नवयुवतियों को सेक्स के विषय में तथ्यात्मक ज्ञान कम होता है जो स्वयं को यौन शिक्षा की सही जानकारी से अनभिज्ञ रख जीवन के नैतिक मूल्यों को तोड़ बैठती है। जिससे उनका भविष्य खतरे में पड़ जाता है। इन समस्याओं से बचने के लिये यौन शिक्षा देना आवश्यक है।
4. बच्चों को अपने जन्म के विषय में स्वाभाविक जिज्ञासा होती है। वे माँ-बाप से इस विषय में पूछते हैं। माता-पिता उन्हें अव्यावहारिक उत्तर देते हैं इससे बच्चों की भ्रान्तियाँ बढ़ती हैं। बच्चों के प्रश्नों का सही उत्तर देने के लिये यौन-शिक्षा की आवश्यकता है।
5. यौन शिक्षा सामाजिक आवश्यकता है। समाज में बढ़ती हुयी पाशविक प्रवृत्तियाँ को रोकने के लिये यौन शिक्षा की महत्ता है।
6. युवक-युवतियों के सामने सेक्स समस्याएँ हैं, वे किसी से बता नहीं सकते। इन समस्याओं के निराकरण के लिये यौन शिक्षा आवश्यक है।

यौन शिक्षा के प्रभाव ने पूरी शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावित किया है। इसलिये इसकी महत्ता निःसन्देह है।

बोध प्रश्न -

- क) नीचे दिये गये रिक्त स्थानों पर अपने उत्तर लिखिये ।

ख) उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्र.12 जनसंख्या शिक्षा में शिक्षक की क्या भूमिका है?

उ. _____

प्र.13 विद्यालय में कौन कौन सी पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन जनसंख्या शिक्षा के संदर्भ में किया जा सकता है?

उ. _____

प्र.14 शिक्षकों को किस तरह जनसंख्या शिक्षा के लिये प्रशिक्षण दिया जा सकता है?

उ. _____

14.12 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति

16 अप्रैल, सन 1976 में तत्कालीन केन्द्रीय स्वास्थ्य तथा परिवार-नियोजन मंत्री डा. कर्ण सिंह ने लोकसभा में राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा की थी। इस नीति की प्रमुख बात यह थी कि राष्ट्र में जनसंख्या वृद्धि को प्रभावी ढंग से रोका जाये।

किसी भी राष्ट्र की जनसंख्या शिक्षा-नीति के अन्तर्गत सामान्यतः निम्न बातों को सम्मिलित किया जाता है -

- (1) जन्म दर बढ़ाने तथा घटाने की नीति,
- (2) मृत्यु दर घटाने की नीति (या बढ़ाने रखने की नकारात्मक नीति)
- (3) जन्म वृद्धि या अधिक रखने की नीति।
- (4) जनसंख्या संरचना सुधारने आदि के कार्य और अध्ययन।
- (5) जनसंख्या वितरण का नियमन करने की नीति।

1976 की राष्ट्रीय जनसंख्या नीति-भारत की सन 1976 की जनसंख्या तथा जनसंख्या शिक्षा-नीति की निम्न विशेषताएँ हैं-

1. जन्म दर तथा जनसंख्या वृद्धि में तेजी से कमी लाने पर विशेषबल।
2. स्वेच्छा से नसबन्दी। नसबन्दी के लिये क्षतिपूर्ति तथा प्रलोभनों की राशि में वृद्धि एवं अन्य विशेष सुविधाओं की व्यवस्था।
3. नसबन्दी एवं परिवार कल्याण सुविधाओं का विस्तार।
4. स्वयंसेवी संस्थाओं की जनसंख्या नीति के अन्तर्गत परिवार-नियोजन कार्यक्रम करने हेतु विशेष सुविधाएं एवं प्रोत्साहन।
5. विवाह योग्य न्यूनतम आयु में वृद्धि।
6. परिवार कल्याण तथा परिवार नियोजन कार्यक्रमों को सर्वोच्च प्राथमिकता।
7. शताब्दी के अन्त तक लोकसभा में प्रतिनिधित्व का आधार वास्तविक जनसंख्या न होकर सन 1971 की जनसंख्या बनाना।
8. राज्यों को केन्द्रीय सहायता तथा अनुदान का आधार सन 1971 की जनसंख्या को मानना।
9. जनसंख्या सीमित करने हेतु प्रचार-प्रसार की सुदृढ़ व्यवस्था का विकास।
10. जनसंख्या नियंत्रण एवं परिवार नियोजन सम्बन्धी शोध कार्यों को प्रोत्साहन।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 1981 - 15 से 17 जून सन 1981 को विज्ञान भवन, नयी दिल्ली में आयोजित सम्मेलन में राष्ट्रीय जनसंख्या नीति बनायी गयी। जिसकी निम्न विशेषतायें हैं।

1. जन्म दर बढ़ाना व मृत्यु दर कम करना।
2. सन 2000 तक 60 प्रतिशत दम्पतियों को परिवार नियोजन के किसी न किसी उपाय को अपनाने की प्रेरणा देना।
3. परिवार नियोजन के विभिन्न साधनों तथा उपायों सम्बन्धी सेवाओं को उपलब्ध कराने हेतु समुचित व्यवस्था करना।
4. जनसंख्या सीमित करने हेतु शासकीय तथा स्वैच्छिक दोनों प्रकार की एजेन्सियों को प्रोत्साहित किया जाए।
5. जनसंख्या सीमित करने हेतु प्रभावी दीर्घकालीन शिक्षा कार्यक्रमों को अपनाया जाये।

6. महिलाओं की शिक्षा तथा रोजगार पर विशेष बल दिया जाये।
7. दम्पतियों को संतान नियंत्रण के विभिन्न साधनों में से स्वेच्छा से अपनाने हेतु प्रोत्साहित किया जाये।
8. वर्तमान में अपनाई जा रही प्रोत्साहन विधियों और नियमों से अपनाई जा रही प्रोत्साहन विधियों और नियमों की समीक्षा करके उन्हें उत्तम बनाया जाये।
9. माताओं और शिशुओं को रोग प्रशिक्षण टीकों आदि की सुविधायें उपलब्ध कराना।
10. परिवार-नियोजन कार्यक्रमों को अन्य सामाजिक तथा आर्थिक उत्थान के कार्यक्रमों से सम्बन्धित किया जाए जिससे परिवार छोटा रखने का कार्यक्रम जीवन-स्तर उच्च बनाने की प्रभावी भूमिका अदा कर सके।
11. प्रत्येक राज्य को जिला-आधार पर जन्म तथा मृत्यु दर के आंकड़ों पर विचार करना चाहिए जिससे आवश्यकतानुसार इनकी दरों में आवश्यक कमी करने हेतु विशेष कार्यक्रम अपनाये जा सकें।

नयी जनसंख्या नीति की विशेषताएँ -

देश की जनसंख्या समस्या के हल हेतु परिवार-नियोजन हेतु विधि का स्वतंत्र चुनाव विविध आयामी पहलों को अपनाने पर बल-यही नयी जनसंख्या नीति का प्रमुख उद्देश्य है। नयी जनसंख्या नीति की प्रमुख विशेषतायें निम्नांकित हैं -

1. परिवार नियोजन हेतु विधि अपनाने की पूर्व स्वतंत्रता।
2. महिला शिक्षा को प्रोत्साहन-शालेय तथा अशालेय दोनों को।
3. जनसंख्या शिक्षा को शालेय पाठ्यक्रम से सम्बन्धित करना।
4. लड़कों तथा लड़कियों की शादी करने की आयु को अधिक करना।
5. ऐच्छिक तथा स्वायत्त संस्थाओं का अधिक से अधिक सहयोग परिवार कल्याण कार्यक्रमों हेतु प्राप्त करना।
6. परिवार कल्याण के कार्यक्रमों हेतु दिये गये दान पर आयकर की छूट।
7. गर्भ पूर्व, गर्भ के समय, डिलेवरी के समय तथा डिलेवरी के बाद बच्चा तथा माता दोनों को उचित देखभाल हेतु प्रशिक्षित दाइयों या नर्सों को लोगों के धरों तक पहुँचाना।
8. केन्द्र द्वारा दी जा रही आर्थिक सहायता का 8 प्रतिशत भाग राज्यों द्वारा परिवार

कार्यक्रम की सफलता में बाधाएँ -

1. खेतिहर और पारम्परिक समाजों में जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम के क्रियान्वयन में बाधा आती है।
2. पुत्र प्राप्ति की भावना जो छोटे परिवार की महत्ता को कम करती है।
3. भारत में महिला साक्षरता का प्रतिशत कम होना है। केरल राज्य में जहाँ साक्षरता 89.81 प्रतिशत है वहाँ जन्मदर 14.32 प्रति हजार है। परिणाम स्वरूप वहाँ इस कार्यक्रम के अच्छे परिणाम मिल रहे हैं।
4. लड़कियों की कम आयु में शादी करने से प्रजनन दर स्वतः बढ़ जाती है।
5. शिशु मृत्यु दर और अधिक बच्चों की चाह के बीच गहरा सम्बन्ध है, यह विचारधारा कार्यक्रम के क्रियान्वयन में बाधक है।
6. भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रम जनआंदोलन नहीं बन सका। सामुदायिक सहयोग और स्वेच्छिक योगदान बहुत ही सीमित मात्रा में मिल रहा है।
7. कार्यक्रम के प्रति सभी स्तरों पर अपेक्षित दृढ़ प्रतिबद्धता की कमी है।

14.13 सारांश

जनसंख्या शिक्षा के अन्तर्गत जनसंख्या वृद्धि और हास के कारणों और उनके प्रभावों की जानकारी सन्निहित है। लगातार बढ़ती हुयी जनसंख्या ने अनेक समस्यायें उत्पन्न कर दी जिसके कारण जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया गया। इसीलिये जनसंख्या शिक्षा की शुरुआत स्कूली स्तर से हुयी है। जिसमें अध्यापक की सक्रिय भूमिका पर बल दिया गया है।

जनसंख्या शिक्षा प्रदान करने की अनेक शिक्षण विधियाँ हैं। जनसंख्या स्पष्टीकरण द्वारा जनसंख्या शिक्षा में आने वाली बातों को इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि लोग उन बातों को समझ सकें। खेल और नाटक के माध्यम से लोगों को मनोरंजन प्रदान करते हुये समस्या की ओर ले जाया जाता है। विभिन्न प्रकार की दृश्य-श्रव्य सामग्री का उपयोग जनसंख्या शिक्षण के लिये करते हैं खोज और छानबीन विधि व प्रोग्राम्ड लर्निंग में सीखने वाला स्वयं बहुत सक्रिय व उत्सुक होकर ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता है।

जनसंख्या शिक्षा में अध्यापक की महत्वपूर्ण भूमिका है। अध्यापक छात्रों से

विचार-विमर्श करके व विभिन्न पाठ्य सहगामी क्रियाओं जैसे, निबन्ध, प्रतियोगिता, लघु नाटिका, कार्टून चित्र बनवाना आदि के माध्यम से जनसंख्या शिक्षा प्रदान की जा सकती है। बदलते सामाजिक परिपेक्ष्य में यौन शिक्षा को पाठ्यक्रम का एक अंग बनाने और जन-जल तक सही तरीके से इस शिक्षा को पहुँचाने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

जनसंख्या पर नियंत्रण रखने के लिये अनेक प्रयास राज्य व केन्द्र सरकार द्वारा किये गये हैं। विभिन्न प्रकार की जनसंख्या नीतियों का निर्माण इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये किया गया। किन्तु इन नीतियों का निर्माण जिन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया गया था उनकी पूर्ति नहीं हो पा रही है। अनेक अवरोधों ने इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में बाधाएँ उत्पन्न कर दी हैं।

14.14 अभ्यास कार्य

1. जनसंख्या शिक्षा किन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु चलाया जाने वाला कार्यक्रम है?
2. जनसंख्या शिक्षा को पाठ्यक्रम में शामिल करने की आवश्यकता क्यों महसूस हुयी, विवेचना करें।
3. जन सामान्य के लिये जनसंख्या शिक्षा की क्या महत्ता है?
4. जनसंख्या शिक्षा में खेल व नाटक विधि और स्वयं शिक्षण विधि की उपयोगिता की विवेचना करें।
5. जनसंख्या शिक्षा में दृश्य-श्रव्य सहायक सामग्री की उपयोगिता लिखिये।
6. विद्यालय में जनसंख्या शिक्षा देने के लिए किस विधि को ज्यादा उपयुक्त मानते हैं। विवेचना करें।
7. विद्यालय में किन पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का आयोजन करके जनसंख्या शिक्षा प्रदान कर सकते हैं?
8. जनसंख्या शिक्षा में यौन शिक्षा की महत्ता की विवेचना करें।
9. जनसंख्या नियंत्रण हेतु किये गये सरकारी प्रयासों का उल्लेख करें।
10. जनसंख्या शिक्षण जन-जन के बीच लोकप्रिय नहीं हो पा रहा है। इसके कारणों की विवेचना करें।

14.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

- जनसंख्या शिक्षा द्वारा सभी वर्गों को जनसंख्या स्थिति-जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न

समस्याओं और जन साधारण के जीवन-स्तर पर पड़ने वाले प्रभावों के विषय में जागरूक बनाने का प्रयास किया जाता है।

- अध्यापकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने हेतु जनसंख्या शिक्षा में पाठ्य सहगामी क्रियाओं की भूमिका, पाठ्यक्रम में जनसंख्या शिक्षा को शामिल करना, जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं से परिचित कराना, कल्याणकारी राज्य की अवधारणा पर बल देना।
- परिवार-नियोजन कार्यक्रमों पर बल देना, सुयोग्य नागरिकों का निर्माण करना सीमित परिवार की अवधारणा पर बल देना, लोगों को विभिन्न समस्याओं की जानकारी प्रदान करना व उनकी अभिवृत्ति में परिवर्तन लाना।
- युवकों का दृष्टिकोण जब बदलेगा, तभी जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता व महत्ता को बल मिलेगा। जिससे जनसंख्या नियंत्रण के लिये चलाये गये प्रयास सफल हो सकेंगे।
- जनसंख्या शिक्षा में सम्बन्धित सभी बातों को लोग समझ सकें और उन पर अमल कर सकें इसलिये जनसंख्या स्पष्टीकरण आवश्यक है।
- जब छात्र स्वयं भूमिका निर्वाह करता है तब वह उस समस्या के व्यावहारिक पक्ष से अवगत होता है और इससे उसकी अभिवृत्ति में जल्दी परिवर्तन होता है।
- जनसंख्या स्पष्टीकरण, खेल विधि, दृश्य-श्रव्य सामग्री के माध्यम से शिक्षण, खोज और छान बीन आधारित शिक्षण व स्वयं शिक्षण विधि।
- समस्या की समुचित जानकारी, समस्या की स्पष्टता तथ्यों का विश्लेषण, विश्लेषित सामग्री से निष्कर्षों की जांच व निष्कर्षों का उपयोग।
- स्वयं सीखने से उस समस्या की जानकारी स्पष्ट तरीके से मिलती है। जिससे आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है। और समस्या समाधान व्यक्ति को आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करता है।
- जनसंख्या शिक्षा के पाठ्यक्रम में जिन-जिन बातों का समावेश होता है वही जनसंख्या शिक्षा की प्रमुख बातें हैं।
- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दिये गये कार्यक्रम का अवलोकन करें। छात्रों को जागरूक करना, नवीन दृष्टिकोण विकसित करना, जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं को बताना आदि।
- प्रदर्शनियों का आयोजन, वाद-विवाद प्रतियोगिता, निबन्ध लेखन, लोकगीत,

कविता पाठ, कार्टून प्रतियोगिताओं का आयोजन व शिक्षक द्वारा इन सभी में सक्रिय प्रतिभागिता दिखाना।

- पूर्व सेवा प्रशिक्षण; सेवारत प्रशिक्षण का आयोजन।
- जन्म दर में बढ़ोत्तरी, मृत्यु दर में कमी-परिवार कल्याण सम्बन्धी बातों व सुविधाओं का विस्तार, समाज के सभी संगठनों के सहयोग की अपेक्षा।
- परिवार नियोजन के साधनों पर बल, जनसंख्या शिक्षा को पाठ्यक्रम में शामिल करना, माता व शिशु की उचित देख-भाल की जिम्मेदारी, परिवार कल्याण के कार्यक्रमों को बढ़ावा देना।
- रूढ़िवादी दृष्टिकोण, पुत्र की कामना, महिला साक्षरता की दर कम होना, सीमित परिवार के लाभों को न समझना।

14.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डॉ. मलैया, के.सी. एवं डा. शर्मा रमा, जनसंख्या शिक्षा, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर (नवीनतम संस्करण)।
- डॉ. दुबे, सत्यनारायण 'शरतेन्दु' (2007), जनसंख्या शिक्षा, इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन।

इकाई - 15 पर्यावरण शिक्षा

संरचना

- 15.1 प्रस्तावना
- 15.2 उद्देश्य
- 15.3 पर्यावरण शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा
- 15.4 पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य
- 15.5 अध्यापक-प्रशिक्षण में पर्यावरणीय शिक्षा का महत्व
- 15.6 सारांश
- 15.7 अभ्यास कार्य
- 15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 15.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.1 प्रस्तावना

प्राचीन समय से पर्यावरण और भारतीय जीवन दर्शन एक दूसरे से सम्बन्धित रहे हैं। प्रकृति के विनम्र साहचर्य में ही मनुष्य ने अपने जीवन की अधिकांश अवस्थाओं को बिताया। भारतीय जीवन पद्धति का मुख्य आधार प्रकृति एवं उसके द्वारा निर्मित वातावरण रहा है। प्राचीन समय से चली आ रही प्रकृति के प्रति समृद्ध आस्था वर्तमान समय में बिखर रही है। इसी कारण पर्यावरण के क्षेत्र में शिक्षा को भूमिका बढ़ती जा रही है। पर्यावरण शिक्षा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का अनिवार्य अंग बन गई है। स्कूली शिक्षा से लेकर व्यावसायिक शिक्षा तक में पर्यावरण शिक्षा को अनिवार्य विषय के रूप में स्थान मिला है। पर्यावरण शिक्षा प्रत्येक छात्र के अन्दर अपने पर्यावरण को जानने समझने एवं संरक्षित करने की भावना विकसित करती है।

15.2 उद्देश्य

1. पर्यावरण शिक्षा के द्वारा छात्र पर्यावरण की संरचना एवं कार्य के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2. पर्यावरण शिक्षा के द्वारा छात्र मनुष्य और पर्यावरण के मध्य अन्तः सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
3. पर्यावरण शिक्षा के द्वारा छात्र पर्यावरण में आने वाले परिवर्तनों का विश्लेषण कर

सकेंगे।

- 4, पर्यावरण शिक्षा के द्वारा छात्रों में पर्यावरण को संरक्षित करने की भावना विकसित होगी।
5. पर्यावरण शिक्षा के द्वारा छात्र पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित विभिन्न कार्यक्रमों में अपना योगदान दे सकेंगे।

15.3 पर्यावरण शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा

व्यक्ति और उसके सामाजिक तथा प्राकृतिक पर्यावरण के बीच होने वाली उनन्यीन्य क्रियाओं का अध्ययन पर्यावरणीय शिक्षा में किया जाता है।

यूनेस्को (1970) कार्य समिति के अनुसार 'पर्यावरण शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मनुष्य तथा उसके पर्यावरण (सांस्कृतिक तथा भौतिक-जैविक) के पारस्परिक सम्बन्ध तथा निर्भरता को समझने का प्रयास किया जाता है। और उसको स्पष्ट करने हेतु कौशल, अभिवृत्ति एवं मूल्यों का विकास करते हैं।

कुक तथा हैरन (1971) ने पर्यावरण शिक्षा अधोलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है -

- (1) पर्यावरण शिक्षा समस्या-केन्द्रित होती है।
- (2) पर्यावरण शिक्षा अन्तः अनुशासन आयाम पर आधारित है।
- (3) इसमें मूल्यों का अभिविन्यास किया जाता है।
- (4) पर्यावरण शिक्षा से समुदाय का भी अभिविन्यास किया जाता है।
- (5) पर्यावरण शिक्षा भविष्य की ओर उन्मुख होती है तथा
- (6) छात्रों के कौशल तथा क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है।

पर्यावरणीय शिक्षा मानवीयता का बोध कराने वाली शिक्षा है। इससे व्यक्ति, प्रकृति एवं समाज के प्रति अपने दायित्वों का बोध करते हुए पर्यावरण में सुधार के लिए प्रेरणा प्राप्त करता है। यह शिक्षा व्यक्ति की निर्णय प्रक्रिया को वैज्ञानिक बनाती है। यह शिक्षा व्यक्ति प्रक्रिया को वैज्ञानिक बनाती है तथा व्यवहार में विधायक परिवर्तन लाती है।

15.4 पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य

यूनेस्को के अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण सम्मेलन तिबल्सी (1977) में 'पर्यावरण' शिक्षा के अधोलिखित उद्देश्यों का प्रतिपादन किया गया -

- (1) पर्यावरण की सचेतना कर विकास करना तथा पर्यावरण की समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता विकसित करना।
- (2) पर्यावरणी के घटकों एवं समस्याओं के सम्बन्ध में ज्ञात तथा अनुभव प्रदान करना।
- (3) पर्यावरण की समस्याओं के स्वरूप प्रक्रियाओं का बोध कराना तथा पर्यावरण के घटकों की पारस्परिक निर्भरता का बोध कराना।
- (4) पर्यावरण की समस्याओं के समाधान हेतु अपेक्षित कौशल तथा कार्य क्षमताओं का विकास करना।
- (5) पर्यावरण के सम्बन्ध में भावना, अभिवृत्तियों तथा मूल्यों का विकास करना तथा सक्रिय भाग लेने हेतु अभिप्रेरित करना जिससे पर्यावरण का संरक्षण तथा सुधार हो सके।
- (6) छात्रों को व्यवहारिक कार्यों हेतु अवसर प्रदान करना।
- (7) शिक्षा की योजनाओं तथा कार्यक्रमों के मूल्यांकन की योग्यता का विकास करना। परिस्थिति-विज्ञान, आर्थिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक, सौन्दर्यानुभूति के कारकों की प्रभावशीलता का आकलन करना।

शैक्षिक स्तरों की दृष्टि से उद्देश्यों का वर्गीकरण यहाँ पर दिया गया है-

शिक्षा के स्तर

पर्यावरणीय शिक्षा के उद्देश्य

- | | |
|-------------------------|---|
| 1. प्राथमिक शिक्षा | 1. पर्यावरण सचेतना तथा वास्तविक अनुभव तथा ज्ञान प्रदान करना। |
| 2. माध्यमिक शिक्षा | 2. पर्यावरण के घटकों एवं समस्याओं की वास्तविक जीवन में सार्थकता का बोध करना। |
| 3. उच्च माध्यमिक शिक्षा | 3. पर्यावरण स्रोतों का उपयोग तथा समस्याओं के समाधान हेतु। |
| 4. उच्च शिक्षा | 4. पर्यावरण समस्याओं का समाधान कर अपेक्षित विकास करना तथा भावना अभिवृत्तियों तथा मूल्यों का विकास करना। |

15.5 अध्यापक-प्रशिक्षण में पर्यावरणीय शिक्षा का महत्त्व

पर्यावरणीय शिक्षा के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। इसके प्रमुख कारण हैं -

- (1) इस विषय की बहु-विषयक प्रकृति
- (2) माध्यमिक विद्यालयी तथा उच्च कक्षाओं में इस विषय का समाकलन करने की समस्या बहु-विषयक प्रकृति का होने के कारण विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता इसलिए भी और अधिक है क्योंकि हमारे पास जो प्रशिक्षित अध्यापक उपलब्ध है। एवं प्रशिक्षण के लिए जो अध्यापक आ रहे हैं उन्होंने अब तक पर्यावरणीय शिक्षा में न तो प्रशिक्षण प्राप्त किया है और न हो उन्होंने अपने विद्यालयी/महाविद्यालयी अध्ययन काल में पर्यावरण शिक्षा को विषयवस्तु का अध्ययन किया होता है। जिन विषयों में वे अधिस्नातक, स्नातक आदि होते हैं, जब वे अध्ययनरत रहे उस समय उनके विषयों में पर्यावरणीय विषयवस्तु बहुत कम मात्रा में अथवा शून्य मात्रा में सम्मिलित थी। जो सामग्री उपलब्ध भी थी वह केवल उस एकांगी विषय की ही थी। उससे पर्यावरणीय शिक्षा का उद्देश्य पूरा होता सम्भव नहीं है। दूसरे माध्यमिक तथा उच्च कक्षाओं की विभिन्न विषयों की विषयवस्तु में पर्यावरण संरक्षण हेतु समाकलन करने की समस्या का समाधान ठीक ढंग से तब तक नहीं हो पायेगा जब तक उन्हें समाकलन करने के लिए विशेष प्रशिक्षण नहीं दिया जाता तथा विशेष प्रशिक्षित शिक्षक द्वारा विषयवस्तु का शिक्षण विभिन्न विषयों का समाकलन करके सामग्री उपलब्ध नहीं कराया जाता। उपर्युक्त कारणों से अध्यापकों के लिए पर्यावरणीय शिक्षा में विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता की अनुभूति होती है। उसके लिए प्रयास किए जाने चाहिए। इस दिशा में कुछ प्रान्तों में एस.सी.इ.आर.टी., क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, आई.ए.एस.इ., सी.टी.इ. तथा जिला शिक्षा संस्थान आदि कार्य कर रहे हैं।

प्रत्येक अध्यापक को प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि वर्तमान शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में पर्यावरणीय शिक्षा के विचारों को लागू करने में राजस्थान के शिक्षा-विभागीय परीक्षाओं में 'पर्यावरणीय शिक्षा के विशिष्ट प्रशिक्षण की व्यवस्था अपने शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में की हुई है। इन्होंने दो प्रश्न-पत्र अपने दो वर्षीय शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम (प्राथमिक स्तर) में सम्मिलित किए हुए हैं। पहला है 'सामाजिक पर्यावरणीय अध्ययन विषयवस्तु एवं शिक्षण विधियाँ' दूसरा प्रश्न पत्र है भौतिक एवं जैविक पर्यावरण-विषयवस्तु एवं शिक्षण विधियाँ। इसके अतिरिक्त इनके पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने के दायित्व की पूर्ति पाठ्यक्रम में की गई है।

विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रमों में पर्यावरणीय शिक्षा को यद्यपि स्थान मिला है

विश्वविद्यालय में प्रायः इस विषय को वैकल्पिक विषय के रूप में रखा गया है। इस प्रकार विषय की आवश्यकता पर एक प्रश्न चिन्ह लगना स्वाभाविक हो जाता है। विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में यह विषय अनिवार्य होना इस समय की माँग और समाज की आवश्यकता है।

बोध प्रश्न -

- क) नीचे दिये गये प्रश्नों का उत्तर खाली स्थानों में लिखो।
ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करो।

प्र.1 पर्यावरण शिक्षा का क्या तात्पर्य है?

उ. _____

प्र.2 आज के परिवेश में पर्यावरण शिक्षा क्यों आवश्यक है?

उ. _____

प्र.3 तिबल्सी सम्मेलन (1977) के अनुसार पर्यावरण शिक्षा के मुख्य उद्देश्य क्या हैं?

उ. _____

प्र.4 अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में पर्यावरणीय शिक्षा का क्या महत्व है?

उ. _____

15.5 सारांश

पर्यावरण शिक्षा, समय की माँग और परिवेश की आवश्यकता के कारण उदित हुई है। शिक्षाक्रम में इस सम्प्रत्यय को उचित स्थान धीरे-धीरे प्राप्त होता जा रहा है। विभिन्न पाठ्यक्रम में पर्यावरण की विषयवस्तु को स्थान मिलता जा रहा है। पर्यावरण को समस्या और प्रदूषण की दृष्टि से देखना उचित नहीं है यह एक पैदा करने वाला विचार है। पर्यावरणीय शिक्षा को पर्यावरण संरक्षण के रूप में लिया जाना अधिक सार्थक रहेगा।

पर्यावरण शिक्षा अभिवृत्ति स्तर की शिक्षा है। यह ज्ञान को कण्ठस्थ करने के लिए बाध्य न करने उसकी अभिवृत्ति में विधायक-परिवर्तन लाने का प्रयास करती है ताकि जनमानस में पर्यावरण के प्रति जागरूकता विकसित हो सके, व्यक्ति समाज के प्रति अपने दायित्व का बोध कर अपने जीवन में पर्यावरण संरक्षण को अपना सके। यह पर्यावरण की हानि से बचाने के लिए भारतीय संस्कृति की गाँधीवादी विचारधारा का ही प्रतिबिम्ब है। यह शिक्षा मानव को उसकी मानवीयता का बोध कराती है। इससे व्यक्ति में अन्तर्राष्ट्रीय सदभाव या 'वसुधैव कुटुम्बकम्' भावना का उदय होगा विश्व-नागरिक स्वच्छ पर्यावरण में स्वस्थ रहकर विश्व-कल्याण के कार्य करेंगे।

15.7 अभ्यास कार्य

- प्र.1 पर्यावरण शिक्षा की मुख्य विशेषतायें क्या हैं?
- प्र.2 विभिन्न शैक्षिक स्तरों की दृष्टि से पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
- प्र.3 प्रोजेक्ट विधि के अनुसार पर्यावरण शिक्षा किस प्रकार दी जा सकती है?
- प्र.4 स्काउट तथा गाइड कार्यक्रम पर्यावरण सुधार में किस प्रकार योगदान देते हैं?
- प्र.5 पर्यावरण शिक्षा के सन्दर्भ में निरौपचारिक शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य क्या हैं?

15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

- पर्यावरण शिक्षा मानवीयता का बोध कराने वाली शिक्षा है। इससे व्यक्ति, प्रकृति एवं समाज के प्रति अपने दायित्वों का बोध करते हुए पर्यावरण में सुधार के लिए प्रेरणा प्राप्त करता है। यह शिक्षा व्यक्ति की निर्णय प्रक्रिया को वैज्ञानिक बनाती है तथा व्यवहार में विधायक परिवर्तन लाती है। पर्यावरण शिक्षा की विशेषताओं का भी उल्लेख करें।
- आज के परिवेश में पर्यावरण शिक्षा की महत्ता इसलिए अधिक है क्योंकि यह आज के विकृत हो रहे पर्यावरण को सुधारने एवं नई पीढ़ी को इसके प्रति जागरूक

करने का साधन है। पर्यावरण संरक्षण एवं पर्यावरण सुधार के लिए पर्यावरण शिक्षा के योगदान का वर्णन करें।

- तिबल्सी सम्मेलन (1977) के अनुसार पर्यावरण शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों में पर्यावरण की सचेतना का विकास, पर्यावरण की घटकों एवं समस्याओं के स्वरूप, प्रक्रियाओं का बोध, समस्याओं के समाधान हेतु अपेक्षित कौशल, एवं अवसर प्रदान करना, शिक्षा की योजनाओं तथा कार्यक्रमों के मूल्यांकन की योग्यता का विकास आदि का विस्तृत वर्णन करें।
- अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में पर्यावरणीय शिक्षा का अत्यधिक महत्व है। क्योंकि यह कार्यक्रम भविष्य के शिक्षकों में पर्यावरण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को उत्पन्न करने उनमें अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाता है ताकि वे नई पीढ़ी को भी पर्यावरण के प्रति जागरूक कर सके। अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न पर्यावरण शिक्षा कार्यक्रमों का उल्लेख करें।
- सन्धृत विकास का अर्थ संतुलित विकास है जिसमें प्रकृति को हानि पहुँचाए बिना विकास की ओर अग्रसर होना है। सन्धृत विकास के विभिन्न पक्ष जैसे ठोस विकास, समग्र विकास एवं सन्तुलित विकास का उल्लेख करें।

15.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. शर्मा, आर. ए., पर्यावरण शिक्षा, मेरठ सूर्या पब्लिकेशन (पंचम संस्करण, 2004)
2. वर्मा, जी.एस., पर्यावरण अध्ययन, मेरठ, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस (नवीन संस्करण, 2005)
3. सिंह, भोपाल, पर्यावरण शिक्षा मेरठ, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस (द्वितीय संस्करण 2005)

इकाई - 16 शान्ति शिक्षा

संरचना

- 16.1 प्रस्तावना
- 16.2 उद्देश्य
- 16.3 शान्ति शिक्षा से सम्बन्धित मुद्दे
 - 16.3.1 अर्थ
 - 16.3.2 शान्ति एवं हिंसा से सम्बन्ध
 - 16.3.3 यूनेस्को के प्रस्ताव
- 16.4 शान्ति शिक्षा एवं शैक्षणिक गतिविधियाँ
 - 16.4.1 शान्ति शिक्षा एवं नैतिक मूल्य
 - 16.4.2 शान्ति शिक्षा एवं शिक्षक
 - 16.4.3 शान्ति शिक्षा कार्यक्रम
- 16.5 सारांश
- 16.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 16.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.1 प्रस्तावना

वर्तमान समय अभूतपूर्व हिंसा का दौर है। असहिष्णुता, कहरवाद, विवाद और अच्छी भाषा का प्रयोग न करना प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इस हेतु सभी के सामने नैतिकता, कल्याण और शान्ति की जरूरत है। युद्ध और हिंसा अत्यन्त प्रबल हो गयी है। वैश्विक, राष्ट्रीय और स्थानीय स्तर पर बढ़ती हुयी हिंसा को दूर करने के लिए ऐसे कार्यक्रमों एवं गतिविधियों की आवश्यकता है जो शान्ति स्थापित करने में सक्षम हो। आज स्कूलों में जो शिक्षा दी जाती है उससे सांकेतिक और वास्तविक हिंसा को बढ़ावा ही मिलता है। अतः इन परिस्थितियों में शिक्षा को पुनः परिभाषित करने की जरूरत है। स्कूली पाठ्यक्रम में शान्ति के लिए शिक्षा को प्राथमिकता मिलनी चाहिए क्योंकि शिक्षा के मूल्य के रूप में शान्ति, पाठ्यचर्या के सभी क्षेत्रों से जुड़ी हुयी है। और उनमें निहित मूल्यों की पूरक है।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि -

1. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अशान्ति के कारणों को समझ सकेंगे।

2. शान्ति के लिए शिक्षा का अर्थ समझ सकेंगे।
3. यूनिसेफ द्वारा दिए गये शान्ति शिक्षा का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. शैक्षिक कार्यक्रमों द्वारा शान्ति शिक्षा को प्रसारित करने के लिए आवश्यक कौशल, ज्ञान तथा अभिवृत्तियों को विकसित कर सकेंगे।
5. शान्ति और हिंसा के मध्य सम्बन्ध को समझ सकेंगे।

16.3 शान्ति की शिक्षा से सम्बन्धित मुद्दे

शान्ति की संस्कृति को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब विश्व के सभी नागरिक वैश्विक समस्याओं को समझ सकेंगे, न्याय व संघर्ष के गैरहिंसक कौशल को विकसित कर सकेंगे अन्तर्राष्ट्रीय मानक में रहते हुये मानव-अधिकार तथा बराबरी को महत्व दे सकेंगे, सांस्कृतिक विविधताओं की सराहना कर सकेंगे, पृथ्वी तथा एक दूसरे का सम्मान करेंगे। शान्ति के लिए इस प्रकार की शिक्षा केवल व्यवस्थित शिक्षा के साथ ही प्राप्त की जा सकती है।

16.3.1 शान्ति के लिए शिक्षा का अर्थ

शान्ति के लिए शिक्षा का तात्पर्य नैतिक विकास के साथ-साथ उन मूल्यों, दृष्टिकोणों और कौशलों के पोषण का विकास करना जो प्रकृति एवं मनुष्य के बीच में सामंजस्य स्थापित करने के लिए आवश्यक है। इसमें आन्तरिक गुणों के विकास के साथ-साथ मनुष्य के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास आता है। आन्तरिक संसाधनों में हर्ष, प्रेम उम्मीद साहस के साथ-साथ मानव अधिकार, न्याय, सहिष्णुता, सहकार, सामाजिक दायित्व, सांस्कृतिक विविधता का सम्मान करना शामिल है। शान्ति शिक्षा का अर्थ शान्ति के बारे में तथा शान्ति के लिए सीखना है। शान्ति के बारे में सीखना तथा शान्ति के लिए सीखना, कौशल दृष्टिकोणों तथा मूल्यों को सीखना है। संयुक्त राष्ट्र के मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 26 में कहा गया है कि शान्ति शिक्षा मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए मानव अधिकारों और बुनियादी स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान को मजबूत बनाने के लिए समझ, सहिष्णुता एवं सभी देशों के बीच दोस्ती, नस्ली और धार्मिक एकता को बढ़ावा देना है। शान्ति शिक्षा मानव विकास को सुविधा देने के साथ-साथ गरीबी, पूर्वाग्रह, भेदभाव, बलात्कार, हिंसा, युद्ध, मूल रूप से परमाणु युद्ध के माध्यम को दूर करना है।

विश्व के कई भागों में शान्ति शिक्षा को द्वन्द को दूर करने के लिए शिक्षा (Education for conflict resolution), मानव अधिकार शिक्षा ग्लोबल शिक्षा, आलोचनात्मक शिक्षण (Critical Pedagogy), मुक्ति एवं सशक्तिकरण के लिए शिक्षा (Education for liberation and empowerment), सामाजिक न्याय शिक्षा (Social Justice Education).

पर्यावरण शिक्षा (Environmental Education), जीवन कौशल शिक्षा (Life skill Education), तथा निस्त्रीकरण और विकास शिक्षा (Disarmament and Development Education) आदि के रूप में भी समझा जाता है।

16.3.2 शान्ति एवं हिंसा में सम्बन्ध

शान्ति एवं हिंसा में महत्वपूर्ण सम्बन्ध होता है। हिंसा दो प्रकार की होती है-

1. प्रत्यक्ष हिंसा
2. अप्रत्यक्ष हिंसा

प्रत्यक्ष हिंसा में व्यक्तिगत तथा संस्थागत दोनों प्रकार की हिंसा सम्मिलित होती है। व्यक्तिगत हिंसा व्यक्तिगत रूप से किसी को नुकसान पहुँचाना है। जैसे बलात्कार (Rape), आतंकवाद (Terrorism), हत्या (Murder), असल्ट (Assault), क्रूरता (Brutality) आदि आते हैं। संस्थागत हिंसा में युद्ध, राज्य द्वारा प्रायोजित आतंक, वनस्पति तथा प्राणी की जिन्दगी में औद्योगिक इकाईयों का घातक प्रभाव आदि आते हैं। इस प्रकार की व्यक्तिगत एवं संस्थागत हिंसा की अनुपस्थिति शान्ति पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। अप्रत्यक्ष हिंसा के अन्तर्गत संरचनात्मक हिंसा आती है इस प्रकार की हिंसा में लिंगवाद (Sexism), जातिवाद (Racism), विभेद करना (Discrimination), गरीबी (Poverty), भूख (Hunger), शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव आदि आते हैं। शान्ति के सकारात्मक पक्ष अर्थात् जो शिक्षा शान्ति के लिए आवश्यक है उसमें मानव अधिकार, पारिस्थितिक जागरूकता, धैर्य, मानव का बड़प्पन तथा जीवन की इज्जत करना, अहिंसा, अन्तरसांस्कृतिक समझ, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा ग्लोबल एजेन्सी स्त्री एवं पुरुष में समानता (Gender Equality) प्रमुख हैं। इन सब को प्राप्त करने के लिए यूनिसेफ तथा यूनेस्को ने शैक्षिक पहलू में शान्ति शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

16.3.3 यूनिसेफ के विचार

यूनिसेफ और यूनेस्को ने स्कूली शिक्षा तथा अन्य शैक्षिक पहलू के रूप में शान्ति शिक्षा का वर्णन किया है। इनके अनुसार शिक्षण संस्थाओं तथा इनसे सम्बन्धित लोगों को निम्न प्रकार से कार्य करना चाहिए -

- शान्ति जोन के रूप में कार्य करना जहाँ बच्चे हिंसा और द्वन्द से सुरक्षित रह सकते हैं।
- शिक्षण समुदाय के सभी सदस्यों के बीच शान्तिपूर्ण और सम्मानजनक व्यवहार के विकास के लिए वातावरण विकसित करना।
- प्रशासनिक नीतियों एवं प्रथाओं में समानता तथा भेदभाव रहित सिद्धान्तों को प्रदर्शित करना।

मूल्यों को स्थापित करने में कर सकते हैं। प्रश्न, किस्सा, कहानी, खेलकूद, व्यावहारिक चर्चा, उदाहरणों, रूपकों मूल्य, स्पष्टीकरण के माध्यम से शान्ति की शिक्षा दी जा सकती है। नैतिक शिक्षा और आचरण व्यक्तिगत, सामाजिक, सामुदायिक और वैश्विक आयामों से जोड़कर सिखाये जा सकते हैं।

बोध प्रश्न -

टिप्पणी -

क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख) अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

प्र.3 शान्ति की शिक्षा सम्पूर्ण विद्यालयीय गतिविधियों द्वारा दी जा सकती है। स्पष्ट कीजिए?

उ. _____

प्र.4 शान्ति शिक्षा में शिक्षक की भूमिका समझाइये?

उ. _____

16.4.3 शान्ति शिक्षा कार्यक्रम

युवावर्ग ऊर्जा, उत्साह और जीवन तथा दुनिया को एक बेहतर बनाने की क्षमता रखते हैं। सन् 2000 संयुक्त शान्ति की संस्कृति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष घोषित किया गया है। सीखना एक निष्क्रिय प्रक्रिया न होकर सक्रिय अनुभव है। यह छात्रों के साथ शुरू होता है। शान्ति शिक्षा संयुक्त राष्ट्र के चार्टर की प्रस्तावना के अनुसार होनी चाहिए। शिक्षा मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए निर्देश तथा मानव अधिकारों एवं बुनियादी स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान को मजबूत बनाने के लिए होना चाहिए।

शान्ति शिक्षा कार्यक्रम विद्यालयी वातावरण में, समुदाय में, धार्मिक स्थानों पर प्रशिक्षण दे सकता है। इस प्रशिक्षण में द्वन्द को दूर करना, ध्यान को बढ़ाना तथा सहयोगात्मक खेल सम्मिलित होते हैं। विद्यालय समुदाय तथा जीवन के लिए सामाजिक कौशल तथा द्वन्द को दूर करने के तरीके अत्यन्त आवश्यक हैं। वर्तमान समय में शिक्षक

एवं छात्रों दोनों पर ही अच्छे अंक प्राप्त करने का अत्यधिक दबाव है इसके लिए छात्रों को संवेगात्मक परिपक्वता तथा विकास का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। शान्ति शिक्षा उन प्रौढ़ के लिए भी है जो बालक के साथ कार्य कर रहे हैं। इससे पक्षपात को कम करने, अपने ही समुदाय में द्वन्दों को दूर करने का प्रशिक्षण है। ज्ञान, कौशल और अभिवृत्ति शान्ति शिक्षा के लिए आवश्यक है। शिक्षा के माध्यम से इनको विकसित किया जाना चाहिए।

कौशल -

- सम्प्रेषण, सक्रिय कहना व सुनना।
- सहयोग
- आलोचनात्मक चिन्तन एवं समस्या समाधान
- कलात्मक एवं सौन्दर्यात्मक अभिवृत्ति
- द्वन्द का समाधान
- जिम्मेदार नागरिक
- कल्पना
- नेतृत्वदर्शिता

ज्ञान -

- स्वयं के प्रति जागरूकता, पक्षपात की पहचान
- निम्न मुद्दों से सम्बन्धित
- द्वन्द तथा युद्ध
- शान्ति और अहिंसा
- पर्यावरण और पारिस्थितिकी
- न्यूक्लियर तथा दूसरे अस्त्र
- द्वन्द विवेचना के सिद्धान्त एवं उनको दूर करने के उपाय
- संस्कृति, धर्म, जाति तथा जेन्डर
- मानव अधिकार
- जिम्मेदारियाँ
- ग्लोबलाइजेशन
- गरीबी तथा अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था
- स्वास्थ्य रक्षा एवं एड्स
- नशे की व्यापार

अभिवृत्ति -

- पारिस्थितिकी ज्ञान

- आत्म सम्मान
- मानव जाति का सम्मान
- अन्तसांस्कृतिक समझ
- लिंग संवेदनशीलता
- सामाजिक जिम्मेदारियाँ
- अहिंसा

कौशल, ज्ञान एवं अभिवृत्ति में सकारात्मक एवं घनिष्ठ सम्बन्ध है। शान्ति शिक्षा के लिए तीनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

बोध प्रश्न -

टिप्पणी -

- क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।
- ख) अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से तुलना करें।
- प्र.5 शान्ति शिक्षा के लिए आवश्यक कौशलों को सूचीबद्ध कीजिए।

उ.

16.5 सारांश

इस इकाई में हमने अध्ययन किया कि शान्ति शिक्षा वर्तमान समय में अत्यन्त आवश्यक है। वैश्विक राष्ट्रीय एवं स्थानीय स्तर पर बढ़ती हुयी हिंसा को दूर करने के लिए ऐसे कार्यक्रमों एवं गतिविधियों की आवश्यकता है जो शान्ति स्थापित करने में सक्षम है। शान्ति के लिए शिक्षा का तात्पर्य नैतिक विकास के साथ साथ उन मूल्यों, दृष्टिकोणों एवं कौशलों के पोषण का विकास करना है। जो प्रकृति एवं मनुष्य के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए आवश्यक है। इसमें आन्तरिक गुणों के साथ-साथ सहिष्णुता, सामाजिक दायित्व, मानव अधिकार, तथा सांस्कृतिक विविधता का सम्मान करना शामिल है। संयुक्त राष्ट्र के मानव अधिकारों के सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 26 के अनुसार शान्ति शिक्षा मानव व्यक्तित्व के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यह शिक्षा परिवार, विद्यालय तथा समुदाय में कहीं पर भी दी जा सकती है। शान्ति की संस्कृति को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब विश्व के सभी नागरिक वैश्विक समस्याओं को समझकर न्याय व संघर्ष के गैरहिंसक कौशल को विकसित कर सकेंगे।

विद्यालयों में शान्ति की शिक्षा इस प्रकार से विकसित होनी चाहिए जो सम्पूर्ण विद्यालयीय जीवन, पाठ्यचर्या, कक्षा का वातावरण, स्कूल प्रबन्धन विद्यार्थी एवं शिक्षक में सम्बन्ध तथा स्कूल से जुड़ी सभी गतिविधियों द्वारा हो सके। शान्ति निर्माण की सभी गतिविधियाँ नैतिक विकास के माध्यम से ही सम्भव होती हैं। शान्ति की शिक्षा में शिक्षक को कहानियों एवं संस्मरणों की सहायता से आध्यात्मिक शिक्षा एवं सामाजिक संदेश देना चाहिए तथा स्वयं ही पाठ्य सामग्री एवं बच्चों के विकास के स्तर के अनुरूप शान्ति के मूल्यों को पठन-पाठन में शामिल करना चाहिए। नैतिक शिक्षा और आचरण व्यक्तिगत, सामाजिक, सामुदायिक और वैश्विक आयामों से जोड़कर सिखाने चाहिए। शान्ति शिक्षा प्रशिक्षण का प्रमुख उद्देश्य द्वन्द को दूर करना, प्रजातंत्र एवं मानव अधिकार की शिक्षा देना, ध्यान को बढ़ाना तथा सहयोगात्मक खेल सम्मिलित होने चाहिए। इसके लिए आवश्यक ज्ञान, कौशल और अभिवृत्तियों का विकास किया जाना चाहिए।

1. आप अपने विद्यालय में ऐसे क्लब और रीडिंग रूम की स्थापना कीजिए जो शान्ति सम्बन्धी समाचारों पर और ऐसी घटनाओं पर केन्द्रित हो जो सामाजिक न्याय और समानता के विरुद्ध हैं।
2. ऐसे कार्यक्रमों एवं फिल्मों की सूची तैयार करवाइये जो न्याय और शान्ति के मूल्यों को बढ़ावा देती हैं और इन्हें समय-समय पर स्कूल में दिखाया जाना चाहिए।

16.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. वर्तमान समय अभूतपूर्व हिंसा का समय है। असहिष्णुता, कट्टरवाद, विवाद आदि दिन-प्रतिदिन बढ़ रहे हैं। सभी को नैतिकता, कल्याण और शान्ति की आवश्यकता है। वैश्विक, राष्ट्रीय और स्थानीय स्तर पर बढ़ती हुयी हिंसा को दूर करने के लिए ऐसे कार्यक्रमों एवं गतिविधियों की जरूरत है जो शान्ति स्थापित करने में सक्षम हो क्योंकि स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा भी सांकेतिक और वास्तविक हिंसा को बढ़ावा देती है। स्कूली पाठ्यक्रम में शान्ति की शिक्षा को प्राथमिकता मिलनी चाहिए क्योंकि शिक्षा के मूल्य के रूप शान्ति सभी क्षेत्रों से जुड़ी है। तथा उनमें निहित मूल्यों की पूरक है।
2. यूनेस्को के अनुसार विद्यालयीय शिक्षा को शान्ति शिक्षा के लिए कार्य करना चाहिए। इसके लिए शिक्षण समुदाय के सभी सदस्यों के बीच शान्तिपूर्ण और सम्मानजनक व्यवहारके विकास के लिए वातावरण विकसित करना चाहिए। इस प्रकार का शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रिया का उपयोग करना चाहिए जिससे समस्या सुलझाने, तनाव को दूर करने, मतभेदों का सम्मान करने में सहायता मिल सके। शान्ति, मानव अधिकार, सामाजिक न्याय एवं वैश्विक मुद्दों को समझने के लिए एकीकृत पाठ्यक्रम विकसित करना चाहिए। सभी शिक्षकों में शान्ति, न्याय एवं

अधिकारों के मुद्दों के सम्बन्ध में व्यवसायिक विकास के अवसर उत्पन्न करने चाहिए।

3. शान्ति की शिक्षा इस प्रकार से विकसित होनी चाहिए जो सम्पूर्ण विद्यालय जीवन, पाठ्यचर्या, कक्षा का वातावरण, स्कूल प्रबन्धन, विद्यार्थी एवं शिक्षक में सम्बन्ध तथा स्कूल से जुड़ी अन्य सभी गतिविधियाँ द्वारा हो सकें। पाठ्यक्रम और परीक्षा के द्वारा विद्यार्थियों में अपर्याप्तता, निराशा, असुरक्षा को बढ़ावा नहीं मिलना चाहिए। आसपास के वातावरण एवं मीडिया के द्वारा बच्चों के मन में जो नकारात्मक भावनाएं उत्पन्न हो रही हैं उन सभी को शिक्षा के द्वारा दूर किया जाना चाहिए। बच्चों को हिंसा के स्थान पर शान्ति चुनने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।
4. शान्ति शिक्षा के लिए शिक्षक को कहानियों एवं संस्मरणों की सहायता से आध्यात्मिक विकास करना चाहिए साथ ही उनमें प्रतिभा तथा आत्म विश्वास के विकास में सहयोग देना चाहिए। शिक्षक को नैतिक विकास के लिए अच्छी भाषा का प्रयोग करना चाहिए तथा पाठ्य सामग्री तथा बच्चों के विकास के स्तर के अनुरूप शान्ति के मूल्यों को कक्षा शिक्षण में सम्मिलित करना चाहिए। इसके लिए पाठ के सकारात्मक भावों का उपयोग करना चाहिए। खेलकूद व्यवहारिक चर्चा, उदाहरणों, मूल्यों स्पष्टीकरण के माध्यम से शिक्षक शान्ति की शिक्षा दे सकते हैं।
- (5) शान्ति की शिक्षा के लिए आवश्यक कौशल निम्नलिखित हैं जिनको शिक्षा के माध्यम से विकसित करने की आवश्यकता है।
 - सम्प्रेषण, सक्रिय कहना व सुनना
 - सहयोग
 - आलोचनात्मक चिन्तन एवं समस्या समाधान
 - कलात्मक एवं सौन्दर्यात्मक अभिवृत्ति
 - ध्यान विकसित करना एवं द्वन्द का समाधान
 - कल्पना
 - नेतृत्व दर्शिता

16.7 कुछ उपयोगी पुस्तक

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (2005), नई दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी.।

गुप्ता एस.पी. एवं गुप्ता अल्का- भारतीय शिक्षा के समसामयिक प्रकरण, शारदा प्रकाशन।